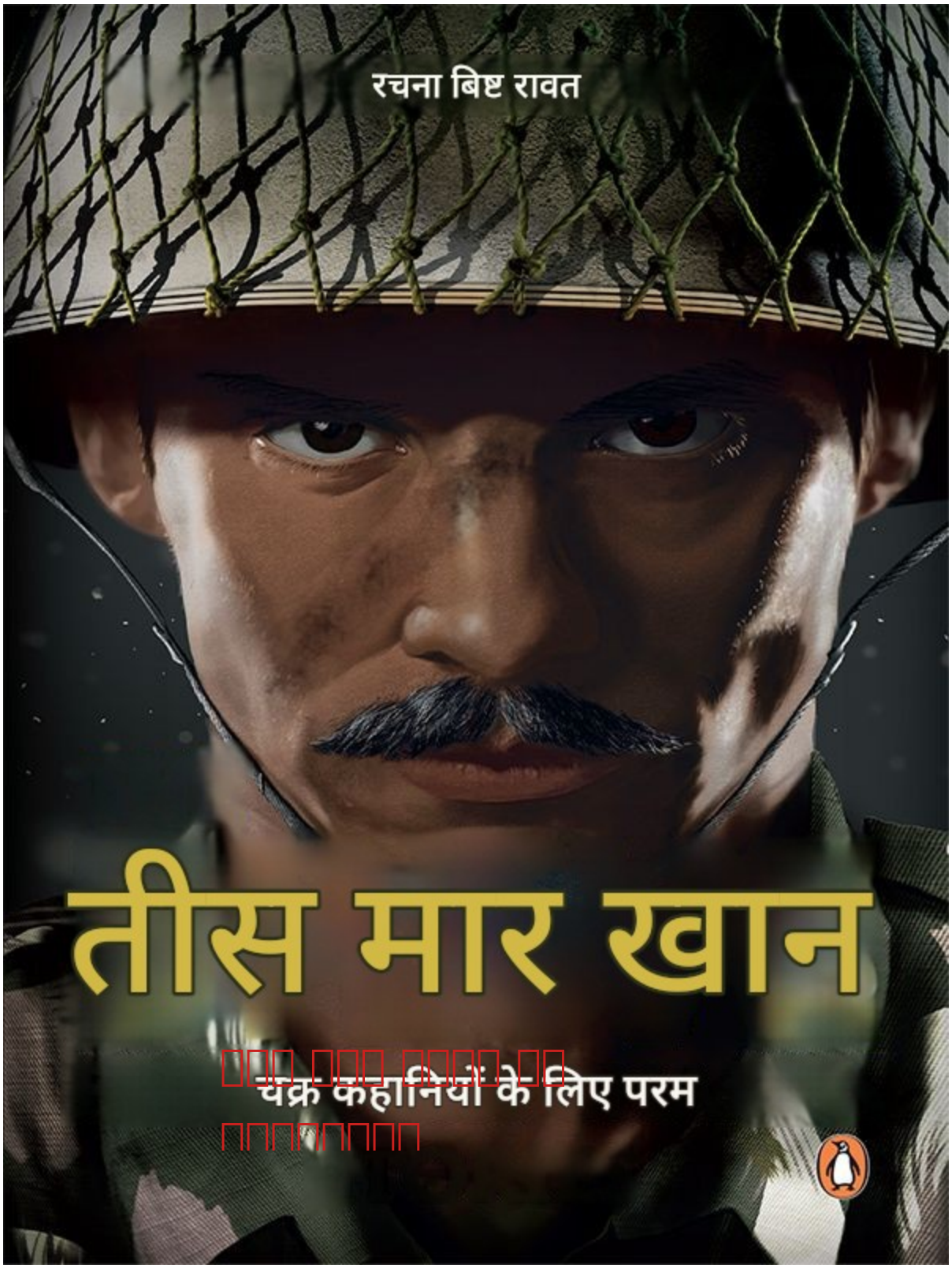
रचना बिष्ट रावत
तीस मार खान
चक्र कहानियों के लिए परम

Table of Contents

शीर्षक पेज
अंतर्वस्तु
लेखक के बारे में
समर्पण
परिचय
तीस मार खान
1947-48 का भारत - पाकिस्तान युद्ध सोमनाथ शर्मा
Karam Singh
रामा रघुबा राणे
जदुनाथ सिंह
Piru Singh Shekhawat
कांगो— 1961
गुरबचन सिंह सलारिया
1962 का भारत - चीन युद्ध
Dhan Singh Thapa
Joginder Singh
Shaitan Singh
1965 का दूसरा कश्मीर युद्ध अब्दुल हामिद
Ardeshir Burzorji Tarapore 1971 का भारत - पाकिस्तान युद्ध अल्बर्ट एक्का
Nirmal Jit Singh Sekhon
अरुण खेतरपाल
होशियार सिंह
सियाचिन— 1971
Bana Singh
ऑपरेशन पवन 1987-90

□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□□

□□□□□□ □□□□□ 1999

Manoj Kumar Pandey

Yogender Singh Yadav

□□□□ □□□□□

□□□□□□ □□□□□

□□□□□□

□□□□□□□□□□□

□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□

□□□□□□□□

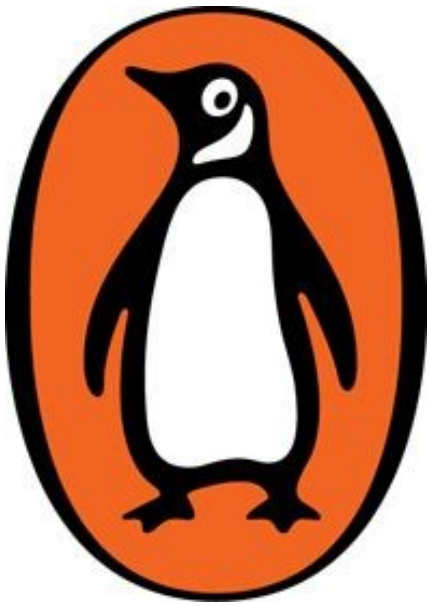

Rachna Bisht Rawat

□□□ □□□ □□□

□□□ □□□ □□□□ □□ □□□□□□□□□

अंतर्वस्तु

लेखक के बारे में
समर्पण
परिचय
1947-48 का भारत-पाकिस्तान युद्ध सोमनाथ शर्मा
Karam Singh
रामा रघुबा राणे
जदुनाथ सिंह
Piru Singh Shekhawat
कांगो—1961
गुरबचन सिंह सलारिया
1962 का भारत-चीन युद्ध
Dhan Singh Thapa
Joginder Singh
Shaitan Singh
1965 का दूसरा कश्मीर युद्ध अब्दुल हामिद
Ardeshir Burzorji Tarapore 1971 का भारत-पाकिस्तान युद्ध अल्बर्ट एक्का
Nirmal Jit Singh Sekhon
अरुण खेतरपाल
होशियार सिंह
सियाचिन—1971
Bana Singh
ऑपरेशन पवन 1987-90
रामास्वामी परमेश्वरन
कारगिल युद्ध 1999

Manoj Kumar Pandey
Yogender Singh Yadav
□□□□ □□□□□
□□□□□□ □□□□□
□□□□□□
□□□□□□□□□□□
□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□
□□□□□□□□

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] 12 [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उन सभी बहादुर सैनिकों के लिए जिन्होंने अपना बलिदान दिया।
आपको पहचान नहीं मिली—आप उतने ही बहादुर थे जितने कि वे लोग जिन्हें हमने सम्मानित किया।

परिचय

ऐसा न हो कि हम भूल जाएं
सेना ने मुझे मेरे लगभग सभी प्रिय पुरुष दिए हैं, मेरे पिता से लेकर, जो एक गर्वित पैराट्रूपर हैं, मेरे भाई से लेकर, जो भी एक पैराट्रूपर हैं, और मेरे पति तक, जो एक इंजीनियर हैं। और हालांकि मेरा 12 वर्षीय बेटा सारांश अभी डब्ल्यूडब्ल्यूएफ पहलवान बनना चाहता है, अगर वह सेना में शामिल होने का फैसला करता है तो मुझसे और मेरे पति से ज्यादा गर्व किसी को नहीं होगा। दोस्तों, परिवार, चचेरे भाई-बहन—ये सभी लोग जीवन भर मेरे आस-पास रहे हैं, मेरे दिल और मेरे दिल पर अपनी गंदी डीएमएस बूटों से रौंदते रहे हैं, बेहिसाब ओल्ड मोंक रम पीते रहे हैं, अपनी अनिश्चित ज़िंदगी से मुझे पागल करते रहे हैं, और एक सलाम और मुस्कान से मुझे पूरी तरह पिघला देते हैं। और मैं सेना का जितना भी शुक्रिया अदा करूं कम है, जिसने मुझे ये सभी लोग दिए हैं, एकदम सलीके से तैयार और चमकते हुए। वीर और आकर्षक, गर्वित लेकिन विनम्र, भौतिकवादी दुनिया में थोड़े अलग-थलग, लेकिन सबसे कठिन समय में भी गरिमा के साथ जीवन जीते रहे हैं, क्योंकि उन्हें यही सिखाया गया है। बहादुरी इन सभी के लिए है।
यह कहानी एक शाम शुरू हुई जब मैं फिरोजपुर के मॉल में टहल रहा था, जो भारत-पाकिस्तान सीमा पर स्थित आखिरी छावनी थी। वहां बच्चे साइकिलों की रेस लगा रहे थे और सड़क किनारे लाल खसखस के फूल खिले हुए थे। तभी मेरी नजर 4 ग्रेनेडियर्स के कंपनी हवलदार मेजर अब्दुल हामिद (पीवीसी) पर पड़ी, जो 1965 में खेमकरण सेक्टर में अपनी आरसीएल तोप से पाकिस्तानी पैटन टैंक को उड़ाते हुए शहीद हो गए थे। वे सड़क किनारे लगे एक लैमिनेटेड पोस्टर से मुझे देख रहे थे। मुझे अपनी पहली किताब का कॉन्ट्रैक्ट मिला था और मैं खुशी से झूम रहा था। ऊपर देखते हुए मैंने कहा: 'मैं तुम्हारी कहानी लिखने जा रहा हूं, अब्दुल हामिद।'
अब्दुल हामिद ने कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन मेरे पति लेफ्टिनेंट कर्नल मनोज रावत, जो मेरे साथ चल रहे थे, मुस्कुराए और फुटपाथ से नीचे उतरकर दौड़ने लगे। उन्होंने मुझे इशारा किया कि जब मैं दौड़ पूरी कर लूं तो सड़क

के अंत में उनसे मिलूं। मुझे एक साल लग गया, लेकिन आखिरकार मैं उनसे वहीं मिली।
यह पुस्तक उस यात्रा के अंत का प्रतीक है जो मुझे धूप में पकते पीले सरसों और सुनहरे गेहूं के खेतों से होकर ले गई, जब मैं उन सेवानिवृत्त सैनिकों की तलाश में निकला था जो उन युद्धों से लौटे थे जिनमें उनके साथी शहीद हो गए थे। मैं उनके साथ छाया में खींची गई चारपाइयों पर बैठा और उनके विचारों और उनके भोजन को साझा किया। यह यात्रा मुझे तवांग में सेला दर्रे से आगे ले गई, जहाँ सर्दियों में पूरी झील जम जाती है, बुमला तक, जहाँ सूबेदार जोगिंदर सिंह ने 1962 के युद्ध में गोलियाँ खत्म होने पर संगीन से लड़ाई लड़ी थी, जहाँ सैनिकों के पास साहस के अलावा कुछ भी नहीं था। यह मुझे हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा ले गई, जहाँ सुगंधित सफेद गुलाब खिले थे और बर्फ से ढकी धौलाधार पर्वतमालाएँ मुझे कैप्टन विक्रम बत्रा के घर तक ले गईं, जहाँ उनके पिता पश्मीना शॉल ओढ़े बैठे थे। यह मुझे लद्दाख के सिरिजाप ले गई, जहाँ मेजर धन सिंह थापा ने अपनी खुखरी से गर्दनें काट डाली थीं; और यह मुझे चुशुल के बर्फीले रेजांग ला तक ले गया, जहाँ 13 कुमाऊं के मेजर शैतान सिंह और उनके आदमियों (कुल 113) का बेरहमी से नरसंहार किया गया क्योंकि उनकी संख्या पूरी तरह से कम थी - वे इस आदेश का पालन करते हुए मारे गए: तुम आखिरी आदमी और आखिरी गोली तक लड़ोगे।
जब 13 कुमाऊं ने मुझे रेजांग ला के शहीदों की सूची भेजी, तो वह मेरे लैपटॉप पर तीन पन्नों में फैली हुई थी और मेरी आँखें नम हो गईं। मैं रेजांग ला के दो जीवित बचे लोगों से मिला, दोनों अब 73 वर्ष के हैं। उन्होंने बताया कि कैसे मरणासन्न मेजर शैतान, जिसका पेट चीर कर दिया गया था, ने उन्हें आदेश दिया कि वे उसे वहीं छोड़ दें क्योंकि उनके रुकने से उनके जीवित रहने की संभावना कम हो जाएगी।
मैं इन कहानियों को आप सभी के साथ साझा कर रहा हूँ ताकि वर्दीधारी इन पुरुषों के बलिदानों को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकूँ। यह पुस्तक मृत सैनिकों के परिवारों और साथियों के साथ हुए साक्षात्कारों पर आधारित है— और यदि विभिन्न लोगों के बयानों में कोई अंतर है, तो इसका कारण यह है कि घटनाओं को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा गया, जो पीड़ा और समय के धुंध से प्रभावित थे।

इस पुस्तक को लिखना आसान नहीं था और मैं इसे उन सभी बहादुर सैनिकों को श्रद्धांजलि के रूप में आपको अर्पित करता हूँ जो हमारे लिए लड़ते हुए शहीद हो गए, और उनके परिवारों को भी, जिन्होंने जीवन भर इस दुख को सहा है और फिर भी उदारतापूर्वक मेरे साथ वह सब कुछ साझा किया है जो उनके पास अभी भी है - इन दिवंगत नायकों की यादें।

1947-48 का भारत-पाकिस्तान युद्ध

महाराजा हरि सिंह द्वारा दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने के बाद, कश्मीर की रक्षा और हमलावरों को खदेड़ने के लिए भारतीय सेना भेजी गई। भारत को श्रीनगर में सैनिकों और साजो-सामान को हवाई मार्ग से भेजना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप एक भीषण संघर्ष हुआ। हमलावरों को कश्मीर से खदेड़कर बारामूला और उरी से आगे तक ले जाया गया और इन शहरों पर फिर से कब्ज़ा कर लिया गया। झांगर, राजौरी, तिथवाल, कारगिल अन्य स्थान थे जिन पर भारतीय सेना ने पुनः कब्ज़ा कर लिया। टैंकों के इस्तेमाल से जोजी ला दर्रे पर कब्ज़ा किया गया, जिसकी इतनी ऊंचाई पर कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, और यहां तक कि द्रास पर भी विजय प्राप्त की गई।
अंततः नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया और लंबी बातचीत के बाद जनवरी 1949 में औपचारिक युद्धविराम की घोषणा की गई। युद्धविराम की शर्तों के अनुसार, पाकिस्तान को अपनी नियमित और अनियमित दोनों सेनाओं को वापस बुलाना पड़ा, जबकि भारत को जम्मू-कश्मीर में शांति, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए न्यूनतम सैन्य शक्ति बनाए रखने की अनुमति दी गई।
पाकिस्तान ने कश्मीर के लगभग दो-पांचवें हिस्से पर कब्जा कर लिया, जबकि भारत ने शेष कश्मीर पर नियंत्रण हासिल कर लिया, जिसमें सबसे उपजाऊ और समृद्ध क्षेत्र शामिल थे।
इस कार्रवाई में भाग लेने वाली और बहादुरी से लड़ने वाली सेना इकाइयों को कुल 11 युद्ध सम्मान और एक रंगमंच सम्मान से सम्मानित किया गया। इनमें गुरैस, कारगिल, नौशेरा, श्रीनगर, पुंज, तिथवाल, राजौरी और जोजी ला शामिल हैं।
माना जाता है कि इस युद्ध में भारत और पाकिस्तान दोनों ने लगभग 1500-1500 सैनिक खोए। भारतीय सेना ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी और वीरता पुरस्कारों की सूची लंबी थी। उनकी असाधारण वीरता, साहस और कर्तव्यनिष्ठा के लिए पांच सैनिकों को परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया, जो स्वतंत्र भारत का सर्वोच्च वीरता पुरस्कार है। मेजर सोमनाथ शर्मा, नायक यदुनाथ सिंह और कंपनी हवलदार मेजर पीरू सिंह शेखावत युद्ध में शहीद हो गए और उन्हें मरणोपरांत यह पुरस्कार दिया गया, जबकि लांस नायक करम सिंह और सेकंड लेफ्टिनेंट रमा राघोबा राणे ने यह पदक अपने सीने पर धारण किया।

[redacted]

[redacted] [redacted] [redacted] [redacted]-[redacted]-[redacted] [redacted] [redacted] [

था, लेकिन अभी भी कुछ घंटों की रोशनी बाकी थी। उन्हें अपनी कंपनी को जल्द ही आगे बढ़ाना था और अगर वे समय पर पहुँच गए, तो रात तक श्रीनगर हवाई अड्डे पर वापस पहुँच सकते थे। सुबह तनावपूर्ण और थका देने वाली रही, लेकिन अब उन्हें काफी राहत महसूस हो रही थी।
उस दिन तड़के, 4 कुमाऊं रेजिमेंट की ए और डी कंपनियों (सोमी के नेतृत्व में) और 1 पैरा कुमाऊं रेजिमेंट की एक कंपनी (कैप्टन रोनाल्ड वुड के नेतृत्व में) को बडगाम भेजा गया था। खुफिया रिपोर्टों में चेतावनी दी गई थी कि पाकिस्तानी सेना के नियमित सैनिकों के नेतृत्व में पठान लश्कर का एक 1000 सैनिकों का दस्ता श्रीनगर की ओर बढ़ रहा है। रिपोर्टों में कहा गया था कि उनका उद्देश्य श्रीनगर हवाई अड्डे पर कब्जा करना और इस तरह सेना की आपूर्ति काटकर उसे पंगु बनाना था। लड़ाकू गश्ती दल का काम हमलावरों की तलाश करना और श्रीनगर हवाई अड्डे से तीन से चार मील दूर स्थित छोटे से गांव बडगाम में उनसे मुकाबला करना था।
सुबह तड़के, शर्मा ने सूचना दी कि उनकी कंपनी गाँव के पश्चिम में एक छोटी पहाड़ी पर तैनात है और उन्होंने वहाँ खाइयाँ खोद रखी हैं। 1 पैरा कुमाऊं ने गाँव के दक्षिण-पूर्व में मोर्चा संभाला था और बताया था कि गाँव शांत और निर्मल है। शर्मा ने यह भी बताया कि ग्रामीण चुपचाप अपने काम कर रहे थे, हालाँकि वे डरे हुए लग रहे थे। उन्होंने यह भी देखा कि उनमें से कुछ एक नाले में जमा थे जहाँ वे शरण लिए हुए प्रतीत हो रहे थे। चूंकि बडगाम में शांति का माहौल था, इसलिए 1 पैरा कुमाऊं को 'पूर्व की ओर चक्कर लगाकर तलाशी लेने और फिर 1 पंजाब से संपर्क स्थापित करने के बाद हवाई अड्डे पर लौटने' का आदेश दिया गया। उन्होंने ऐसा ही किया और दोपहर 1 बजे तक श्रीनगर वापस पहुँच गए।
बडगाम में शांति होने के कारण शर्मा को भी अपनी कंपनियों को वापस बुलाने का आदेश दिया गया। दोपहर 2 बजे उन्होंने सूचना दी कि ए कंपनी, जिसे पश्चिम की ओर चक्कर लगाने का आदेश दिया गया था, ने ऐसा कर लिया है और वह भी हवाई अड्डे की ओर बढ़ रही है। सोमी ने डी कंपनी को देर शाम तक बडगाम में रखने और फिर हवाई अड्डे पर वापस लौटने की योजना बनाई। उनके इस निर्णय का ब्रिगेडियर एल. पी. सेन, डीएसओ ने समर्थन किया। दोनों एक-दूसरे को 1944-45 में अराकान में हुए युद्धों से अच्छी तरह जानते थे। सैनिक बस समय बिता रहे थे क्योंकि अब कुछ ही घंटे बचे थे।

जनरल थोड़ी देर रुककर सांस लेते हैं और हमारे पास रखी नींबू पानी की एक घूंट पीते हैं, फिर गंभीरता से अपना सिर हिलाते हैं। “नाले में सोमी ने जिन लोगों को ग्रामीण समझ लिया था, वे असल में कश्मीरी स्थानीय लोगों के वेश में पठान थे, जिन्होंने अपने ढीले चोगा के नीचे हथियार छिपा रखे थे,” वे मुंह बनाते हुए कहते हैं।
लश्कर अपनी गतिविधियों को छिपाने के लिए टुकड़ों में बडगाम पहुँच रहे थे। उनका नेतृत्व एक पाकिस्तानी मेजर कर रहा था, जो गाँव में गश्त कर रहे भारतीय सेना के जवानों को देखते हुए एक शातिर योजना बना रहा था। उसने अपने आदमियों को स्थानीय लोगों के साथ घुलमिल जाने और बाकी पठान सैनिकों का इंतज़ार करने को कहा था, जो गुलमर्ग की पर्वत श्रृंखलाओं के बीच से धीरे- धीरे आगे बढ़ते हुए चुपचाप बडगाम की ओर बढ़ रहे थे। उसकी योजना थी कि जब उनकी संख्या लगभग 1000 हो जाए, तब बडगाम पर हमला किया जाए और फिर श्रीनगर हवाई अड्डे की ओर बढ़ा जाए। पाकिस्तान की योजना हवाई अड्डे पर हमला करके सेना का रास्ता काट देना और फिर जम्मू-कश्मीर पर कब्ज़ा करना था।
‘यह एक शानदार योजना थी,’ जनरल ने अनिच्छा से स्वीकार किया।
दोपहर करीब 2 बजे, ए कंपनी के बडगाम छोड़ने के काफी देर बाद, नाले में जमा हुए ग्रामीण तितर-बितर होने लगे। शर्मा और उनके साथियों को लगा कि वे अपने घरों की ओर लौट रहे हैं, लेकिन वे चुपचाप डी कंपनी के चारों ओर मोर्चा संभाले हुए थे। पाकिस्तानी मेजर ने दोपहर तक इंतजार न करने का फैसला किया और जैसे ही उनके पास लगभग 700 सैनिक जमा हुए, उन्होंने हमला कर दिया। शर्मा और उनकी कंपनी, जिसमें लगभग 90 सैनिक थे, हमलावरों से लड़ने के लिए बचे एकमात्र सैनिक थे। उनकी संख्या हमलावरों के मुकाबले सात गुना कम थी।

याद करने की कोशिश में माथे पर शिकन डालते हुए लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा बताते हैं कि दोपहर करीब 2:30 बजे सोमी और उनके साथियों पर गांव से अचानक

गोलीबारी शुरू हो गई, जिससे वे चौंक गए। जल्द ही उन पर मशीनगन से भी फायरिंग होने लगी। सोमी ने अपने ब्रिगेड कमांडर को सूचना दी कि उनकी चौकी पर हमला हो रहा है। उन्होंने आगे कहा कि गांव की ओर जवाबी फायरिंग करने से उन्हें डर लग रहा था क्योंकि इससे महिलाओं और बच्चों समेत निर्दोष लोग घायल हो सकते थे। तब तक हमलावर पश्चिम की ओर एक निचले इलाके से बड़ी संख्या में आने लगे थे।
लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा कहते हैं, 'वे सैकड़ों की संख्या में थे, और उन्होंने सोमी की कंपनी को मोर्टार और स्वचालित हथियारों से निशाना बनाना शुरू कर दिया।' 'चूंकि पठान प्रशिक्षित सैनिक नहीं थे, इसलिए हर 100 जवानों की कमान एक वायसराय के कमीशन प्राप्त अधिकारी (वीसीओ) के पास थी, जबकि हर 10 जवानों के साथ एक नियमित पाकिस्तानी सेना का जवान था जो उन्हें लड़ने के लिए प्रेरित करता था।'
लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा बताते हैं कि उन्होंने कुमाऊं रेजिमेंट के उन सैनिकों से सुना जो युद्ध से जीवित लौटे थे, कि कैसे सोमी ने अपने जवानों को जवाबी कार्रवाई के लिए प्रोत्साहित किया और अपनी सुरक्षा की बिल्कुल परवाह न करते हुए एक खाई से दूसरी खाई में दौड़कर उन्हें बहादुरी से लड़ने के लिए प्रेरित किया। जवानों का साहस और दृढ़ संकल्प ऐसा था कि अलग-अलग दिशाओं से हुए शुरुआती कुछ हमलों को सफलतापूर्वक विफल कर दिया गया। पठान सेना ने अपनी भारी संख्या से बल प्राप्त किया और दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया। जल्द ही उन्होंने डी कंपनी को तीन तरफ से घेर लिया और उस पहाड़ी पर चढ़ना शुरू कर दिया जहाँ खाइयाँ थीं। वे झुंड में आए, स्वचालित हथियार लहराते हुए और 'अल्लाह हू अकबर!' के नारे लगाते हुए।
सोमी को पता था कि दुश्मन की संख्या कम है। उसने ब्रिगेड कमांडर को फोन किया और गोला-बारूद व अतिरिक्त सैनिकों की मांग की। उसे बताया गया कि 1 पंजाब रेजिमेंट सहायता के लिए भेजी जा रही है, लेकिन सोमी समझ गया कि उन्हें वहाँ पहुँचने में समय लगेगा क्योंकि उन्हें युद्ध संरचना में आगे बढ़ना था। वह यह भी समझता था कि श्रीनगर की ओर जाने वाले रास्ते को भरने के लिए अतिरिक्त सैनिकों के आने तक दुश्मन को रोकना कितना ज़रूरी है। अगर ऐसा नहीं किया गया, तो हमलावर हवाई अड्डे तक पहुँचकर श्रीनगर पर कब्ज़ा कर सकते थे।

सोमी ने दृढ़ता से डटे रहने का फैसला किया और अपने सैनिकों को आखिरी दम तक लड़ने के लिए प्रेरित किया। यह उनकी बहादुरी थी कि उन्होंने ऐसा किया, इस तथ्य के बावजूद कि उनकी संख्या दुश्मन से बहुत कम थी और उनकी.303 राइफलें दुश्मन की मध्यम मशीनगनों का मुकाबला नहीं कर सकती थीं।
सोमी जानता था कि उसकी कंपनी ज़्यादा देर तक टिक नहीं पाएगी, लेकिन उसने अपने सैनिकों का मनोबल नहीं टूटने दिया। अपनी जान की परवाह किए बिना, वह दुश्मन की नज़रों के सामने खुले मैदान में दौड़ पड़ा और अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाता रहा। जब हल्की मशीनगनों पर तैनात सैनिकों को भारी नुकसान होने लगा, तो सोमी खुद अपने सही हाथ (उसका बायां हाथ प्लास्टर में था) से गोला-बारूद की बारूदी सुरंगें भरने लगा और उन्हें हल्की मशीनगन चलाने वालों को सौंपने लगा। वह उन्हें बताता था कि कब और कहाँ गोली चलानी है। जनरल ने मुझे बताया, “इधर मारो, उधर मारो,” वह कहता था, और लड़ाई लगभग पांच घंटे तक चलती रही। “भारतीय सेना के लिए वह कीमती समय था, क्योंकि हमलावरों को रोका जा रहा था और उन्हें भारतीय वायु सेना के विमानों द्वारा और अधिक सैनिकों को लाकर अपनी ताकत बढ़ाने के साथ-साथ कमियों को भरने का समय मिल रहा था।”
अंततः, सैनिकों का गोला-बारूद खत्म होने लगा। जब सोमी ने ब्रिगेड मुख्यालय को इसकी सूचना दी, तो उन्हें पीछे हटने के लिए कहा गया। उन्होंने साफ इनकार कर दिया। मुख्यालय को भेजे गए अपने आखिरी संदेश में उन्होंने कहा, ‘दुश्मन हमसे मात्र 50 गज की दूरी पर है। हमारी संख्या बहुत कम है। हम पर भीषण गोलीबारी हो रही है। मैं एक इंच भी पीछे नहीं हटूंगा, बल्कि आखिरी आदमी और आखिरी गोली तक लड़ूंगा।’
कुछ ही मिनटों बाद, जब वह ब्रेंन गनर के बगल में एक खाई में दुबके हुए, उसे तोप लोड करने में मदद कर रहे थे, तभी उनके बगल में खुले गोला-बारूद के डिब्बे पर एक मोर्टार का गोला गिरा। कान फाड़ देने वाला धमाका हुआ। लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा ने कोमल स्वर में बताया, 'इस धमाके में सोमी, उसका सहायक (अधिकारी का सहायक या नौकर जो उसकी वर्दी और साजो-सामान का ध्यान रखता है), मशीन गनर और पास में खड़ा एक जेसीओ (नौकरानी अधिकारी) मारे गए।' सोमी, जिन्होंने प्लास्टर लगे हाथ के बावजूद अपनी कंपनी का नेतृत्व करते हुए कश्मीर जाने पर जोर दिया था, उनके लिए सब कुछ खत्म हो चुका था। लेकिन यह उनकी नेतृत्व क्षमता का प्रमाण माना जाता है कि उनके अधीन सैनिकों ने

उनका वादा निभाया। कंपनी के गैर-कमीशन अधिकारियों (एनसीओ) ने लड़ने का फैसला किया और सोमी की मृत्यु के बाद भी वे हमलावरों को एक घंटे तक रोके रखने में कामयाब रहे।
दरअसल, जब गोला-बारूद बेहद कम होने लगा, तब एक और हीरो सामने आया। लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा डी कंपनी के लांस नायक बलवंत सिंह के बारे में बड़े सम्मान से बात करते हैं, जिन्होंने उस समय बहादुरी का परिचय दिया जब अधिकांश सैनिकों के पास केवल एक या दो राउंड बचे थे। उन्होंने सैनिकों से कहा कि उनके पास जो भी राउंड बचे हैं, उन्हें इकट्ठा करके उन्हें सौंप दें। फिर उन्होंने अपनी बंदूक में उन दो-तीन मैगज़ीन को लोड किया और बाकी जवानों को पीछे हटने के लिए कहा, जबकि उन्होंने दुश्मन को रोके रखा। उन्होंने कहा, "सबके मरने का कोई मतलब नहीं है। मैं उन्हें कुछ मिनटों के लिए रोके रखूंगा, ताकि आप खेतों में गायब हो सकें।"
“इसलिए वह और तीन अन्य लोग हमलावरों से लड़ने के लिए वहीं रुक गए, जबकि बाकी लोग पीछे से पहाड़ी से निकल गए। अपनी आखिरी गोलियां चलाते हुए, ये चार बहादुर सैनिक अपनी खाइयों से बाहर निकले और दुश्मन पर टूट पड़े। वे शहीद हो गए, लेकिन उन्होंने अपने साथियों को जीवित रहने में मदद की,” जनरल ने याद किया।
कुल मिलाकर, डी कंपनी की बहादुरी भरी कार्रवाई के परिणामस्वरूप हमलावरों को लगभग छह घंटे तक विलंबित किया गया, तब तक भारतीय सेना ने मोर्चा संभाल लिया था और श्रीनगर हवाई अड्डे की ओर दुश्मन की बढ़त को रोक दिया था। जैसे- जैसे विमानों में अधिक से अधिक सैनिक आते गए, हवाई अड्डे की रक्षा इतनी मजबूत हो गई कि किसी भी हमले को रोका जा सके।
5 नवंबर की सुबह, भारतीय सेना ने बडगाम पर जवाबी हमला किया और उस पर कब्ज़ा कर लिया। 300 हमलावरों के शव गिने गए, जिससे पता चलता है कि लड़ाई कितनी क्रूर थी। जवाबी गोलीबारी इतनी भीषण थी कि पठान अपने मृतकों को उठा भी नहीं पाए। चूंकि वे प्रशिक्षित सैनिक नहीं थे, इसलिए उन्हें इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों को खोने की आदत नहीं थी। भारी नुकसान ने उनका मनोबल तोड़ दिया और वे पीछे हटने लगे। जब सेना ने बडगाम पर कब्ज़ा किया, तो उन्होंने देखा कि पाकिस्तानी पीछे हट रहे थे। लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा कहते हैं, 'जब किसी व्यक्ति का मनोबल टूट जाता है, तो वह लड़ नहीं सकता।'

बदगाम की लड़ाई में, 4 कुमाऊं रेजिमेंट ने मेजर सोमनाथ शर्मा, सूबेदार प्रेम सिंह मेहता और 20 अन्य सैनिकों को खो दिया। इस अभियान में छब्बीस लोग घायल हुए। अपनी वीरता, दृढ़ रक्षा और अनुकरणीय नेतृत्व के लिए, जिसने सात गुना कम संख्या में होने के बावजूद अपने सैनिकों को दुश्मन से लड़ने के लिए प्रेरित किया, मेजर सोमनाथ शर्मा को मरणोपरांत परमवीर चक्र (पीवीसी) से सम्मानित किया गया। यह स्वतंत्र भारत का पहला पीवीसी था।

साक्षात्कार समाप्त हो चुका है और जैसे ही मैं अपना डिक्टाफोन बंद करता हूँ, जनरल दीवार पर टंगी अपने भाई की एक सुंदर तेल चित्रकला के सामने खड़े हो जाते हैं। डी कंपनी, 4 कुमाऊं के दिवंगत मेजर सोमनाथ शर्मा अपनी वर्दी में, सीने पर रिबन बांधे खड़े हैं। वे आकर्षक और गौरवान्वित दिख रहे हैं। लेफ्टिनेंट जनरल शर्मा उदास निगाहों से मुंह फेर लेते हैं। 'सोमी की मौत हो गई। वह मरने नहीं आया था, वह मारने आया था। एक काम करना था। यह उसका काम था और उसने इसे पूरा किया,' वे कहते हैं। उनकी आवाज में दृढ़ता है।
सोमी कोई जवाब नहीं देता। उसके होठों पर हल्की सी मुस्कान है।

मेजर सोमनाथ शर्मा का जन्म 31 जनवरी 1923 को जम्मू में हुआ था। उनके पिता अमरनाथ शर्मा चिकित्सा कोर अधिकारी थे, जो मेजर जनरल के पद तक पहुंचे। उनके दो भाइयों में से सुरिंद्रा नाथ, जिन्हें सेना में टिंडी के नाम से जाना जाता था, इंजीनियर-इन-चीफ बने। सबसे छोटे भाई विश्व नाथ बख्तरबंद कोर में शामिल हुए और 1988 में सेना प्रमुख बने। उनकी दो बहनों में से कमला ने डॉक्टर के रूप में सेना में प्रवेश किया और एक सेना अधिकारी से शादी की, जो मेजर जनरल के पद तक पहुंचे; दूसरी बहन मनोरमा ने भी सेना में एक ब्रिगेडियर से शादी की।

जब टिंडी चार साल का था, तब उसके पिता को इंग्लैंड में मेडिकल कोर्स करने के लिए भेजा गया और उन्होंने अपनी पत्नी को भी साथ ले जाने का फैसला किया।

सोमी और टिंडी, जिनकी उम्र में लगभग एक साल का अंतर था, को मसूरी के हैम्पटन कोर्ट कॉन्वेंट में दाखिला दिलाया गया। सोमी टिंडी से बड़ी होने के बावजूद, दोनों को एक ही कक्षा में रखा गया और उनकी अच्छी दोस्ती हो गई। दोनों वहीं छात्रावास में रहे और एक ही छात्रावास में रहकर खुश थे।
‘हमें सीनियर खूब मारते-पीटते थे, लेकिन सोमी मेरा रक्षक था क्योंकि वह मुझसे ज्यादा ताकतवर और बड़ा था,’ टिंडी याद करते हुए बताते हैं। ‘हम दोनों में सबसे समझदार मैं ही था, गणित में मैं बहुत अच्छा था, और उसे बाहर की गतिविधियों में ज्यादा दिलचस्पी थी। इतिहास और सामान्य ज्ञान के अलावा, सोमी को पढ़ाई में बिल्कुल भी रुचि नहीं थी।’
दोनों भाइयों के बीच यह समझौता हुआ था कि सोमी टिंडी को गुंडों से बचाएगा और टिंडी शाम को सारा होमवर्क पूरा कर लेगा ताकि सोमी सुबह जल्दी उठकर उसकी नकल कर सके। दोनों ने शेरवुड कॉलेज में पढ़ाई की, जहाँ से सोमी, जो हमेशा से सेना में भर्ती होना चाहता था, ने प्रिंस ऑफ वेल्स रॉयल इंडियन मिलिट्री कॉलेज (अब राष्ट्रीय भारतीय सैन्य महाविद्यालय), देहरादून में प्रवेश के लिए आवेदन किया।
मई 1941 में स्नातक होने के बाद उन्होंने भारतीय सैन्य अकादमी (आईएमए) में दाखिला लिया, जहाँ उन्होंने असाधारण प्रदर्शन किया। तब तक युद्ध शुरू हो चुका था और आईएमए का प्रशिक्षण बीच में ही रोक दिया गया। लगभग नौ महीने के प्रशिक्षण के बाद, सोमी फरवरी 1942 में कमीशन अधिकारी बन गए। मात्र 19 वर्ष की आयु में वे 8/19 हैदराबाद रेजिमेंट (अब 4 कुमाऊं) में द्वितीय लेफ्टिनेंट के पद पर शामिल हुए। उन्होंने अराकान में युद्ध में भाग लिया, जहाँ बर्मा युद्ध की सबसे कठिन लड़ाइयों में से एक जापानी सेना के साथ अराकान तट पर लड़ी गई थी, जहाँ तीन भारतीय बटालियनें ब्रिटिश कमांडो की एक बटालियन के साथ उतरी थीं।
वहीं सोमी ने एक घायल कुमाओनी सैनिक को पेड़ के सहारे बैठे देखा। उसने उस आदमी से भागने को कहा, लेकिन जब उसने कहा कि वह खड़ा नहीं हो सकता, तो बहादुर और अनुभवी सोमी ने उसे अपनी पीठ पर लादकर, जापानी गोलीबारी के बीच से हंसते हुए, सुरक्षित स्थान पर ले आया। दोनों को गोली नहीं लगी, शायद इसलिए कि जापानी लोग अदम्य साहस का सम्मान करते थे।
भारत लौटने पर, सोमी को मेजर और चौथी कुमाऊं रेजिमेंट के सहायक के रूप में नियुक्त किया गया। वे पंजाब के विभिन्न हिस्सों में आंतरिक सुरक्षा

कार्यों में जुट गए और 1947 में नागरिक अशांति को नियंत्रित करने में पुलिस और नागरिक अधिकारियों की सहायता करने लगे। दिल्ली के कई शिक्षण संस्थान आज भी राशन की आपूर्ति और लोगों को एक इलाके से दूसरे इलाके तक सुरक्षित पहुंचाने में उनकी संगठनात्मक क्षमता की प्रशंसा करते हैं। उन्हें जीपों से लैस जवानों की एक फ्लाइंग स्क्वाड का प्रभारी बनाया गया था, जो दिल्ली में नागरिक अशांति को नियंत्रित करने में पुलिस की सहायता करती थी। उनके सौहार्दपूर्ण लेकिन दृढ़ नेतृत्व ने कई कठिन परिस्थितियों में लोगों में आत्मविश्वास और अनुशासन का संचार किया।
सन् 1947 में कश्मीर में युद्ध छिड़ने पर यही स्थिति फिर से सामने आई, जब भारत ने पाकिस्तानी आक्रमणकारियों से कश्मीर को बचाने के लिए अपनी सेना भेजने का फैसला किया। हालांकि जिम्नास्टिक करते समय कलाई में लगी पुरानी चोट के कारण सोमी के बाएं हाथ पर प्लास्टर चढ़ा हुआ था, फिर भी उन्होंने अपनी कंपनी के साथ जाने की जिद की। उनकी इतनी उत्सुकता देखकर कमांडिंग ऑफिसर आखिरकार मान गए और उन्हें हवाई जहाज से आने और श्रीनगर हवाई अड्डे की सुरक्षा का जिम्मा संभालने के लिए 4 कुमाऊं रेजिमेंट की दो कंपनियों की कमान संभालने का आदेश दिया। सफदरजंग हवाई अड्डे पर ली गई उनकी कुछ अनमोल ब्लैक एंड व्हाइट तस्वीरें हैं, जिनमें उनके हाथ पर प्लास्टर चढ़ा हुआ है और वे मुस्कुरा रहे हैं, निस्संदेह युद्ध में अपने साथियों के साथ होने की खुशी से।
जब सोमी अक्टूबर के अंत में श्रीनगर पहुंचे, तब हमलावर बारामूला की ओर बढ़ रहे थे और रास्ते में बडगाम पड़ता था। वहीं एक खूनी लड़ाई लड़ी गई और इस बहादुर युवा अधिकारी ने स्वतंत्र भारत का पहला परमवीर चक्र जीता।
सोमी की जीवन कहानी अक्सर किताबों और सेना के मेसों में उद्धृत की जाती है। यह अदम्य साहस और गौरव की गाथा है। उनके द्वारा स्थापित उदाहरण को अत्यंत सम्मान के साथ याद किया जाता है और उन्हें न केवल चौथी कुमाऊं रेजिमेंट बल्कि पूरे सशस्त्र बलों द्वारा स्नेहपूर्वक याद किया जाता है। युवा सैनिकों को उनकी वीरता से प्रेरित करते रहने के लिए, रानीखेत स्थित कुमाऊं रेजिमेंटल सेंटर के प्रशिक्षण मैदान का नाम सोमनाथ शर्मा ग्राउंड रखा गया है। सोमनाथ द्वार नामक एक सुंदर लाल ईंट का प्रवेश द्वार बर्फ से ढके हिमालय से घिरे सुव्यवस्थित परेड ग्राउंड की ओर जाता है। इस मैदान ने हजारों युवा सैनिकों, कुमाऊं रेजिमेंट और नागा रेजिमेंट के नए रंगरूटों

□□ □□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□, □□□□□□□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□□ □□ □□□ □□□ □□□□ □□□□ □□□ □□□□
Sahayak:

Karam Singh

Richhmar Gali, Kashmir
13 अक्टूबर 1948
खाई से झांकता सिख सिपाही चिंतित दिख रहा है। ‘दुश्मन करीब आ गया है। हम तीन हैं, तुम चौथे हो—हम क्या करें?’ वह अपने बगल में खड़े सेक्शन कमांडर लांस नायक करम सिंह से फुसफुसाता है, जो बिल्कुल स्थिर और सीधा खड़ा है। करम सिंह छह फीट से भी अधिक लंबे, आकर्षक सिख हैं। उनकी गर्व से उठी हुई मूंछें और घनी दाढ़ी उन्हें गंभीर और प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। उनके हाथ में.303 राइफल है। पिछली मुठभेड़ में लगी चोटों के कारण उनकी पतलून खून से लथपथ है। उन्होंने और उनके साथियों ने पाकिस्तानी सेना के पहले हमले को विफल कर दिया था, लेकिन दुश्मन नए जोश के साथ वापस आ गया है।
करम सिंह कोई जवाब नहीं देता। उसकी आँखें एकाग्रता से सिकुड़ी हुई हैं। वह अपने चौकी की ओर बढ़ते हुए पाकिस्तानी सैनिकों को देख रहा है। उसकी टुकड़ी में केवल चार जवान हैं और उन पर पहले ही भीषण गोलाबारी हो चुकी है। दुश्मन की लगातार तोपखाने की गोलाबारी से लगी गोलियों और चट्टानों के टुकड़ों से घायल होकर सभी घायल हैं और खून बह रहा है।
वह अपने हाथों में पकड़ी बंदूक को देखता है, लेकिन जानता है कि दुश्मन इतने ज़्यादा हैं कि गोलीबारी कारगर नहीं होगी। इसके अलावा, उसके पास गोला- बारूद भी कम पड़ रहा है और लगातार गोलाबारी के चलते मुख्य कंपनी की चौकी से, जो काफी पीछे है, और गोलाबारी लाना भी असंभव है। दुश्मन सैनिक और करीब आ गए हैं।
करम सिंह ने अपने बैग में हाथ डाला और एक ग्रेनेड निकालकर, उसके पिन को अपने दांतों से काट दिया। फिर उसने अपना हाथ आधे वृत्त में घुमाते हुए, 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के नारा के साथ उसे उनकी ओर फेंक दिया। मांसपेशियों की हलचल से उत्पन्न शारीरिक तनाव सीधे उसके पैर तक पहुंचता है और वह दर्द से कराह उठता है, लेकिन वह हवा में उड़ते हुए ग्रेनेड के चाप से अपनी निगाहें नहीं हटाता है।

यह आगे बढ़ते सैनिकों की पहली पंक्ति के ठीक रास्ते में गिरता है और रिचमार गली में एक जोरदार धमाका गूंज उठता है। कुछ सैनिक दर्द से चीखते हुए गिर पड़ते हैं; अन्य अपना आपा खो बैठते हैं।
तभी करम सिंह अपने थके-हारे और घायल साथियों के तनावग्रस्त, कीचड़ से सने चेहरों की ओर मुड़कर देखते हैं और मुस्कुराते हैं। ‘अगर हम लड़ते-लड़ते मर भी जाएँ, तो हमें हमेशा याद रखा जाएगा,’ वे दृढ़ स्वर में कहते हैं। ‘साड़े पीछे बठरे ने लादनवाले। सारी कंपनी सादे पीछे है।’ इतना कहकर वे अपने थैले में एक और ग्रेनेड ढूंढते हैं, पिन निकालते हैं और आगे बढ़ रहे दुश्मन सैनिकों पर फेंक देते हैं। एक और घातक धमाका होता है।

13 अक्टूबर 1948 को सुबह लगभग 6 बजे, लांस नायक करम सिंह रिखमार गली में अल्फा कंपनी की एक चौकी की कमान संभाल रहे थे, तभी पाकिस्तानी सेना ने उन पर जानलेवा हमला कर दिया। ईद का दिन था और पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सेना से हारे हुए क्षेत्र को वापस पाने के लिए हताशा में हमला छेड़ दिया था। करम सिंह और उनके जवान संख्या में बहुत कम थे, लेकिन उन्होंने दुश्मन के सामने घुटने टेकने से इनकार कर दिया, जिसका उद्देश्य रिखमार गली पर फिर से कब्जा करना, तिथवाल को पार करते हुए श्रीनगर पर हमला करना था।
दुश्मन सैनिक लगातार हमले करते हुए प्रथम सिख रेजिमेंट की ए कंपनी की चौकी पर कब्जा करने के प्रयास में आगे बढ़ रहे थे। करम सिंह और उनके साथियों ने दो भीषण हमलों के दौरान अपनी चौकी पर डटे रहने में कामयाबी हासिल की - पहला हमला सुबह 6 बजे और दूसरा हमला सुबह 9:30 बजे हुआ।
1 सिख रेजिमेंट के जवान आज भी इस बात का जिक्र करते हैं कि करम सिंह के साहस और अंत तक लड़ने के दृढ़ संकल्प के कारण ही इन दोनों हमलों को विफल किया जा सका। माना जाता है कि उन्होंने लगभग अकेले ही दुश्मन के आक्रमण को रोका और अपने सटीक निशाने वाले ग्रेनेडों से दो टुकड़ियों को नष्ट कर दिया। लेकिन दूसरे हमले को नाकाम करने के बाद, इस बहादुर सिपाही को जल्द ही एहसास हो गया कि वह ज्यादा देर तक टिक नहीं पाएगा। वह और उसके साथी दुश्मन के मुकाबले भारी संख्या में थे, यानी एक के मुकाबले दस सैनिक थे; उनमें से

तीन गंभीर रूप से घायल हो चुके थे और उनके पास गोला-बारूद भी खत्म हो रहा था। दुश्मन की ओर से हो रही भारी तोपखाने और मोर्टार फायरिंग में मुख्य कंपनी की स्थिति से गोला-बारूद मिलने की भी कोई उम्मीद नहीं थी। उन्होंने मुख्य कंपनी में वापस जाने का फैसला किया, लेकिन अपने दो बुरी तरह घायल साथियों को साथ ले जाने पर जोर दिया।
अपनी जान की परवाह किए बिना, उसने चौथे सैनिक की मदद से, जो अकेला सुरक्षित बचा था, दो घायल सैनिकों को बाहर निकाला। अपनी जान जोखिम में डालकर, उन दोनों ने घायल सैनिकों को दुश्मन की भीषण गोलाबारी के बीच घसीटते हुए मुख्य कंपनी के बंकरों तक पहुँचाया।
सुबह करीब दस बजे दुश्मन ने एक और हमला किया, इस बार कंपनी की चौकी पर। अपनी गंभीर चोटों की परवाह किए बिना, करम सिंह अग्रिम पंक्ति की खाइयों से लड़ते रहे। दुश्मन के मोर्टार और गोलाबारी से प्लाटून के लगभग सभी बंकर नष्ट हो जाने के बावजूद, वे डटे रहे। एक बंकर से दूसरे बंकर जाते हुए, उन्होंने अपने थके हुए साथियों से साहस बनाए रखने और गर्वित खालसा योद्धाओं की तरह लड़ने का आग्रह किया। उन्होंने घायलों को बाहर निकालने में मदद की और स्वस्थ सैनिकों को निडर होकर जवाबी हमला करने के लिए प्रोत्साहित किया। दिन भर दुश्मन के लगातार हमलों के बावजूद, उन्होंने सैनिकों का मनोबल गिरने नहीं दिया।
इन हमलों में से एक के दौरान, करम सिंह एक बार फिर घायल हो गए, लेकिन उन्होंने अपना हौसला नहीं खोया और कंपनी की घटती संख्या के बावजूद लड़ाई जारी रखी। दोपहर करीब 1 बजे हुए अगले हमले में, करम सिंह ने वीरता के एक और अनुकरणीय कार्य से अपनी पलटन (यूनिट) के युद्ध अभिलेखों में अपना नाम अमर कर दिया।

पांचवां पाकिस्तानी हमला, दोपहर 1 बजे। पाकिस्तानी सैनिकों ने पांचवां हमला कर दिया है। सुबह 6 बजे से कोई राहत नहीं मिली है और थकान के साथ-साथ चोट का दर्द भी करम सिंह को बुरी तरह थका रहा है। दर्द सहते हुए वह दांत पीसता है और ग्रेनेड के धुएं में आगे बढ़ते

दुश्मन सैनिकों पर अपनी बंदूक तान देता है। वह देखता है कि उनमें से दो सैनिक आखिरी कुछ गज की दूरी तय करके उसकी खाई के ठीक सामने आ गए हैं और राइफलें लहरा रहे हैं। वे इतने करीब हैं कि अपने सैनिकों को चोट पहुंचाए बिना उन्हें गोली मारना संभव नहीं है। एक पल भी संकोच किए बिना, करम सिंह अपनी राइफल पर संगीन लगाता है और खाई से बाहर कूद जाता है। एक भयानक युद्धघोष के साथ संगीन को हवा में उठाते हुए, वह उसे अपने सामने खड़े पाकिस्तानी सैनिक की छाती में घुसा देता है। सदमे में डूबा वह सैनिक कुछ समझ पाता, उससे पहले ही उस बलवान सिख ने फिर से वार कर दिया। 'घोंप निकल, घोंप निकल', करम सिंह अपने स्वर में बुदबुदाता है, उसे केंद्र में अपने उस्ताद (प्रशिक्षक) द्वारा सिखाई गई ड्रिल याद आ रही है।
दुश्मन सैनिक उसके सामने मृत पड़ा है, उसकी खुली आँखों में खौफ साफ झलक रहा है। करम सिंह ने संगीन को उसके शरीर से बाहर निकाला, उसे अपनी पूरी ताकत से पीछे खींचा और पलक झपकते ही उसे फिर से ज़ोर से आगे बढ़ाया, और गोली चलाने की कोशिश कर रहे दूसरे सैनिक के पेट में घुसा दिया। घातक धार उस सैनिक की त्वचा और आंतों को चीरती हुई खून की एक धारा बहा ले गई, जिससे वह दर्द और दहशत से कराहते हुए गिर पड़ा। करम सिंह ने अपनी संगीन बाहर निकाली, और अपना हाथ सिर के ऊपर उठाकर उसे एक बार फिर उस गिरे हुए सैनिक के पेट में घुसा दिया, जिससे उसे हमेशा के लिए सारी पीड़ा से मुक्ति मिल गई। इससे पहले कि उसके साथी समझ पाते कि क्या हुआ है, वह खाई में कूद गया।
इस बर्बर हमले और बलवान सिख योद्धा द्वारा की गई निर्मम हत्याओं से स्तब्ध होकर दुश्मन सैनिक एक बार फिर पीछे हट जाते हैं। हालांकि वे हार नहीं मानते और कंपनी द्वारा किए गए मजबूत बचाव के बावजूद बार-बार लौटते रहते हैं।
शाम के 7 बज चुके थे जब दुश्मन का मनोबल आखिरकार टूट गया और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। तब तक, उन्होंने करम सिंह की कंपनी पर आठ हमले किए थे, जिन्हें सिखों ने नाकाम कर दिया था। उन्होंने 3,000 गोले दागे थे, जिनसे भारी नुकसान हुआ और ए कंपनी के लगभग सभी बंकर नष्ट हो गए, लेकिन वे जवानों का मनोबल नहीं तोड़ पाए। इस लड़ाई में सिखों की एक टुकड़ी ने 10 जवान खो दिए और 37 घायल हो गए। बाद में डिवीजन कमांडर मेजर जनरल के. एस. थिमैया (डीएसओ) ने इस लड़ाई को 'अद्वितीय रूप से शानदार लड़ाई' बताया। लांस नायक करम सिंह (एमएम) को उनकी कर्तव्यनिष्ठा और अतुलनीय वीरता के लिए परम वीर

चक्र (पीवीसी) से सम्मानित किया गया। वह जीवित रहते हुए परम वीर चक्र प्राप्त करने वाले पहले सैनिक थे।

करम सिंह न केवल अपनी चोटों से बच गए, बल्कि उन्होंने भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से मिलकर अपना पीवीसी (पर्सनल सर्टिफिकेट) भी प्राप्त किया।
यह उनका दूसरा वीरता पुरस्कार था। ब्रिटिश सेना के अधीन बर्मा में बहादुरी से लड़ने के लिए उन्हें पहले ही सैन्य पदक से सम्मानित किया जा चुका था। 15 अगस्त 1947 को प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराने के लिए चुने गए पांच व्यक्तियों में वे भी शामिल थे। वे 77 वर्ष की आयु तक जीवित रहे, अपनी प्रिय बटालियन में मानद कप्तान के पद तक पहुंचे और 1993 में शांतिपूर्वक अपने घर पर उनका निधन हो गया। करम सिंह को उनकी रेजिमेंट द्वारा एक ऐसे युद्ध नायक के रूप में याद किया जाता है, जिन्होंने न केवल अपने सैनिकों को लड़ने और मारने के लिए प्रेरित किया, बल्कि रिचमार गली की लड़ाई में भारी संख्या में दुश्मन होने के बावजूद उनका आत्मविश्वास बनाए रखने में भी मदद की।

करम के बारे में मैंने जो कुछ भी सीखा, उसका अधिकांश हिस्सा सूबेदार काला सिंह से मिला, जो प्रथम सिख रेजिमेंट के सेवानिवृत्त सैनिक थे और कई साल पहले लांस नायक करम सिंह के सहायक थे। मैं ट्रेन से गया, फिर बठिंडा से 45 किलोमीटर की दूरी सेना की गाड़ी में तय करके चेहलनवाली गांव में उनके ईंटों से बने घर में उनसे मिलने गया।
यह साक्षात्कार काला साहब के गर्मजोशी भरे पंजाबी आतिथ्य के साथ हुआ, जिसमें खट्टी लस्सी के अनगिनत गिलास, घी और अचार के साथ परोसी जाने वाली रोटियां और पूरे परिवार के साथ एक फोटो सेशन शामिल था, जिसमें परिवार की बकरी और ट्रैक्टर भी शामिल थे।

जब बुजुर्ग काला करम सिंह साहब के बारे में बात करते हैं तो उनकी आंखों में एक अलग ही चमक आ जाती है। उन्होंने 1948 के युद्ध के इस नायक के साथ सेवा की थी और उनके पास कई यादें हैं जिन्हें वे साझा करने के लिए उत्सुक रहते हैं।
काला कहते हैं, ‘हम सभी जानते थे कि युवा सैनिक के रूप में साहब को बर्मा में सैन्य पदक मिला था। हालांकि वह इसके बारे में ज्यादा बात नहीं करते थे, लेकिन वह अक्सर हमें रिचमार गली की लड़ाई के किस्से सुनाते थे, जब उन्होंने लगभग अकेले ही पाकिस्तानी सेना द्वारा कंपनी पोस्ट पर कब्जा करने के प्रयास को विफल कर दिया था। वह एक साहसी व्यक्ति थे। वह न केवल युद्ध में, बल्कि शांति के समय में भी लड़ने में सक्षम थे। जब उन्हें लगता था कि कुछ गलत है, तो वह इसे कहने में कभी संकोच नहीं करते थे।’
जब करम सिंह प्रथम सिख थाने के क्वार्टर मास्टर हवलदार थे, तब कला को उनका सहायक नियुक्त किया गया था। नियमित कामों के अलावा, कला का काम करम की ओर से दस्तावेज़ पढ़ना और लिखना भी था। 'साहब कभी स्कूल नहीं गए थे। वे मुश्किल से अपना नाम लिख पाते थे, इसलिए मैं राशन कार्ड, निंदा बोर्ड आदि बनाने में उनकी मदद करता था,' वे कहते हैं।
काला को एक ऐसी घटना सुनाना पसंद है जो करम सिंह के निडर और स्पष्टवादी स्वभाव को उजागर करती है। '60 के दशक की शुरुआत में, करम सिंह मेरठ स्थित सिख रेजिमेंटल सेंटर में थे। उन्हें सैनिकों के लिए एक स्थानीय चक्की से चीनी खरीदने के लिए कहा गया था और वे यही कर रहे थे कि किसी ने उनके ध्यान में लाया कि चीनी की बोरियों का वजन बढ़ाने के लिए उन्हें पानी में भिगोया जा रहा है। क्रोधित करम ने चक्की मालिक से कहा कि वे कोई भी गीली बोरी स्वीकार नहीं करेंगे। चक्की मालिक, जो भ्रष्ट लेकिन प्रभावशाली व्यक्ति था, का करम से झगड़ा हुआ। जब करम अपनी बात पर अड़े रहे तो चक्की मालिक ने उन्हें धक्का दिया और धमकी दी कि दिल्ली में उसके संपर्क हैं।
गुस्सैल स्वभाव के करम का सब्र टूट गया था। उसने चक्की मालिक की पिटाई कर दी। मामला दर्ज हुआ और चूंकि चक्की मालिक के ऊंचे पदों पर संबंध थे, इसलिए एक आम नागरिक के साथ मारपीट करने के जुर्म में करम को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया।
अन्याय को चुपचाप सहन न करने वाले करम अपने युद्ध पदकों के साथ दिल्ली गए और राष्ट्रपति से मुलाकात का अनुरोध किया। उन्हें मुलाकात की अनुमति मिल

[illegible]
The jawans were thrilled with his victory. Karam had been proved a hero in their eyes once again. ‘Ek kahawat hai jee, karela—woh bhi neem chada,’ (A bitter gourd, that too one that grows on neem) chuckles Kala Singh, rubbing a hand over his white beard. ‘Ek toh pehle hi kadwa, upar se neem ke ped pe chad ke baitha hua. Aisa tha Karam Singh Saab. Ek toh sardar tha upar se uske pas award tha!’ (His fearlessness was compounded by his forthrightness. That was our Karam Singh Sahib—for one he was a sardar and then he had his awards!)

[illegible]

करम सिंह ने 1950 के दशक की शुरुआत में गुरदयाल कौर से शादी की। इस दंपति के दो बच्चे थे—एक बेटा और एक बेटी। बेटे ने कक्षा 10 तक पढ़ाई की और फिर खेती करने लगा, जबकि बेटी की शादी हो गई।
करम को यह विशिष्टता प्राप्त है कि वह अपनी छाती पर पीवीसी पहनने वाले पहले जीवित सैनिक हैं।

रामा रघुबा राणे

जम्मू और कश्मीर
अप्रैल 1948
रामा राघोबा राणे पेट के बल रेंगते हुए एक स्टुअर्ट टैंक के नीचे से निकल रहे हैं, जो धीरे-धीरे बारूदी सुरंगों से भरे इलाके को पार कर रहा है। वे टैंक की गति के अनुरूप चलने की कोशिश कर रहे हैं। मोर्टार विस्फोट से बुरी तरह घायल हुए उनके पैर में हर हरकत से दर्द होता है, लेकिन वे दर्द को नजरअंदाज करते हुए, टैंक के विशाल पहियों पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जिनकी गड़गड़ाहट उनके कानों में गूंज रही है। राणे ने दोनों हाथों में टैंक से बंधी मोटी रस्सियाँ पकड़ रखी हैं। वे इनका इस्तेमाल टैंक को रुकने या चलने का संकेत देने के लिए कर रहे हैं। जब भी उन्हें आगे कोई बारूदी सुरंग दिखाई देती है, वे अपने दाहिने हाथ से रस्सी खींचते हैं और टैंक रुक जाता है। बारूदी सुरंग से निकलने के बाद, वे अपने बाएं हाथ से रस्सी खींचते हैं और टैंक फिर से चलने लगता है।
राजौरी पर हमला करने और नरसंहार, बलात्कार और लूटपाट करने के इरादे से आए पाकिस्तानी हमलावरों को रोकने की योजना में बख्तरबंद वाहन शामिल हैं। चूंकि हर पल निर्दोष स्थानीय लोगों के लिए जीवन और मृत्यु का सवाल है, इसलिए गति अत्यंत महत्वपूर्ण है और भारतीय सेना को यथाशीघ्र वहां पहुंचना होगा।
राणे ने टैंक की आड़ में बारूदी सुरंगों से भरे क्षेत्र में आगे बढ़ने की यह विधि विकसित की है क्योंकि यह क्षेत्र लगातार दुश्मन की मशीन गन की गोलीबारी की चपेट में है और उनका बारूदी सुरंगों को साफ करने वाला दल इसके बिना काम करने में सक्षम नहीं है।
उसे एक गोलाकार गड्ढा दिखाई देता है, जिससे पता चलता है कि नीचे एक टैंक-रोधी खदान बिछी हुई है। वह अपने दाहिने हाथ में बंधी रस्सी को खींचता है। उसके ऊपर टैंक रुक जाता है। अपने दोनों कीचड़ से सने, खुरदुरे हाथों की उंगलियों से राणे खदान के चारों ओर से पत्थर और मलबा हटाता है। फिर वह धीरे से ढक्कन हटाता है और अंदर हाथ डालकर फ्यूज को निष्क्रिय कर देता है। ढक्कन वापस लगाकर वह एक पल के लिए आंखें बंद करता है और राहत की सांस लेता

है। फिर वह अपने बाएं हाथ में बंधी रस्सी को खींचता है और फिर से रेंगना शुरू कर देता है।

89 वर्षीय कर्नल जे. पी. चोपड़ा, वीर चक्र विजेता, नोएडा के सेक्टर 31 स्थित अपने बंगले में बैठे हैं। उनके दो कुत्ते, पेप्पर और कुकी, उनके आसपास उछल-कूद कर रहे हैं। वे रूखेपन से कहते हैं, 'कुकी, यहाँ से चली जाओ।' कुकी अपनी पूंछ हिलाना बंद कर देती है और सोफे के नीचे दुबक जाती है। पेप्पर चुपके से दरवाजे से बाहर निकलकर पर्दे के पीछे छिप जाती है, और बातचीत में फिर से शामिल होने का इंतजार करती है।
कर्नल और राणे को एक ही कंपनी में काम किए हुए पैंसठ साल से भी ज़्यादा हो गए हैं, लेकिन कर्नल को उस समय की यादें आज भी ताज़ा हैं। वे इंजीनियर्स यूनिट से थे और उनका काम था बारूदी सुरंगों को हटाना, जहाँ सड़कें नहीं थीं वहाँ सड़कें बनाना और कश्मीर में पाकिस्तानी हमलावरों पर हमला करने में सेना की मदद करना। वे याद करते हुए कहते हैं, 'यह सन् 1947 का आखिरी समय था, युद्ध के बादल मंडरा रहे थे और पाकिस्तान दो दिशाओं से कश्मीर पर हमला कर रहा था—श्रीनगर हवाई अड्डे से और जम्मू की तरफ से भी, जहाँ से वे अखनूर-नौशेरा मार्ग पर आ रहे थे।'
भारतीय सेना को झांगर से पीछे हटकर नौशेरा जाना पड़ा। फिर उन्हें वापस झांगर पर हमला करने का आदेश दिया गया। द्वितीय लेफ्टिनेंट चोपड़ा और 11 लोगों की एक टुकड़ी को झांगर की ओर जाने वाले रास्ते को साफ करने का काम सौंपा गया था, जबकि राणे दो टुकड़ियों (22 जवानों) के साथ राजौरी पर हमला करने के लिए टैंकों के लिए सड़क बनाने की कोशिश कर रहे थे।
बारिश होने पर छह इंच पानी से भरे नालों से जवान दस फीट गहरे नालों तक पहुँच जाते थे। वे कम भोजन और आराम के साथ काम करते थे, अक्सर सूखे शकरपारे खाकर काम को जल्द से जल्द पूरा करते थे। एक टैंक के बारूदी सुरंग पर चढ़ने से नष्ट हो जाने के बावजूद भी वे डटे रहे। मृतकों को निकालने और घायल सैनिकों की मदद करने, सड़कें बनाने, बाधाओं को हटाने और बारूदी सुरंगों को

साफ करने में वे दिन-रात का हिसाब भूल गए, ताकि सेना राजौरी पहुँच सके और पाकिस्तानी हमलावरों द्वारा मचाए जा रहे नरसंहार को रोक सके।
राजौरी में सेना पहुंचाने और इस तरह कई निर्दोष लोगों की जान बचाने का श्रेय राणे को जाता है।

राजौरी की ओर अग्रसर अप्रैल के एक सुहावने दिन, सुबह के 6 बजे, रामा राघोबा राणे और उनकी टुकड़ी को नौशेरा के पास नादपुर दक्षिण किला क्षेत्र से शुरू होने वाले बारूदी सुरंगों को हटाने के कार्य पर लगाया जाता है। उनका काम टैंकों के लिए एक सुरक्षित मार्ग बनाना है ताकि वे नौशेरा से राजौरी तक जा सकें, जहां हमलावर नागरिक आबादी पर हमला कर रहे हैं।
झांगर पर पुनः कब्ज़ा करने के बाद, पाकिस्तानी सेना भाग जाती है, लेकिन भागने से पहले राजौरी से पंजाब तक जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग को पूरी तरह से नष्ट कर देती है। राजौरी पहुँचने का कोई और रास्ता न होने के कारण भारतीय सैनिकों को चिंगास तक अपना मार्ग बनाने का आदेश दिया जाता है, जो कश्मीर जाने का एक पुराना मुगल मार्ग है। द्वितीय लेफ्टिनेंट राणे और उनकी 37 असॉल्ट फील्ड कंपनी की टुकड़ी को 4 डोगरा रेजिमेंट में शामिल किया जाता है, जो 8 अप्रैल 1948 को नौशेरा से 11 किमी उत्तर में स्थित बरवाली रिज पर हमला करके राजौरी की ओर अग्रसर होती है। वे दुश्मन को खदेड़ देते हैं और शाम 4:30 बजे तक बरवाली रिज पर कब्ज़ा कर लेते हैं, लेकिन आगे नहीं बढ़ पाते क्योंकि इलाका न केवल पहाड़ी है, बल्कि सड़क पर बड़े पैमाने पर अवरोध और बारूदी सुरंगें भी बिछी हुई हैं।
इसी समय राणे और उनकी छोटी सी सैपर टीम कार्रवाई में जुट जाती है। वे सड़क अवरोधों को हटाना शुरू करते हैं, लेकिन जल्द ही अंधेरा हो जाता है और दुश्मन की गोलीबारी से वे चौंक जाते हैं। पाकिस्तानी सैनिक वापस आ चुके हैं और सड़क साफ करने की कोशिश कर रहे जवानों पर मोर्टार से हमले कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश, राणे अपने चार जवानों को खो देते हैं। सैपर अबाजी मोरे और रघुनाथ मोरे शहीद हो जाते हैं; सैपर सीताराम सुतार और केशव अंब्रे बुरी तरह घायल हो जाते हैं और बाद में अस्पताल में उनकी मृत्यु हो जाती है, जबकि लांस नायक एम. के. जाधव की रीढ़ की हड्डी में छर्रा लग जाता है, जिससे वे जीवन भर के लिए लकवाग्रस्त हो जाते हैं। राणे की जांघ पर भी छर्रे से गहरा घाव हो जाता है, लेकिन पैर से भारी रक्तस्राव के बावजूद वे अस्पताल से निकाले जाने से इनकार कर देते हैं और केवल प्राथमिक उपचार की मांग करते हैं।

बुलडोजर ऑपरेटर को दुश्मन की गोलीबारी सुनाई नहीं देती क्योंकि उसका अपना बुलडोजर इतना शोर कर रहा था कि उसे बाहर निकालकर सुरक्षित स्थान पर ले जाना पड़ा। हालांकि पाकिस्तानी सैनिकों को एक बार फिर खदेड़ दिया गया, लेकिन रात में सड़क अवरोध हटाने की योजना रद्द कर दी गई।
अगले दिन सुबह होते ही राणे भूस्खलन से बने मलबे को हटाने का काम फिर से शुरू कर देते हैं। सुबह 10 बजे तक वे सड़क पर मौजूद अवरोध को हटाने में कामयाब हो जाते हैं और टैंक आगे बढ़ जाते हैं। जल्द ही उन्हें एक और भूस्खलन का सामना करना पड़ता है, जिसे राणे दोपहर 3 बजे तक फिर से हटा देते हैं। यह प्रक्रिया जारी रहती है, राणे टैंकों पर सवार होकर आगे बढ़ते हैं; रास्ते में जब भी कोई बाधा आती है, वे अपने आदमियों के साथ तुरंत टैंक से उतर जाते हैं और वे रास्ता साफ करने में जुट जाते हैं। उन्हें गिरे हुए पेड़ मिलते हैं जिन्हें उड़ाना पड़ता है, एक पुलिया इतनी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाती है कि उसके लिए नया रास्ता बनाना पड़ता है और दुश्मन की लगातार गोलीबारी से बचना पड़ता है। यह सिलसिला शाम तक चलता रहता है, जब टैंक रुक जाते हैं और आदमी जल्दी से अपने लिए खाइयां खोदकर रात के लिए सुरक्षित स्थान पर चले जाते हैं।

अगले दिन सुबह करीब 4:45 बजे राणे काम पर लौट आता है। अपनी जान को भारी खतरे में डालकर भी वह सड़क अवरोधों और बारूदी सुरंगों को हटाता रहता है, जिससे टैंकों को आगे बढ़ने में मदद मिलती है। धीरे-धीरे और लगातार, वे आगे बढ़ते टैंकों के लिए रास्ता बनाते हैं और दोपहर 2 बजे चिंगास पहुँच जाते हैं।
राणे रात 9 बजे तक सड़क को पूरी तरह खोलने के लिए काम करते रहे। आखिरकार, अगले दिन सुबह 11 बजे सड़क सभी वाहनों के लिए खोल दी गई, लेकिन जवानों को जल्द ही पता चला कि चिंगास से आने वाली सड़क पर और भी ज्यादा अवरोध हैं। राजौरी में हुए नरसंहार की खबरें सेना तक पहुँचने के कारण, राणे की टुकड़ी के बाकी सैनिकों को चिंगास से सड़क साफ करने का काम सौंपा गया, जबकि

उन्होंने और उनकी पलटन ने तावी नदी के किनारे-किनारे राजौरी तक टैंकों के लिए रास्ता बनाया।
जवान फिर से काम पर लग जाते हैं और नदी किनारे पड़े बड़े-बड़े पत्थरों को उड़ाने लगते हैं। नदी का बहाव लहरदार है और टैंकों को अक्सर पानी में उतरना और निकलना पड़ता है। कभी-कभी वे फंस जाते हैं और उन्हें खींचकर निकालना पड़ता है। 11 अप्रैल को वे फिर रुकते हैं और आखिरकार 12 अप्रैल को शाम 6 बजे टैंक राजौरी पहुँच जाते हैं। राणे ने इन सभी दिनों में बिना आराम किए काम किया है और यह एक चमत्कार ही है कि वे 1 कुमाऊं के जवानों और टैंकों को वहाँ तक पहुँचाने में कामयाब रहे।
राजौरी पहुँचने पर उन्हें पता चलता है कि वह एक वीरान शहर है। वे खून से लथपथ शवों के दो गड्ढों को पार करते हैं, जिनमें हमलावरों द्वारा मारे गए महिलाओं और बच्चों के शव भी शामिल हैं। सेना के आने से हिंसा समाप्त हो जाती है और जल्द ही शरणार्थी अपने गांवों में लौटने लगते हैं। इंजीनियरों को राजौरी युद्ध सम्मान से सम्मानित किया जाता है और राणे को कर्तव्यनिष्ठा, साहस और वीरता के लिए परमवीर चक्र से नवाजा जाता है।

मेजर रामा राघोबा राणे के असाधारण साहस को रेजिमेंट और उन्हें सबसे अधिक प्यार करने वाली महिला लंबे समय तक याद रखेगी। जब मैंने उनकी विधवा श्रीमती राजेश्वरी राणे से उनके पति के बारे में पूछा, जो जीवित रहते हुए पीवीसी वर्दी पहनने वाले दुर्लभ पुरुषों में से एक थे, तो उन्होंने सबसे पहले उनके साहस की याद साझा की।
उनकी एक और अविस्मरणीय याद उस पल की है जब वे पहली बार एक-दूसरे से मिले थे। वे उनके स्कूल में मुख्य अतिथि थे, उस बहादुर अधिकारी को उनके द्वारा प्राप्त पीवीसी (पुलिस गार्ड) के लिए सम्मानित किया जा रहा था। वह कक्षा 12 की छात्रा थीं और मंच पर स्वागत गीत गा रही थीं।

पहली नज़र में प्यार
उस दिन कारवार तालुका के सदाशिवगढ़ स्थित शिवाजी हाई स्कूल में काफी उत्साह का माहौल था। द्वितीय लेफ्टिनेंट रमा रघुबा राणे को देश के सर्वोच्च वीरता पुरस्कार से सम्मानित किया जा रहा था। कार्यक्रम की शुरुआत लड़कियों के एक समूह द्वारा गाए गए स्वागत गीत से हुई। लीला भी उन गायिकाओं में से एक थीं और उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया। शर्मिंदा राणे यह सब देख रहा था कि तभी उसकी नजर साड़ी पहने एक खूबसूरत लड़की पर पड़ी। वह मधुर स्वर में पूरे मन से गा रही थी और उसे श्रद्धा से देख रही थी। उसे देखते ही उसे लगा कि यही वह है जिसके साथ वह अपना पूरा जीवन बिताना चाहता है और उसने बिना देर किए अपने इस विचार को उसके परिवार को बता दिया।
उस समय लीला की उम्र मात्र 19 वर्ष थी। राणे एक राष्ट्रीय नायक थे और यद्यपि दोनों के बीच उम्र का अंतर 15 वर्ष से अधिक था, फिर भी लीला के परिवार ने उन्हें दामाद के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लिया। 3 फरवरी 1955 को दोनों का विवाह हो गया।

अब अठहत्तर वर्ष की श्रीमती राणे पुणे स्थित अपने घर में बैठी हैं और अपने उन्नीस वर्ष के दिनों और उस साहसी और निडर सेना अधिकारी की यादों में धीरे से मुस्कुराती हैं, जिन्हें उनसे प्रेम हो गया था। 'उन्होंने अपनी छुट्टी बढ़ा दी और हमारी शादी के बाद ही रवाना हुए। उससे पहले उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या वह मेरा नाम बदलकर राजेश्वरी रख सकते हैं। उन्होंने मुझे बताया कि देशभर में उनके लिए हो रहे पीवीसी सम्मान समारोहों के दौरान उन्हें एक बार एक महाराजा के महल में आमंत्रित किया गया था और वहाँ उन्होंने महारानी को देखा था जिनका नाम राजेश्वरी था। वह सचमुच बहुत सुंदर थीं और उन्होंने उन्हें पूरी तरह से प्रभावित कर दिया था।'
जब वह घर लौटे तो उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि उन्हें भी उनके जैसी ही सुंदर लड़की मिले। जब उन्होंने मुझे पहली बार देखा, तो उन्हें मेरी याद आ गई और उन्हें लगा कि मैं ही उनके लिए बनी हूँ। “क्या आपको राजेश्वरी नाम

पसंद है?” उन्होंने पूछा था और मैंने हाँ कह दी थी। हम साधारण लोग थे। उन्होंने मुझे महारानी का दर्जा दे दिया,’ वह शर्माते हुए कहती हैं।
वह उनके साहसी और निडर स्वभाव की कई कहानियाँ सुनाती हैं, जिनमें से कुछ उन्होंने उनसे या उनके सहयोगियों से सुनी थीं, और कुछ उनकी आँखों के सामने घटी थीं, उन वर्षों में जब वे साथ रहे थे। वह मुझे बताती हैं कि कैसे जब वे कश्मीर में सेवा कर रहे थे, एक बार एक लड़की कुएँ में गिर गई; उन्होंने अपनी जान की परवाह किए बिना खुद कुएँ में छलांग लगा दी और उसे बाहर निकाल लिया।
एक बार, जब उनकी शादी को कुछ ही साल हुए थे, तब वह उन्हें पुणे के भानुविलास हॉल में फिल्म दिखाने ले गए थे। हॉल के बाहर इंतजार कर रही भीड़ में झगड़ा छिड़ गया और उसने हिंसक रूप ले लिया। जब हालात बेकाबू होने लगे, तो राणे झगड़ती भीड़ में कूद पड़े और भीड़ पर चिल्लाकर उसे शांत किया। एक बार फिर, उन्होंने अपनी सुरक्षा की परवाह नहीं की, जबकि उनकी बेहद चिंतित युवा पत्नी चुपचाप यह सब देखती रही।
फिर, 1962 में, जब राणे कलकत्ता में तैनात थे, हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़क उठे। दंगों को नियंत्रित करने के लिए तैनात राणे अक्सर अत्यधिक सांप्रदायिक मोहल्लों के अंदर तक जाते थे, जबकि राजेश्वरी डर से कांपती हुई फोन के पास बैठी रहती थीं, यह जानने के लिए कि उनके पति सुरक्षित हैं या नहीं।

रामा राघोबा राणे एक वीरवंशी जाति, राणे परिवार से थे, जो दक्षिण भारत में आकर बस गए थे। वे कारवार के कोंकण क्षत्रिय मराठा समुदाय से संबंध रखते थे। वीरता मानो उनके खून में थी। उन्होंने 21 वर्षों तक सेना में सेवा की और अपनी वीरता और साहस के लिए पांच बार प्रशस्ति पत्र प्राप्त किए। 1947-48 में पाकिस्तान के साथ हुए संघर्ष के दौरान ही नहीं, बल्कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बर्मा में अपने कार्यकाल के दौरान भी उन्होंने वीरता के कारनामे किए। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी मध्यम मशीन गन से एक दुश्मन विमान को मार गिराया था।

राणे का जन्म 26 जून 1918 को कर्नाटक के चेंडिया गांव में हुआ था। उनके पिता पुलिस में हेड कांस्टेबल थे। उन्होंने जिला विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की और अपने पिता के तबादलों के कारण अक्सर उनके साथ रहते थे। बचपन से ही उन्हें खेलकूद, बाहरी गतिविधियों और रोमांच में रुचि थी।
जब द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ, तो 22 वर्षीय राणे ने सेना में शामिल होने का फैसला किया और जुलाई 1940 में बॉम्बे सैपर्स में भर्ती हो गए। पासिंग-आउट परेड के दौरान, उन्होंने योग्यता क्रम में बहुत उच्च स्थान प्राप्त किया और उन्हें सर्वश्रेष्ठ रंगरूट के लिए कमांडेंट की छड़ी से सम्मानित किया गया।
वे अगस्त 1950 तक 37 फील्ड कंपनी में रहे, जिसके बाद उनका तबादला बॉम्बे इंजीनियर ग्रुप केंद्र में हो गया। उन्हें 1951 में अपना पीवी (पुलिस सर्टिफिकेट) प्राप्त हुआ। जुलाई 1954 में, कश्मीर में महाप्रभु मेले के दौरान अपने कर्तव्यनिष्ठापूर्ण कार्य के लिए उन्हें सेना प्रमुख का प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।
राणे ने बम निरोधक प्लाटून की कमान संभाली और 25 जून 1968 को मेजर के पद से सेवानिवृत्त हुए। लेकिन सेना के प्रति उनके प्रेम ने उन्हें सेना छोड़ने नहीं दिया और उन्होंने पुनः रोजगार की तलाश की; उन्होंने अप्रैल 1971 तक वर्दी पहनना जारी रखा।
सेवानिवृत्ति के बाद वे पुणे में बस गए। 1994 में 73 वर्ष की आयु में एक ऑपरेशन के दौरान उनका निधन हो गया, जिसमें डॉक्टरों ने रक्तस्राव को रोकने में असमर्थता जताई थी। उनकी पत्नी श्रीमती राजेश्वरी राणे पुणे में ही रहती हैं।

जदुनाथ सिंह

Tain Dhar, Kashmir
6 फरवरी 1948
भोर अभी नहीं हुई है, लेकिन सभी संकेत यही बता रहे हैं कि फरवरी की सुबह ठंडी और धुंधली होने वाली है। घास पर पाला जमा हुआ है, जिससे हरी घास पारदर्शी सफेद परत से ढकी हुई है। रात भर घना कोहरा छाया रहा और तैन धार रिज की ढलानों पर अभी भी घना कोहरा छाया हुआ है, जहाँ प्रथम राजपूत बटालियन की सी कंपनी की नौवीं प्लाटून के दस जवान चौकी संख्या 2 की रखवाली कर रहे हैं। उन्होंने चुपचाप चाय बना ली है और अब दूध पाउडर से मीठी की हुई गर्म चाय से भरे मगों पर बैठकर, एक दूसरे से धीमी फुसफुसाहट में अपनी चिंताएँ साझा कर रहे हैं, उनकी आवाजें एक और अंतहीन, तनावपूर्ण रात के बाद भी कर्कश हैं।
उन्हें आदेश दिया गया था कि वे तैन धार पर्वतमाला के बाएं हिस्से पर स्थित चौकी की दुश्मन के हमले से रक्षा करें और वे पूरी निष्ठा से मोर्चा संभाले हुए हैं, हालांकि अब तक स्थिति शांतिपूर्ण रही है। खुफिया रिपोर्टों में बार-बार संकेत दिए गए हैं कि कश्मीर पर कब्जा करने के इरादे से पाकिस्तानी हमलावर नौशेरा की ओर बढ़ेंगे, और तैन धार उनके रास्ते में पड़ता है, इसीलिए इन जवानों को वहां तैनात किया गया है। सैनिक दिन-रात हमले की प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन कोई हमला नहीं हुआ, हालांकि आसपास के इलाकों में दुश्मन की भारी तैनाती की खबरें थीं।
कश्मीर की भीषण ठंड में उस सुबह अपनी खाइयों में कांपते हुए, उन दस जवानों को नहीं पता था कि आज का दिन उनके लिए निर्णायक दिन साबित होने वाला है। हजारों पाकिस्तानी हमलावर रात के अंधेरे में चुपके से उनकी छोटी सी चौकी पर आ पहुंचे थे और सुबह होते ही हमले का इंतजार कर रहे थे।

रात ढल रही है और अंधेरा छाने लगा है जब हमारी कार ब्यास मिलिट्री स्टेशन में पहुंची जहां 4 गार्ड तैनात हैं, जिन्हें पहले 1 राजपूत कहा जाता था।

चमकीले रंग की पगड़ी पहने सरदारों द्वारा चलाई जा रही ट्रैक्टरों, कारों और मोटरसाइकिलों के बीच से होकर गुजरना, जिन्हें यातायात नियमों की बिल्कुल परवाह नहीं है, कष्टदायक रहा है और सच कहूं तो मुझे यात्रा के अंत में भी ज्यादा उम्मीद नहीं है।
नायक जदुनाथ सिंह या यदुनाथ सिंह (रिकॉर्ड में उन्हें दोनों नामों से पुकारा गया है) के निधन को 50 वर्ष से अधिक हो गए हैं और अब तक कोई सुराग नहीं मिला है। तैन धार के भीषण युद्ध में यदुनाथ सिंह के साथ लड़ने वाले सभी सैनिक भी अब जीवित नहीं हैं। उन्होंने कभी शादी नहीं की, इसलिए उनका कोई वास्तविक परिवार नहीं है जिससे बात की जा सके। मैं इस बात को लेकर बहुत चिंतित हूँ कि मैं परम वीर चक्र पुरस्कार के बारे में कैसे लिखूँगी। हताशा में, मैं ब्यास गया जहाँ 4 गार्ड्स रेजिमेंट तैनात थी। मेरे पास एकमात्र जानकारी स्वर्गीय लेफ्टिनेंट कर्नल किशन सिंह राठौर के संस्मरणों से मिली, जो तैन धार की लड़ाई के दौरान एक युवा कप्तान थे। उन्होंने लिखा है: ‘चूँकि दुश्मन बहुत करीब था, इसलिए कवरिंग फायर का कोई सवाल ही नहीं था और केवल हिप फायरिंग और ग्रेनेड फेंकने का ही विकल्प था। हमला सामने से था, हम शुक्रगुजार थे कि उन्होंने अगल-बगल से हमला नहीं किया। अगर दुश्मन ने हम पर रात में हमला किया होता, तो वे पाँच मिनट के भीतर जीत जाते और हम सब मारे जाते। तभी सबसे आश्चर्यजनक घटना घटी। दुश्मन ने पीछे हटने का बिगुल बजाया और लगभग उसी समय 3 राजपूत रेजिमेंट के मेजर गुरदयाल सिंह वहाँ पहुँचे। दुश्मन ने एक हजार से अधिक सैनिक खो दिए और जीत इतनी पूर्ण थी कि उसके बाद से नौशेरा मोर्चे पर दुश्मन लड़ने के बजाय भागने में ज्यादा रुचि रखता था।’
मुझे पता चला कि बटालियन को हजारों शवों को हटाने में सात दिन लग गए। दुश्मन ने अपने मृतकों की जिम्मेदारी नहीं ली। लगभग तीन दिन बाद दुर्गंध इतनी बढ़ गई कि सुरक्षा चौकियों पर कब्जा करना संभव नहीं रहा।
मुझे जो कुछ और जानकारी मिली है, वह चौथी ग्रेनेडियर्स बटालियन के सेवानिवृत्त ब्रिगेडियर एन. बाहरी से मिली है, जो अब नोएडा में रहते हैं। ब्रिगेडियर बाहरी बताते हैं कि जब वे 1960 में बटालियन में शामिल हुए और उन्हें एडजुटेंट नियुक्त किया गया, तब तक नायक यदुनाथ सिंह की मृत्यु को 12 वर्ष हो चुके थे। लेकिन सूबेदार मेजर अमी सिंह, जो तैन धार की लड़ाई के दौरान 9 वीं प्लाटून के कमांडर थे, अक्सर उन्हें यदुनाथ सिंह के बारे में

बताया करते थे। ब्रिगेडियर बाहरी याद करते हैं, 'अमी सिंह उस ऑपरेशन का सजीव वर्णन करते थे और जब भी वे यदुनाथ सिंह का जिक्र करते, उनकी आंखों में आंसू आ जाते थे।'
लेकिन मुझे अभी भी यदुनाथ की पूरी कहानी नहीं पता थी, और आख़िरी उम्मीद के तौर पर, मैंने दिल्ली से ब्यास तक नौ घंटे की यात्रा का फ़ैसला किया, जो मुझे बटालियन के वर्तमान स्थान तक ले जाएगी। मुझे बताया गया है कि वहाँ एक अभिलेखागार है जहाँ पुरानी युद्ध-डायरी सुरक्षित रखी हैं। वही मेरी आख़िरी उम्मीद हैं।
ब्यास नदी को पार करने के कुछ ही क्षण बाद, जो चांदनी में हल्के पीले रंग से चमकते सरसों के खेतों के किनारे कलकल करती हुई बहती है, मुझे एक विशाल द्वार दिखाई देता है। उस पर गर्व से लिखा है, परम वीर पलटन, 4 गार्ड्स। अंदर, हम ब्रून के बंगले (कमांडेंट का निवास, जिसका नाम प्रथम कमांडेंट मेजर जॉर्ज सैकविल ब्राउन के नाम पर रखा गया है) से गुज़रते हैं। मुझे बताया गया कि चूंकि उन दिनों भारतीय उनके नाम का उच्चारण ब्रून करते थे, इसलिए यह नाम प्रचलित हो गया और बटालियन खुद को ब्रून का पलटन कहती आ रही है। मुस्कुराते हुए मेस हवलदार आर. डी. तिवारी एक चित्रित साइनबोर्ड के पास इंतजार कर रहे हैं जिस पर लिखा है यदुनाथ परेड ग्राउंड। वे हमें मेस तक ले जाते हैं, जहां यदुनाथ की एक चमकती प्रतिमा स्थापित है।
लेफ्टिनेंट आदित्य तनवर, एक लंबे-पतले, चौथी पीढ़ी के अधिकारी, मेरे लिए दरवाजे खोलने और बंद करने के लिए आगे बढ़ते हैं और फिर मुझे बटालियन अभिलेखागार तक ले जाते हैं, जहाँ दीवार पर यदुनाथ और तैन धार की लड़ाई के अन्य वीरों की तस्वीरें फ्रेम में लगी हुई हैं। बगल के कमरे में युद्ध डायरियों के करीने से रखे हुए ढेर हैं, जिन पर फीके पीले रंग के चर्मपत्र लगे हैं जिन्हें भारतीय सैन्य अकादमी में तैयार किया गया है; उन्हें सावधानीपूर्वक बांधा गया है और प्लास्टिक से ढका गया है।
आदित्य झुककर गर्व से 6 फरवरी 1948 को कागज पर कलम से लिखे गए उस सटीक नोट की ओर इशारा करते हैं, जिसमें उस युद्ध का वर्णन है जिसमें नायक यदुनाथ सिंह को परम वीर चक्र प्राप्त हुआ था। वे कोने में करीने से रखे 23 कांच के जारों की ओर इशारा करते हैं। पत्थरों और मिट्टी से भरे इन जारों पर उन सभी 23 स्थानों के नाम अंकित हैं जहां बटालियन ने विभिन्न युद्ध लड़े और वीरता पुरस्कार प्राप्त किए।

जब मैं पढ़ने के लिए झुकता हूँ—और हवलदार प्रमेश (चौदह वर्षों से अभिलेखागार प्रभारी) और लेफ्टिनेंट तनवर सम्मानपूर्वक दबी आवाज़ में यदुनाथ की अंतिम लड़ाई पर चर्चा कर रहे होते हैं—तो मेरे मन में एक दिलचस्प विचार आता है। सैनिक तब नहीं मरते जब गोलियाँ उनके दिलों और सिर को उनकी जैतून के हरे रंग की कमीज़ों और ऊनी बालाक्लावा को भेदकर छेद देती हैं। वे तब भी नहीं मरते जब वे दुश्मन के हमले में गिर पड़ते हैं, या यहाँ तक कि जब वे खाइयों में दब जाते हैं और अपनी गर्म लाल रक्त से धरती को रंग देते हैं। सैनिक तभी मरते हैं जब हम उनकी वीरता के कार्यों को भूल जाते हैं। और, यद्यपि हमने इस तरह कई सैनिकों को मारा है, परम वीर पलटन की चौथी गार्ड बटालियन के अधिकारियों और जवानों ने यदुनाथ को अपने जीवन के हर दिन याद करके अमर कर दिया है। वे उनके बटालियन परेड ग्राउंड में, उनके मेस में, उनके अभिलेखागार में, उनके विचारों में और उनकी बातचीत में जीवित हैं। भले ही वे अब हमारे बीच न हों, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि गहरे रंग की आंखों और ऊपर उठी हुई मूंछों वाले नायक यदुनाथ आज भी उसी जोश और उत्साह के साथ अपने मेस और यूनिट की पंक्तियों में घूमते हैं, जैसे आप या मैं। या, ठीक वैसे ही जैसे वे स्वयं 6 फरवरी 1948 को थे, जब उन्होंने नौ जवानों की एक टुकड़ी की कमान संभाली थी और हजारों हमलावरों द्वारा नौशेरा और जम्मू प्रांत पर कब्जा करने के लिए किए गए आक्रमण के दौरान तैन धार की रक्षा की थी।
परेशानी
जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो जम्मू और कश्मीर उन कुछ रियासतों में से एक थी जिसने न तो भारत और न ही पाकिस्तान में विलय करने से इनकार कर दिया था। हालांकि, पाकिस्तान ने प्रांत पर हमला करके उस पर कब्जा करने की साजिश रची और लुटेरों की एक विशाल सेना तैयार कर ली। लुटेरों ने सीमावर्ती कस्बों पर हमले शुरू कर दिए और हत्या, अराजकता, लूटपाट और बलात्कार का भयावह माहौल बना दिया। जम्मू-कश्मीर के महाराजा ने भारत सरकार से मदद मांगी, लेकिन भारत सरकार ने उनसे कहा कि सेना अपने देश की सीमाओं के बाहर नहीं लड़ सकती। महाराजा से भारत में विलय के दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने को कहा गया और जैसे ही उन्होंने हस्ताक्षर किए, भारतीय सेना को सीमाओं की रक्षा के लिए भेज दिया गया।

1 राजपूत बटालियन चयनित बटालियनों में से एक थी। दो नई कंपनियों को एकीकृत करने और जम्मू-कश्मीर में संचालन शुरू करने की तैयारी के लिए इसे गुरदासपुर में दो महीने का संक्षिप्त प्रवास करना पड़ा। यह इकाई सड़क मार्ग से नौशेरा के लिए रवाना हुई और 8 दिसंबर 1947 तक वहाँ पहुँच गई। यह 50 पैरा ब्रिगेड के अधीन आ गई और जल्द ही इसकी कंपनियों को प्वाइंट 2533, एरिया कोट, तैन धार, प्वाइंट 3319 और प्वाइंट 3754 सहित विभिन्न चौकियों पर तैनात कर दिया गया। उन्हें जम्मू-अखनूर-नौशेरा-राजौरी-पूंछ सड़क मार्ग की रक्षा का कार्य सौंपा गया था।
जवानों ने इलाके में गहन गश्त शुरू कर दी, लेकिन दुश्मन सेना के हमले की तैयारी में जुट जाने की पुख्ता खबरें थीं। 5-6 फरवरी की रात को निगरानी चौकियों से नौशेरा के उत्तर में दुश्मन के जमावड़े की चेतावनी मिली। हमले की आशंका थी, संभवतः तैन धार पर, जहां नायक यदुनाथ ने बहुत सीमित सैनिकों और गोला-बारूद के साथ एक चौकी पर मोर्चा संभाला हुआ था।

6 फरवरी 1948
भोर हो रही थी और नारंगी रंग का हल्का सूरज धीरे-धीरे क्षितिज को रोशन कर रहा था। दूर देखते हुए यदुनाथ ने कुछ हिलते-डुलते बिंदु देखे जो पास आते प्रतीत हो रहे थे। कोहरे के कारण उसकी दृष्टि बाधित हो रही थी और वह निश्चित नहीं था कि यह केवल उसका भ्रम था, इसलिए उसने अपने बगल में खड़े सैनिक को कोहनी मारी और दोनों चुपचाप एकाग्रता से देखने लगे।
यदुनाथ गलत नहीं था। पाकिस्तानी हमलावर आ चुके थे और धुंध में उसकी आँखें जैसे ही अभ्यस्त हुईं, उसने देखा कि वे धीरे-धीरे करीब आ रहे हैं। युद्ध का समय आ चुका था। यदुनाथ की नज़र एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर घूमती रही और उसने महसूस किया कि वे सैकड़ों की संख्या में थे; पूरी तरह से हथियारों से लैस और घनी वनस्पति को पार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। उसकी रीढ़ की हड्डी में एक ठंडी सिहरन दौड़ गई। उसके साथ केवल नौ सैनिक थे। दुश्मन ने उन्हें घेर लिया था, जिनकी गिनती करना भी उसके बस में नहीं था। उसके और उसके

साथियों के पास केवल दो ही विकल्प थे। आत्मसमर्पण करना या आखिरी आदमी तक लड़ना। वह जानता था कि वह क्या करने वाला है।
यदुनाथ और उसके साथी जब अपनी खाइयों से देख रहे थे, तभी दूर दिख रहे छोटे- छोटे धब्बे पाकिस्तानी हमलावरों और पठान सैनिकों के दाढ़ीदार, धूप से झुलसे चेहरों में बदल गए। हाथों में बंदूकें लिए वे एक-एक करके घनी झाड़ियों और चट्टानों के पीछे से निकल रहे थे।
जैसे ही वे गोलीबारी की दूरी पर पहुँचे, उन्होंने गोलीबारी शुरू कर दी और देखते ही देखते आसपास की पहाड़ियाँ मशीनगन और मोर्टार की आवाज़ से गूंज उठीं। हमलावरों में पागलपन भरी क्रूरता थी। उन्हें धन और महिलाओं का लालच दिया गया था। उनके कुछ साथी सीमावर्ती गाँवों पर हमला करके लूटी गई संपत्ति और अपहरण की गई महिलाओं के साथ पहले ही घर लौट चुके थे और बाकी भी ऐसा ही करने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने कश्मीर की मदद के लिए भारतीय सेना के आने की उम्मीद नहीं की थी, लेकिन वे युद्ध के लिए तैयार थे और जानते थे कि भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत कम है।
यदुनाथ ने अपने आदमियों को पोजीशन लेने का आदेश दिया और उन दस बहादुर जवानों ने मिलकर अपनी हल्की मशीनगनों का रुख हमलावरों की पहली लहर की ओर कर दिया।
दोनों पक्षों के आमने-सामने आते ही ‘अल्लाह हू अकबर’ के नारे गूंज उठे।
जैसे ही कोई दुश्मन सैनिक मारा जाता, दो और उसकी जगह ले लेते। सैनिक टिड्डियों के झुंड की तरह आ रहे थे। सैकड़ों की संख्या में। एक के बाद एक। वे लगातार गोलीबारी करते हुए बड़ी संख्या में चौकी की ओर बढ़ रहे थे।
यदुनाथ और उसके साथियों ने उन पर हथगोले फेंकने शुरू कर दिए, लेकिन इसके बावजूद कुछ हमलावर खाइयों में घुसने में कामयाब हो गए। सुबह की धूप में चमकती संगीनों की खड़खड़ाहट के बीच खूनी हाथापाई हुई। हमलावरों की पहली लहर को अंततः खदेड़ दिया गया, लेकिन इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी।
यदुनाथ की दस सैनिकों की टुकड़ी में से चार घायल हो गए थे। वे अभी ठीक भी नहीं हुए थे कि हमले की दूसरी लहर आ गई—जो पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली और क्रूर थी। हमलावर इतने करीब पहुँच गए थे कि मोर्टार के गैर-कमीशन अधिकारी (एनसीओ) हवलदार दया राम ने बड़ा जोखिम उठाया। अपनी जान को खतरे में डालकर उन्होंने मोर्टार की नलियों से द्वितीयक चार्ज निकालकर यूनिट की सुरक्षा व्यवस्था से 35-50 गज की दूरी पर गोलीबारी की।

मोर्टार से होने वाली गोलाबारी पहले से अधिक सटीक हो गई थी, लेकिन यह इतनी नज़दीक से हो रही थी कि दया राम के अपने ही सैनिकों को मार डालने का खतरा मंडरा रहा था। यह उनकी बहादुरी थी कि उन्होंने इस खतरे को टाल दिया और हमलावर सैनिकों में भारी तबाही मचाई।
दुर्भाग्यवश, वीर योद्धाओं की संख्या बहुत कम थी और यदुनाथ के दल के लगभग सभी सैनिक घायल हो चुके थे। घायलों की चीखें हवा में गूंज रही थीं, लेकिन फिर भी जो खड़े हो सकते थे, उन्होंने अपनी चोटों के बावजूद अपनी तोपें थामे रखीं और लड़ते रहे।
यदुनाथ स्वयं अपने दाहिने हाथ और जांघ में गोली लगने से घायल हो गए थे। बुरी तरह घायल होने के बावजूद, वे घिसटते हुए अपने घायल ब्रेंन गनर के पास पहुँचे और तोप का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। तब तक दुश्मन चौकी की दीवारों तक पहुँच चुके थे, लेकिन यदुनाथ और उनके साथियों ने हार नहीं मानी। एक गैर-लड़ाकू सैनिक, जिसे लड़ने का प्रशिक्षण भी नहीं था, ने भी दुश्मन की राइफल उठा ली और कुछ हमलावरों को मार गिराया। अभिलेखों के अनुसार, जब उसका गोला-बारूद खत्म हो गया, तो उसने दुश्मन की तलवार उठाई और बहादुरी से हमलावरों पर हमला किया, जब तक कि अंततः वह गोली लगने से मारा नहीं गया।
वीरता की ऐसी कई कहानियां हैं, लेकिन यदुनाथ की कहानी सबसे बढ़कर है। बुरी तरह घायल और लहूलुहान होने के बावजूद, उन्होंने अपनी जान की परवाह न करते हुए अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाया और बहादुरी से उनके साथ खड़े रहे। उन्होंने इतनी बहादुरी और अटूट साहस व दृढ़ संकल्प के साथ लड़ाई लड़ी कि जो निश्चित हार लग रही थी, वह जीत में तब्दील हो गई। चौकी को दूसरी बार बचा लिया गया।
लेकिन तब तक चौकी के सभी जवान हताहत हो चुके थे। यह भांपकर दुश्मन ने तुरंत दोबारा हमला कर दिया। तीसरे हमले में, घायल और अकेले नायक यदुनाथ सिंह ने अकेले ही मोर्चा संभाला।
जैसे अमरता का वरदान प्राप्त कोई योद्धा हो, वह लंगड़ाते हुए, खून से लथपथ, हाथ में बंदूक लिए खाइयों से बाहर आया। घायल बांह से खून टपकते हुए, उसने दुश्मन पर गोलियां चलाईं और धावा बोल दिया। अपनी जान की परवाह न करते हुए उसके इस बेखौफ रवैये से हैरान दुश्मन अफरा-तफरी मच गई और भागने लगा।

यदुनाथ अभी चल ही रहे थे कि एक गोली सनसनाती हुई आई और उनकी छाती में जा लगी। उन्होंने इसे अनसुना कर तब तक गोलीबारी जारी रखी जब तक कि दूसरी गोली उनके सिर में नहीं जा लगी। आँखें खुली और मुँह से आग उगलते हुए, यदुनाथ घुटनों के बल गिर पड़े और तैन धार की दूसरी चौकी के सामने ढेर हो गए। गोलियों से छलनी उनका शरीर वहीं पड़ा रहा, उनकी आँखें पीछे हटते दुश्मन सैनिकों को घूरती रहीं। और वहीं नायक यदुनाथ सिंह ने अंतिम साँस ली। उन्होंने दुश्मन को अपनी चौकी पर कब्ज़ा नहीं करने दिया।
बाद में पता चला कि यदुनाथ को हमले की तीन लहरों के दौरान आठ गोलियां लगी थीं। उनके अलावा भी कई अन्य वीर उस दिन लड़ते हुए शहीद हुए थे। वे ऐसे पुरुष थे जिन्होंने वीरता और गौरव की उच्चतम परंपराओं को साकार किया था। यदुनाथ सिंह ने अपने बलिदान से गौरव प्राप्त किया। शत्रु के विरुद्ध वीरतापूर्ण कार्रवाई के लिए उन्हें मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया। उनकी गाथा बटालियन के युद्ध अभिलेखों में अमर हो गई है।
6 फरवरी 1948 का युद्ध रिकॉर्ड, जो मुझे 4 गार्ड्स अभिलेखागार में मिला, सूखे कागज पर स्याही से लिखा हुआ था और छूने पर भंगुर सा लगता था, उसमें लिखा है: 'नंबर 2, 9, 7 और किपर की चौकी पर एक साथ हमला किया गया। दुश्मन ने प्रत्येक चौकी पर लगभग 1500 से 2000 सैनिक तैनात किए। दुश्मन ने कई चरणों में हमला किया। लड़ाई दो घंटे तक चली। अंतिम चरण को कठोर तलवार और संगीनों से खदेड़ दिया गया। दुश्मन 260 शव, 131 राइफलें और 200 से अधिक तलवारें छोड़कर पीछे हट गया। कुल मिलाकर दुश्मन के हताहतों की संख्या 3000 मृत और 1000 घायल मानी जाती है। हमारे हताहतों में 21 मृत और 62 घायल शामिल हैं।'

नायक यदुनाथ सिंह का जन्म 21 नवंबर 1916 को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले के खजूरी गाँव में एक गरीब किसान बीरबल सिंह राठौर के घर हुआ था। यदुनाथ सिंह अपनी माता जमुना कंवर से बहुत स्नेह रखते थे। वे आठ भाई-बहनों में से एक थे—सात लड़के और एक लड़की।
परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी—परिवार में बहुत से लोग थे—और यदुनाथ को अच्छी शिक्षा का अवसर नहीं मिला। चौथी कक्षा तक वह गाँव के

स्कूल में पढ़ता था और स्कूल के बाद खेतों में या घर पर काम करके परिवार की मदद करता था।
वह गांव में इसलिए मशहूर थे क्योंकि वह कुश्ती के चैंपियन बन गए थे और अक्सर बदतमीजी करने वाले गुंडों को सबक सिखाते थे। वे बेहद धार्मिक और हनुमान जी के कट्टर भक्त थे, यहां तक कि उन्होंने जीवन भर अविवाहित रहने का व्रत लिया और उसका पालन भी किया।
यदुनाथ जब 25 वर्ष के थे, तब उन्होंने 21 नवंबर 1941 को फतेहगढ़ स्थित रेजिमेंटल केंद्र में राजपूत रेजिमेंट में भर्ती हुए। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उन्हें राजपूत रेजिमेंट की प्रथम बटालियन में भेजा गया। उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लिया और उस समय भी नेतृत्व और वीरता के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए। उन्हें नायक के पद पर पदोन्नत किया गया और एक टुकड़ी का कमांडर नियुक्त किया गया। उनकी असाधारण वीरता तैन धार के युद्ध में प्रदर्शित हुई, जहाँ उन्होंने भारी संख्या में सैनिकों के होते हुए भी भयंकर शत्रु का बहादुरी से सामना किया।
यदुनाथ सिंह का प्रदर्शन आज भी उनकी बटालियन के जवानों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। हर साल नौशेरा दिवस को 4 गार्ड्स में बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है और सी कंपनी के कमांडिंग ऑफिसर द्वारा तैन धार की लड़ाई पर एक प्रस्तुति दी जाती है, ताकि 1948 में नायक यदुनाथ सिंह द्वारा किए गए वीरतापूर्ण कार्य को याद किया जा सके और उसे सम्मान दिया जा सके।
नायक अमर है।

Piru Singh Shekhawat

दारापारी का युद्ध
18 जुलाई 1948
यह गहरे बैंगनी रंग की चांदनी रात है। लेकिन कंपनी हवलदार मेजर (सीएचएम) पीरू सिंह ऊपर देखने का जोखिम नहीं उठा सकते। रास्ता खड़ी ढलान वाला और ढीले पत्थरों से भरा है; एक गलत कदम उन्हें घाटी में गिरा सकता है, जहां उनके शरीर और हड्डियां चकनाचूर हो जाएंगी।
पीरू सिंह का जूता अभी-अभी एक चट्टान से टकराया है जो लुढ़क कर नीचे गिर गई है। एक पल के लिए वह रुककर उसकी गहरी खाई को देखता है। फिर वह उस खतरनाक पहाड़ी की ओर देखता है जिस पर वह और उसकी टुकड़ी, डेल्टा कंपनी, 6 राजपुताना राइफल्स (राज. राइफल्स) से, चढ़ाई कर रहे हैं। अगर वह अपनी गर्दन को लगभग 180 डिग्री के कोण पर ऊपर की ओर झुकाए, तो वह देख सकता है कि पहाड़ कहाँ खत्म होता है, अँधेरा, ऊबड़-खाबड़, दुर्गम। दुश्मन वहीं बैठा है और वह और उसके जवान उसी ओर बढ़ रहे हैं।
डी कंपनी को कश्मीर के तिथवाल सेक्टर में स्थित दारापारी से पाकिस्तानी अनियमित सैनिकों को खदेड़ने और उन पर हमला करने का जिम्मा सौंपा गया है। यह स्थान 11,481 फीट की ऊंचाई पर स्थित है और हमलावर कंपनी को बताया गया है कि दुश्मन वहां बैठकर ऊपर की ओर जाने वाले संकरे रास्ते पर नजर रख रहा है, हालांकि शायद उन्हें वहां मोर्चाबंदी करने का पर्याप्त समय नहीं मिला है। पीरू सिंह गहरी सांसें लेता है और अपनी चढ़ाई फिर से शुरू करता है; हवा ठंडी होने लगी है और तंगधार से 30 मील की लंबी पैदल यात्रा सैनिकों के मनोबल पर असर डालने लगी है। वह जानता है कि वे थके हुए हैं। वह खुद भी थका हुआ है। लेकिन युद्ध में थकान एक सैनिक के लिए सबसे कम चिंता की बात होती है।
आगे आने वाली लंबी चढ़ाई से अपना ध्यान हटाने के लिए, पीरू सिंह नौ महीने पहले की यादों में खो जाते हैं। उनकी बटालियन गुड़गांव में आंतरिक सुरक्षा कार्यों में लगी हुई थी, तभी उन्हें कश्मीर जाने का आदेश मिला। पहाड़ी राज्य को पठान आक्रमणकारियों और पाकिस्तानी सेना के नियमित सैनिकों से बचाना ज़रूरी था। सैनिकों को 5 नवंबर 1947 को हवाई जहाज से

श्रीनगर ले जाया गया। उनमें से कई लोगों के लिए यह हवाई जहाज की पहली यात्रा थी और कुछ पलों के लिए ही सही, युद्ध का खतरा उस पहली हवाई यात्रा के रोमांच के आगे फीका पड़ गया।
कश्मीर पहुँचते ही बटालियन को युद्ध के मैदान में उतार दिया गया और वीर जवानों ने शुरुआती कुछ महीनों में ही अपनी बहादुरी साबित कर दी। अप्रैल 1948 में उन्हें उरी भेजा गया, जहाँ उन्होंने दुश्मन के भीषण हमले को नाकाम करते हुए उसे भारी नुकसान पहुँचाया। 29 अप्रैल की रात को उन्होंने दुश्मन की एक चौकी पर कब्जा कर लिया, जिसके लिए राइफलमैन धोंकल सिंह को मरणोपरांत महावीर चक्र से सम्मानित किया गया। वे तुरंत बटालियन के हीरो बन गए। धोंकल ने अपनी प्लाटून को घने चीड़ के जंगल से होते हुए एक पहाड़ी रास्ते से आगे बढ़ाया और दुश्मन की लाइट मशीनगन की भीषण गोलीबारी का सामना किया। अपने बाएं कंधे पर गंभीर चोट लगने के बावजूद, धोंकल सिंह रेंगते हुए आगे बढ़े और दुश्मन की चौकी पर हथगोला फेंककर उसे नष्ट कर दिया। चेहरे और सीने में छर्रे लगने के बावजूद, उन्हें पता था कि वे ज्यादा देर तक जीवित नहीं रहेंगे, और उन्होंने अपनी बची हुई सारी ताकत का इस्तेमाल करते हुए पीछे हट रहे दुश्मन सैनिकों पर एक और हथगोला फेंका, जिससे वे तुरंत मारे गए। चौकी पर 6 राज. राइफल. ने कब्जा कर लिया, लेकिन धोंकल सिंह अपनी चोटों के कारण शहीद हो गए।
अपने वीर साथी के प्रति आदर से परिपूर्ण पीरू सिंह को उस समय यह नहीं पता था कि वह शीघ्र ही एक ऐसा वीरतापूर्ण कार्य करेगा जो धोंकल के वीरतापूर्ण कार्य के समान ही अविश्वसनीय होगा। गुनगुनाते हुए वह आगे बढ़ता रहा।

सन् 1948 की पूरी वसंत ऋतु भारतीय सेना ने कश्मीर से घुसपैठियों को खदेड़ने के लिए एक बड़ा हमला करने में लगा दी थी। उरी में तैनात 6 राज. राइफल्स बटालियन को तिथवाल की ओर मार्च करने का आदेश मिला ताकि नास्ताचुन दर्रे के पार 163 इन्फैंट्री ब्रिगेड को सुदृढ़ किया जा सके। ब्रिगेड इस क्षेत्र में बैठे पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ने के लिए आक्रमण की योजना बना रही थी। दर्रा 10,264 फीट की ऊंचाई पर था और कंपनियों को काफिर खान रिज

पर स्थित प्वाइंट 11481 के आसपास के क्षेत्रों में तैनात किया गया था, जो पाकिस्तानी सैनिकों के कब्जे में था।
बटालियन को 24 घंटे के पूर्व सूचना पर रवाना होना था और 12 जुलाई को बानीवाला दाना रिज पर मोर्चा संभालना था। लेकिन भारतीय सेना की तैनाती वाली जगह से रिज को एक गहरी खाई अलग करती थी, इसलिए सैनिकों के पार जाने के लिए इंजीनियरों को इस खाई पर पुल बनाने के लिए बुलाया गया। समय बहुत कम था और पुल के तैयार होने की अंतिम तिथि 11 जुलाई की शाम थी।
तमाम कोशिशों के बावजूद, यह एक कठिन काम था और इंजीनियर तय समय सीमा में काम पूरा नहीं कर पाए। हमले में और देरी न की जा सकने के कारण, इंजीनियरों ने नाले के ऊपर लकड़ी का एक बड़ा लट्ठा रख दिया। यही वह अस्थायी पुल था जिसका इस्तेमाल 6 राज राइफल्स की बी और डी कंपनियों ने, संशोधित बटालियन मुख्यालय के साथ, 11 जुलाई की रात को नाले को पार करने के लिए किया था।
बी कंपनी ने अग्रिम पंक्ति का नेतृत्व किया और 12 जुलाई को सुबह 5:30 बजे, उन्होंने दुश्मन के किसी भी प्रतिरोध का सामना किए बिना एक पहाड़ी पर कब्जा कर लिया। डी कंपनी को आगे बढ़कर दूसरी पहाड़ी को सुरक्षित करने का आदेश दिया गया। 6 राज राइफल्स और 3 रॉयल गढ़वाल राइफल्स के हमले जारी रहे। दुश्मन को खदेड़ दिया गया, हथियार और गोला-बारूद जब्त कर लिए गए और एक जवाबी हमले को विफल कर दिया गया। इसके बाद दुश्मन की स्थिति का पता लगाने के लिए टोही दल और गश्ती दल भेजे गए और सैनिक वापस आकर सूचना दी कि 11,481 फीट की ऊंचाई पर स्थित दारापारी नामक एक पहाड़ी, 163 ब्रिगेड द्वारा संरक्षित क्षेत्र पर हावी है। पाकिस्तानी सेना के अनियमित सैनिकों द्वारा इसकी भारी सुरक्षा की जा रही थी।
कुछ ही दूरी पर दुश्मन का एक और इलाका था। यह माना गया कि यदि भारतीय सेना को आगे बढ़ना है तो दारापारी और उस दूसरे इलाके पर कब्जा करना आवश्यक होगा। दारापारी पर कब्जा करने का कार्य 16 जुलाई 1948 को लेफ्टिनेंट कर्नल एस. एस. कल्लन की कमान में 6 राज राइफल्स बटालियन को सौंपा गया। 18 जुलाई को बटालियन ने संकरी और तीखी पहाड़ी पर आक्रमण किया। यह वह अभियान था जिसमें सीएचएम पीरू सिंह अपनी जान की बाजी लगाकर लड़ेंगे और अपनी बटालियन के लिए बहुप्रतीक्षित दारापारी को सुरक्षित करेंगे और परमवीर चक्र भी प्राप्त करेंगे।

18 जुलाई 1948, सुबह 1:30 बजे। डी कंपनी की अग्रिम चौकी से दारापारी तक जाने वाला रास्ता मुश्किल से एक मीटर चौड़ा है; दोनों ओर गहरी खाइयाँ हैं और सैनिक अंधेरे में चुपचाप आगे बढ़ रहे हैं; उनके हाथों में भरी हुई राइफलें हैं। डी कंपनी को दारापारी को खाली कराने का काम सौंपा गया है और उसके सुरक्षित हो जाने के बाद सी कंपनी को आगे बढ़कर, वहाँ से गुजरते हुए, हमला करके दूसरी पहाड़ी पर कब्जा करना है। हमले के लिए जानबूझकर रात का समय चुना गया है ताकि दुश्मन सैनिकों को सतर्क न किया जा सके और उन्हें अचानक घेर लिया जा सके। 'कोई बात नहीं करेगा, माचिस नहीं जलाएगा और न ही खांसेगा,' पीरू सिंह, जिसकी प्लाटून हमले का नेतृत्व कर रही है, अपने जवानों से कहता है और वे सहमति में सिर हिलाते हैं। ऊपर कहीं पाकिस्तानी सैनिक हैं, और पीरू सिंह को यकीन है कि उन्होंने रास्ते को अपनी बंदूकों के निशाने पर ले लिया है। ऊपर चढ़ रहे भारतीय सेना के सैनिकों की मौजूदगी के बारे में उन्हें सचेत करना आत्मघाती होगा। खुफिया रिपोर्टों में कहा गया था कि दुश्मन को उचित खाइयाँ बनाने का समय नहीं मिला होगा और इसलिए उन्हें हराना आसान होगा, लेकिन ये रिपोर्टें गलत साबित हुईं। सैनिकों को पता नहीं था कि दुश्मन ने इस संकरे रास्ते पर नज़र रखते हुए पाँच बंकर खोद रखे थे और उन्हें तीन मध्यम मशीनगनों (एमएमजी) से पूरी तरह से सुरक्षित कर रखा था। पाकिस्तानी भी हमले की आशंका से सतर्क थे, इसलिए जैसे ही आगे बढ़ते सैनिक उनके बंकरों के पास पहुँचे, उन्होंने गोलीबारी शुरू कर दी। डी कंपनी इस संकरे रास्ते में फंसी रह गई और पूरी तरह से अचंभित थी। ठंडी रात में गोलियाँ और गोले बरस रहे थे, और घायल सैनिकों की चीखें गूँज रही थीं। महज 30 मिनट के भीतर, मशीनगनों, ग्रेनेड हमलों और 2-इंच और 3-इंच मोर्टार के कारण 51 सैनिक शहीद हो गए।
अचानक चारों ओर अफरा-तफरी मच जाती है। अगर उस अहम मौके पर पीरू सिंह हस्तक्षेप नहीं करते और अपनी कंपनी की तरक्की के लिए अपनी जान जोखिम में डालने का फैसला नहीं करते, तो लड़ाई उसी पल हार जाएगी।
पीरू सिंह अग्रिम पंक्ति में हैं। उनके आधे सैनिक पहले ही गिर चुके हैं और वे उन्हें खून से लथपथ, बुरी तरह घायल और गोलियों की बौछार के बीच कराहते

हुए देख सकते हैं। उनमें से कुछ मर चुके हैं, कुछ अपने ज़ख्मों से अपाहिज हो चुके हैं। पीरू सिंह खुद चमत्कारिक रूप से बच गए हैं, हालांकि उनके कपड़े ग्रेनेड हमलों से झुलस गए हैं और फट गए हैं, और उनके हाथ-पैर छर्रों से घायल होकर खून बह रहे हैं। वे जानते हैं कि इस हमले से निपटने का एकमात्र तरीका पहाड़ पर बरस रही मशीनगनों को खामोश करना है। अपनी सुरक्षा की परवाह किए बिना, वे उस नज़दीकी बंकर की ओर दौड़ते हैं जहाँ से मशीनगनों की गोलीबारी हो रही है। गोलियों की बौछार के बीच से गुज़रते हुए, वे खाई में छिपे दुश्मन सैनिकों पर स्टेनगन से गोलियों की बौछार कर देते हैं। इससे पहले कि वे उन्हें देख पाते, वे कूद पड़ते हैं और बंदूक चला रहे सैनिकों को संगीनों से मार देते हैं। वे दर्द और सदमे से चीखते हुए गिर पड़ते हैं और बंदूक शांत हो जाती है।
तब तक नुकसान हो चुका था और पीरू सिंह को एहसास हुआ कि उसके सभी साथी मारे जा चुके हैं। वह अपने दस्ते में अकेला जीवित बचा है। गुस्से में चीखते हुए, वह पत्थरों को पार करते हुए अगले एमएमजी पोस्ट की ओर छलांग लगाता है। दुश्मन ने उसके अकेले इस कारनामे को देख लिया था और उस पर गोलीबारी शुरू कर दी। उस पर फेंका गया एक ग्रेनेड निशाने पर लगा। इससे उसके चेहरे और आंखों में चोट आई, लेकिन पीरू सिंह दर्द और तकलीफ से बेखबर था। उसे अपनी ठुड्डी से टपकते और कमीज के कॉलर में रिसते खून का भी पता नहीं चला।
खाई से बाहर निकलते हुए, उसने अपनी आँखों से खून पोंछा और दुश्मन के अगले ठिकाने पर ग्रेनेड फेंकना शुरू कर दिया। हमलावर गोलियों के बीच से चलते हुए, वह दूसरे बंकर तक पहुँचा और अंदर चढ़कर दूसरी एमएमजी चला रहे दो सैनिकों को संगीनों से मार गिराया। दो तोपें अब शांत हो चुकी थीं, लेकिन वह जानता था कि एक और तोप अभी भी मौजूद है।
अत्यधिक रक्तस्राव के कारण पीरू सिंह बेहोश होने लगे थे। उनकी आँखें बंद हो रही थीं और खून उनमें टपक रहा था। अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से उन्होंने अपनी आँखें खुली रखने का प्रयास किया। बड़ी मुश्किल से वे दूसरी खाई से बाहर निकले और बटालियन का नारा 'राजा रामचंद्र की जय' लगाते हुए उन्होंने एक ग्रेनेड निकाला। तीसरे बंकर तक पहुँचने से पहले ही एक गोली उनके सिर में जा लगी।
पीरू सिंह जानता है कि वह गिर रहा है; वह अगली मशीनगन तक पहुँचना चाहता है, लेकिन उसके अंगों पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। हाथ में ग्रेनेड लिए वह

चलने की कोशिश करता है, लेकिन उसके पैर लड़खड़ा जाते हैं। ज़मीन पर गिरते हुए भी, वह आखिरी ग्रेनेड से पिन निकाल लेता है और उसे तीसरे बंकर पर फेंक देता है। ग्रेनेड एक चाप बनाता है और दारापारी की पहाड़ी पर अंतिम साँस लेते हुए पीरू सिंह अपनी आँखें खुली रखने की कोशिश करता है। वह ग्रेनेड को निशाने पर लगते हुए देखता है। एक ज़ोरदार धमाका होता है और वह बंकर को ढहते हुए देखता है, जिससे दुश्मन सैनिक मारे जाते हैं और अंदर मौजूद मशीनगन शांत हो जाती है। पीरू सिंह शेखावत अंततः अपनी आँखें बंद कर लेता है।
सी कंपनी के कमांडर ने हमलावर कंपनी के समर्थन में गोलाबारी का निर्देश देते हुए इस वीरतापूर्ण घटना को देखा। दुश्मन के सामने उनकी अद्वितीय बहादुरी, प्रेरणादायक उदाहरण और असाधारण साहस के लिए, सीएचएम पीरू सिंह को मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया। राजपुताना राइफल्स की छठी बटालियन को दारापारी का युद्ध सम्मान प्रदान किया गया। पीरू सिंह की माता को लिखे पत्र में, तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा, “उन्होंने अपने अद्वितीय वीरतापूर्ण कार्य के लिए अपने प्राणों की आहुति दी, लेकिन उन्होंने अपने साथियों के लिए अकेले दम पर वीरता और दृढ़ निश्चय का एक अनूठा उदाहरण छोड़ दिया। मातृभूमि की सेवा में किए गए इस बलिदान के लिए देश कृतज्ञ है, और हमारी प्रार्थना है कि इससे आपको कुछ शांति और सांत्वना मिले।”

पीरू सिंह शेखावत का जन्म 20 मई 1918 को राजस्थान के चूरू जिले के रामपुरा बेरी गांव में हुआ था, जो उस समय राजपुताना राज्य था। वे एक बड़े कृषि परिवार से थे और सात भाई-बहनों में से एक थे; वे तीन भाइयों में सबसे छोटे थे और उनकी चार बहनें थीं।
पिरू ने छह साल की उम्र में स्कूल जाना शुरू किया, लेकिन शुरू से ही उसे किसी भी तरह की पाबंदी पसंद नहीं थी। इस आज़ाद ख्याल और खुशमिजाज बच्चे के लिए स्कूल रोज़ाना की सज़ा बन गया था और आखिरकार एक दिन उसने ठान लिया कि अब बस बहुत हो गया। उसने अपनी स्लेट अपने शिक्षक पर फेंकी और कक्षा से भाग गया। वह फिर कभी वापस नहीं लौटा, उसे उबाऊ और पाबंदियों से भरी कक्षा में

बैठने के बजाय अपने पिता के साथ खेतों में काम करना ज़्यादा पसंद था। पिरू को शिकार करना और जंगलों में घूमना बहुत पसंद था और अब उसके पास अपनी मनपसंद चीज़ों के लिए पूरा समय था।
सेना में करियर बनाना उन्हें हमेशा से पसंद था और वे भर्ती शिविरों में तब तक जाते रहे जब तक उनका चयन नहीं हो गया। 18 वर्ष की आयु में, संयोगवश अपने जन्मदिन यानी 20 मई 1936 को, वे सेना में भर्ती हो गए। उन्हें 10/1 पंजाब में भेजा गया। झेलम में एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद, उनकी तैनाती 5/1 पंजाब में कर दी गई। हालाँकि उन्हें स्कूल से नफरत थी, लेकिन सेना में आने के बाद, जहाँ वे हमेशा से रहना चाहते थे, पीरू ने एक के बाद एक पदोन्नति की परीक्षाएँ जल्दी से पास कर लीं और जल्द ही लांस नायक बन गए और फिर एक वर्ष के भीतर नायक बन गए। उन्हें झेलम स्थित पंजाब रेजिमेंटल सेंटर में प्रशिक्षक के रूप में तैनात किया गया। मई 1945 में, उन्हें कंपनी हवलदार मेजर नियुक्त किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद, वे राष्ट्रमंडल कब्ज़ा बलों के साथ सेवा करने के लिए जापान भी गए। सितंबर 1947 में जब वे लौटे, तब तक भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग देश बन चुके थे। 5/1 पंजाब के राजपूत वर्ग का हिस्सा होने के कारण, पीरू को 6 राज. राइफल्स में भेजा गया।
ये वो भयानक दिन थे जब पाकिस्तानी सेना पठान हमलावरों की मिलीभगत से जम्मू और कश्मीर पर हमला कर रही थी। पीरू सिंह की बटालियन को कश्मीर भेजा गया और वह उस बल का हिस्सा थी जिसने हमलावरों को उरी से पीछे धकेलने में अहम भूमिका निभाई। इसी पृष्ठभूमि में पीरू सिंह ने असाधारण वीरता का परिचय दिया और मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित हुए।
उनका निधन 18 जुलाई 1948 को हुआ। उनकी उम्र 30 वर्ष थी।

कांगो—1961
भारत 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र (UN) का संस्थापक सदस्य बना। विश्व शांति स्थापित करना संयुक्त राष्ट्र की प्रमुख भूमिकाओं में से एक रही है। शांति बनाए रखने के इस प्रयास में, दुर्भाग्यवश, संयुक्त राष्ट्र शांति सेना को अक्सर हथियारों का सहारा लेना पड़ा है।
भारतीय सेना संयुक्त राष्ट्र के अभियानों में सैनिकों का दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है और इसने 31 ऐसे अभियानों में भाग लिया है, जिनमें कांगो भी शामिल था। विश्व शांति सुनिश्चित करने के लिए इन अभियानों में अब तक लगभग 100 अधिकारियों और जवानों ने अपने प्राणों की आहुति दी है। उनके बलिदान अक्सर जनमानस से मिट जाते हैं क्योंकि सैनिक एक विदेशी धरती पर, एक विदेशी देश के लिए लड़ते हुए शहीद होते हैं। 1960 में कांगो में हुए संयुक्त राष्ट्र के अभियान में, 3/1 गोरखा राइफल्स के कैप्टन गुरबचन सिंह सलारिया को मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया था।
1960 का कांगो मिशन अपने समय के सबसे बड़े संयुक्त राष्ट्र मिशनों में से एक माना जाता है; इसके अधीन कम से कम 20,000 सैनिक थे।
समस्या की संक्षिप्त पृष्ठभूमि: 1878 से, कांगो (वर्तमान में ज़ैरे) पर बेल्जियम का शासन था, जो आकार में लगभग बीसवां हिस्सा है। जनवरी 1960 में, बेल्जियम ने कांगो को स्वतंत्रता देने पर सहमति व्यक्त की। चुनाव हुए और जून 1960 में बेल्जियम कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य कांगो बन गया।
लेकिन इसमें एक पेंच था। कांगो की सेना की कमान बेल्जियम के लेफ्टिनेंट जनरल एमिल जानसेंस के हाथ में थी, और सेना में सभी अधिकारी बेल्जियम के ही थे। सेना में कोई भी कांगोई अधिकारी नहीं था, जिससे भारी असंतोष पैदा हुआ और आजादी के तुरंत बाद सेना ने विद्रोह कर दिया। कांगोई सैनिकों ने बेहतर वेतन और बेल्जियम के अधिकारियों को निष्कासित करने की मांग की। बेल्जियम विरोधी दंगे भड़क उठे। बेल्जियम के लोग कांगो छोड़कर चले गए, लेकिन देश में गृहयुद्ध जैसी स्थिति पैदा हो गई।

बेल्जियम ने अपने नागरिकों की रक्षा के उद्देश्य से तुरंत अपनी सेना को कांगो में भेज दिया। चूंकि यह कार्रवाई कांगो सरकार की अनुमति के बिना की गई थी, इसलिए सरकार ने सभी बेल्जियम सैनिकों को निष्कासित करने का आदेश दिया। हालांकि, प्रांतीय राष्ट्रपति मोइसे त्शोम्बे ने घोषणा की कि कांगो का सबसे धनी प्रांत कटंगा स्वतंत्र प्रांत घोषित किया जा रहा है।
कांगो ने संयुक्त राष्ट्र से मदद मांगी और बेल्जियम के कथित औपनिवेशिक खतरे से कांगो की रक्षा के लिए सैन्य सहायता का अनुरोध किया।
संयुक्त राष्ट्र शांतिरक्षा मिशन के सैनिक जुलाई 1960 के मध्य में कांगो में उतरे और उन्हें तुरंत राजधानी में तैनात कर दिया गया। जब संयुक्त राष्ट्र ने यह निर्णय लिया कि कांगो में शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए सैन्य हस्तक्षेप आवश्यक होगा, तो भारत ने संयुक्त राष्ट्र बल में लगभग 3000 सैनिकों की एक ब्रिगेड का योगदान दिया।
कांगो में एक ब्रिगेड भेजने का निर्णय लिया गया और इस कार्य के लिए 99 इन्फैंट्री ब्रिगेड को चुना गया। 3/1 गोरखा राइफल्स 99 इन्फैंट्री ब्रिगेड का हिस्सा थी। बटालियन के अधिकांश सैनिकों को दिल्ली से हवाई मार्ग से कांगो के लियोपोल्डविले ले जाया गया। आदेश अचानक आए और सैनिकों को भारत में शांतिपूर्ण कर्तव्यों से हटाकर कांगो की युद्ध जैसी स्थिति में भेज दिया गया।
पीत ज्वर, हैजा और टिटनेस के तीन इंजेक्शन लगवाने के बाद, गोरखा सैनिक पालम हवाई अड्डे से अमेरिकी वायु सेना के ग्लोबमास्टर विमानों में सवार होकर रवाना हुए। मेजर गुरबचन सलारिया 16 मार्च 1961 को लियोपोल्डविले पहुंचे। 5 दिसंबर को, कटंगा के एलिजाबेथविले में एक रणनीतिक गोलचक्कर पर जेंडरमेरी द्वारा स्थापित नाकाबंदी को हटाने के आदेश पर, गुरबचन और बहादुर गोरखा सैनिकों की दो टुकड़ियों ने दुश्मन पर सीधा हमला किया, और इस साहसी हमले में कैप्टन गुरबचन सिंह सलारिया शहीद हो गए, जिससे दुश्मन को करारी हार मिली।
संयुक्त राष्ट्र का यह मिशन अत्यंत जटिल था, लेकिन दोनों पक्षों में भारी जानमाल के नुकसान के बावजूद इसे सबसे सफल अभियानों में से एक माना जाता है। अपने नेतृत्व, साहस, कर्तव्यनिष्ठा और व्यक्तिगत सुरक्षा की परवाह न करने के लिए कैप्टन गुरबचन सिंह सलारिया को मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

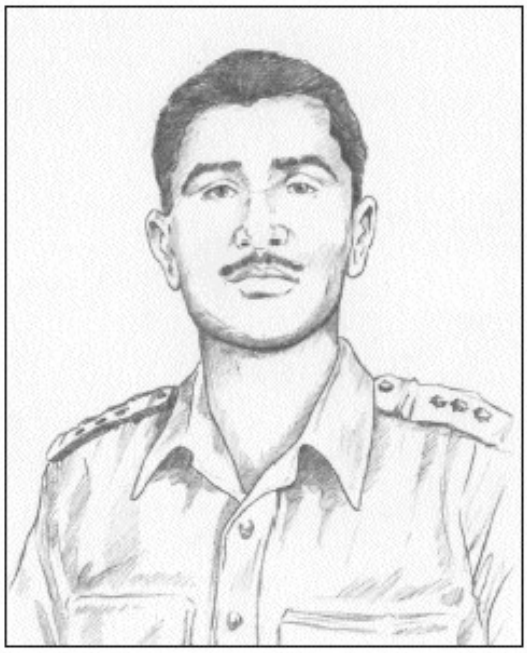

गुरबचन सिंह सलारिया

एलिजाबेथविले, कटंगा
5 दिसंबर 1961, दोपहर 1:12 बजे।
सोलह छोटे, दुबले-पतले गोरखा सैनिक झाड़ियों में चुपचाप खड़े हैं, उनके जैतून के हरे रंग के वर्दी आसपास के वातावरण में घुलमिल गए हैं। उनके हाथों में उनकी.303 राइफलें हैं और उनके दांतों के बीच उनकी खुकरी हैं, जिनकी धारें दोपहर की धूप में खतरनाक ढंग से चमक रही हैं।
सैनिक अभी भी गोलचक्कर से 1500 गज दूर हैं, जिस स्थान पर उन्हें आगे बढ़ने का आदेश दिया गया है। उन्हें हवाई अड्डे की तरफ से स्वीडिश बख्तरबंद वाहनों के एक दल के साथ आगे बढ़ना था और जेंडरमेरी के पीछे हटने के रास्ते को रोकना था। हालांकि, वे एक घात में फंस गए हैं और अब एक सहायक स्थान से दुश्मन की गोलीबारी का सामना कर रहे हैं। थोड़ी ही दूरी पर वे झोपड़ियाँ हैं जिन्हें स्थानीय लोगों ने छोड़ दिया है और कटंगा की विद्रोही जेंडरमेरी ने बंकरों में बदल दिया है। दुश्मन के पास दो बख्तरबंद गाड़ियाँ और 90 जवान खाइयों और छतों पर छिपे हुए हैं, जो अर्ध-स्वचालित बंदूकों से लैस हैं, जो गोरखाओं द्वारा इस्तेमाल की जा रही पुरानी 303 राइफलों से कहीं बेहतर हैं। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले की ये राइफलें चलाने में बेहद थकाऊ हैं। हर बार गोली चलाने के बाद, कारतूस निकालने के लिए बोल्ट को ऊपर खींचकर वापस लाना पड़ता है और फिर नए कारतूस लोड करने के लिए आगे बढ़ाना पड़ता है। उनके पारंपरिक नेपाली चाकू, खुखरी, कहीं अधिक तेज़ हैं। इसीलिए गोरखा सैनिकों ने अपनी तलवारें म्यान से निकाल ली हैं और अब हमले के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।
'हम उनके ठिकाने पर धावा बोलेंगे,' उनके कंपनी कमांडर, कैप्टन गुरबचन सिंह सलारिया ने आदेश दिया, उनकी शांत, गंभीर आवाज दोपहर की उमस भरी गर्मी को चीरती हुई सुनाई दी।
सैनिक अपनी-अपनी जगह पर तैनात हो जाते हैं। वे मृत्यु के भय को अपने हृदय में प्रबल कर लेते हैं और जब सलारिया 'जय महाकाली, आयो गोरखाली' का नारा लगाते हुए शत्रु के स्थान की ओर दौड़ पड़ते हैं, तो वे भी उनका अनुसरण करते हैं।

सलारिया सबसे पहले आगे बढ़ता है। वह अपनी बंदूक ताने, मुँह में धधकती खुकरी दबाए, सूरज की रोशनी में चमकती हुई, दौड़ता हुआ आगे बढ़ता है। पहली खाई पर हमला करते हुए, वह बाईं ओर खड़े बड़े सिपाही को गोली मारकर मार डालता है। उसकी नज़र दाईं ओर कुछ हलचल पर पड़ती है, वह मुड़ता है और अपने दाहिने हाथ से खुकरी को कसकर हवा में घुमाता है, जिससे उस आदमी का खौफनाक चेहरा कट जाता है। खुकरी उसकी एक आँख निकाल देती है और खून से लथपथ होकर उसकी नाक को दो हिस्सों में काट देती है, जिससे उपास्थि दिखने लगती है। सलारिया के प्रशिक्षित हाथ ने दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ के मानक वार किए और, उसके ज़ख्मी चेहरे से खून बह रहा था, वह आदमी खाई में गिर पड़ा, उसकी सही सलामत आँख सदमे और आतंक से अभी भी खुली हुई थी।
गुर्राते हुए, सलारिया खून से लथपथ चमकते हुए अगले सैनिक की ओर मुड़ा। वह खाई में कूदा और दुश्मन सैनिक का गला काट डाला, जिसे अपनी राइफल लोड करने का भी समय नहीं मिला था। खून की गर्म बौछार सलारिया के पसीने से तर चेहरे पर पड़ी। उसने अपनी कमीज़ की आस्तीन से चेहरा पोंछा और अगली खाई की ओर मुड़ गया।

2 दिसंबर 1961
अल्फा कंपनी की एक प्लाटून के साथ कैप्टन सलारिया को एलिजाबेथविले में एक शरणार्थी शिविर की सुरक्षा का जिम्मा सौंपा जाता है। लगभग उसी समय, एक कांगोई महिला के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश कर रहे दो नशे में धुत पुलिसकर्मियों और शांति सेना के सैनिकों के बीच झड़प हो जाती है। यह झड़प गोलीबारी में तब्दील हो जाती है। हालांकि कोई घायल नहीं होता, लेकिन इसके परिणामस्वरूप पास के पुलिसकर्मी गैरीसन ने नाकाबंदी कर दी और अगले कुछ दिनों में उन्होंने काफी उपद्रव मचाया। उन दिनों में चौदह संयुक्त राष्ट्र कर्मियों का अपहरण कर लिया गया। नवंबर की शुरुआत में, 3/1 गोरखा राइफल्स के मेजर अजीत, जिन्हें दो अपहृत संयुक्त राष्ट्र अधिकारियों को छुड़ाने का काम सौंपा गया था, को उनके ड्राइवर के साथ पुलिसकर्मियों ने अगवा कर लिया था। अजीत कभी वापस नहीं लौटे, जबकि ड्राइवर का शव बाद में हरे

रंग के कपड़े में लिपटा हुआ मिला। उन्हें बहुत करीब से गोली मारी गई थी। अजीत को निश्चित रूप से बंधक बना लिया गया था, लेकिन उन्हें ढूंढने के सभी प्रयास असफल रहे। उसके लापता होने की सूचना मिली और बाद में उसे मृत घोषित कर दिया गया।
अजीत के अपहरण की घटना सलारिया के मन में गहरे बैठी हुई है जब वह अंतिम लड़ाई के लिए मैदान में उतरता है। ड्यूटी पर तैनात एक शांति रक्षक अधिकारी के इस कायरतापूर्ण अपहरण से वह बेहद क्रोधित है। अल्फा कंपनी शरणार्थी शिविर की सुरक्षा कर रही है, तभी 5 दिसंबर को सुबह लगभग 9 बजे उन्हें हवाई अड्डे के रास्ते में स्थित गोलचक्कर पर कटांगेस जेंडरमेरी द्वारा बनाए गए अवरोध को हटाने का आदेश मिलता है। यह कार्य तुरंत करना आवश्यक है क्योंकि यह अवरोध संयुक्त राष्ट्र बलों की जीवनरेखा को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से बनाया गया है, जो न केवल राशन, हथियार और गोला-बारूद के लिए, बल्कि मृतकों और घायलों को निकालने के लिए भी विमानों पर निर्भर हैं।

देहरादून स्थित अपने घर में बैठे सेवानिवृत्त मेजर जनरल आर. पी. सिंह, एवीएसएम, वीएसएम, जिन्होंने कैप्टन सलारिया पर 'ए स्टार ऑन द माउंट ऑफ जुपिटर' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें कांगो में संयुक्त राष्ट्र शांति सेना में भारतीय ब्रिगेड का वृत्तांत दिया गया है, सलारिया के बारे में मर्मस्पर्शी स्वर में बात करते हैं। जनरल आर. पी. उस अभियान के दौरान बटालियन के एडजुटेंट थे। उन्हें याद है कि 5 दिसंबर 1961 की सुबह उन्होंने रेडियो पर सलारिया से बात की और उन्हें राउंडअबाउट रोड ब्लॉक पर हमले और उसे खाली कराने की योजना के बारे में बताया। उन्होंने स्पष्ट और संक्षिप्त शब्दों में सलारिया को अपने आदेश बताए। उन्हें अल्फा कंपनी की एक प्लाटून लेकर जेंडरमेरी के पीछे हटने के रास्ते को अवरुद्ध करना था और दोपहर में उन पर हमला करना था, जब उन्हें हमले की बिल्कुल भी उम्मीद नहीं होगी।
सुबह करीब 11:50 बजे सलारिया ने उसे सूचना दी कि वह 20 मिनट में शिविर से निकल जाएगा। प्लाटून के चलने के दौरान दोनों का संपर्क टूट गया, लेकिन एक

घंटे बाद, सलारिया ने रेडियो पर संदेश भेजा कि उस पर भारी मशीनगन से गोलीबारी हो रही है, जो चार अलग-अलग दिशाओं से आती हुई प्रतीत हो रही थी। उसने बताया कि उसके जवान दुश्मन के साथ गोलीबारी में लगे हुए हैं और उन्होंने अपने रॉकेट लॉन्चर से दुश्मन के दो बख्तरबंद वाहनों को नष्ट कर दिया है।
उनकी आवाज़ में उल्लास झलक रहा था। उन्हें लग रहा था कि यही वो पल था जिसका वे इंतज़ार कर रहे थे। उन्हें पूरा भरोसा था कि आगे क्या करना है। हालांकि मेजर जनरल सिंह को याद है कि उन्होंने सलारिया को आगे कोई भी कदम उठाने से पहले स्थिति का सावधानीपूर्वक आकलन करने की चेतावनी दी थी, लेकिन सलारिया ने संक्षिप्त जवाब दिया, 'मैं हमला करने जा रहा हूँ। मुझे पूरा यकीन है कि मैं जीतूँगा।'
‘वह मुझसे उनकी आखिरी बातचीत थी,’ मेजर जनरल सिंह याद करते हैं, उनकी भारी आवाज में 50 साल पुरानी यादें झलकती हैं। ‘उन्होंने जो किया, उसके लिए अदम्य साहस की आवश्यकता थी। अपना रेडियो सेट और ऑपरेटर पीछे छोड़कर, वे दिन दहाड़े अपने मुट्ठी भर गोरखाओं के साथ आगे बढ़ गए।’

सलारिया जैसे किसी पागल आदमी की तरह व्यवहार कर रहा था। उसने कितने लोगों को मारा था, इसका हिसाब ही खो बैठा था; वह एक हत्यारा मशीन बन चुका था, ग्रेनेड फेंक रहा था, संगीनों से लोगों को मार रहा था और अपनी खुखरी से गर्दनें चीर रहा था। मेजर अजीत का अपहरण और उसके ड्राइवर की हत्या कई दिनों से उसके दिमाग में गूंज रही थी। उसे पूरा यकीन था कि अजीत मारा जा चुका है और उसकी मौत कितनी दर्दनाक रही होगी, यह सोचकर उसका दिल कांप रहा था। भाड़े के सैनिक बेरहम हत्यारे थे, जिनमें कोई ज़मीर नहीं था। उन्हें सबक सिखाना ज़रूरी था और वह जितने लोगों को सिखा सकता था, उन्हें सबक सिखाने वाला था। यहीं और अभी। उसके लिए यह एक ध्यानमग्न क्षण था। उसे दर्द या मौत का कोई डर नहीं था। जैसे ही उसने जेंडरमेरी पर हमला किया, आत्मरक्षा की सारी भावनाएँ भुला दी गईं और वह एक योगी योद्धा बन गया, जो युद्ध के मैदान में तबाही मचा रहा था।

अत्यंत संतोष के साथ उसने देखा कि गोरखा सैनिकों का विशाल समूह डर के मारे तितर-बितर होकर भागने लगा। उन्होंने पहले कभी ऐसे क्रूर शत्रु का सामना नहीं किया था। उसके सैनिकों ने अपने आक्रामक आक्रमण और खुकरी के घातक प्रयोग से दुश्मन में दहशत पैदा कर दी थी—एक ऐसा हथियार जिसे दुश्मन ने पहले कभी नहीं देखा था। दूर से, उस बख्तरबंद गाड़ी से अभी भी धुआँ उठ रहा था जिसे उसके सैनिकों ने रॉकेट लॉन्चर से नष्ट कर दिया था। यह अविश्वसनीय था, लेकिन उन्होंने 90 सैनिकों की एक विशाल, आकार में बड़ी और आधुनिक हथियारों और गोला-बारूद से लैस शत्रु सेना को खदेड़ दिया था। उसके चारों ओर जेंडरमेरी के शव बिखरे पड़े थे, उनके बेजान चेहरों पर सन्न और अविश्वास साफ झलक रहा था।
सलारिया ने अभी-अभी भागने की कोशिश कर रहे एक आदमी को संगीन से मारा ही था कि तभी भागते हुए एक अन्य दुश्मन सैनिक की स्वचालित बंदूक से निकली गोलियों की बौछार उसकी गर्दन में जा लगी। उसने अपनी गर्दन को छुआ तो पाया कि वह खून से लथपथ है। दो गोलियां उसकी गर्दन को भेद चुकी थीं। खून रिसकर उसकी कमीज़ को भिगो रहा था। ठीक सामने उसे जेंडरमेरी (पुलिस) भागती हुई दिखाई दे रही थी। उसके कुछ बहादुर और साहसी गोरखा सैनिक अभी भी उनका पीछा कर रहे थे।
अत्यधिक थकान ने उन्हें घेर लिया, फिर भी उन्होंने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उनका बहुत खून बह चुका था। उनका कार्य पूरा हो चुका था और उन्हें शांति मिल गई थी। आंखें बंद करके, 3/1 गोरखा राइफल्स के कैप्टन गुरबचन सिंह सलारिया ने अपनी राइफल गिरा दी और बेहोशी की हालत में गिर पड़े, जिससे वे फिर कभी नहीं जाग सके।
कई साल पहले, जब सलारिया गोरखा राइफल्स में शामिल हुए थे, तब उन्हें बताया गया था कि उनकी रेजिमेंट का आदर्श वाक्य था: कायर होने से बेहतर मर जाना है: 'काफर हुनु भंडा मरनु राम्रो।'
सलारिया ने आदर्श वाक्य को साकार कर दिखाया था।

सलारिया खुद को हस्तरेखा विशेषज्ञ समझते थे। फरवरी 1961 में कांगो में तैनाती से पहले, वे किसी काम से छोटा शिमला गए थे और वहाँ उनकी मुलाकात एक आबकारी अधिकारी से हुई, जो लोगों की हथेलियाँ पढ़ा करते थे। सलारिया की हथेली देखकर अधिकारी ने उन्हें बताया कि उनकी बृहस्पति पर्वत पर एक तारा है, जो उन्हें बहुत प्रसिद्धि दिलाएगा। सलारिया ने इस भविष्यवाणी को गंभीरता से लिया और अक्सर हल्के-फुल्के पलों में अपने साथी अधिकारियों को इसके बारे में बताते थे। मेजर जनरल आर. पी. सिंह को याद है कि कांगो में एक दिन जब वे और सलारिया दुश्मन सैनिकों द्वारा मेजर अजीत के अपहरण पर चर्चा कर रहे थे और उम्मीद कर रहे थे कि अजीत सुरक्षित वापस आ जाएँगे, तो सलारिया ने उन्हें बड़ी गंभीरता से बताया कि उन्होंने अजीत की हथेली पढ़ी है और उनकी जीवन रेखा में स्पष्ट दरार है। हालांकि, उन्होंने तुरंत यह भी कहा कि अजीत की एक सहायक जीवन रेखा भी है, इसलिए उन्हें कुछ नहीं होगा।
फिर उन्होंने सेनापति को अपना दाहिना हाथ दिखाया। उन्होंने फिर से बृहस्पति पर्वत पर स्थित तारे की ओर इशारा करते हुए कहा, ‘देखते रहिए, यह तारा मुझे महान ऊंचाइयों पर ले जाएगा।’ सिंह ने शिष्टाचारवश ही पर्वत को महसूस करने के लिए थोड़ा झुककर देखा। सेनापति बताते हैं, ‘मैंने उनकी हस्तरेखा शास्त्र की जानकारी को कभी गंभीरता से नहीं लिया, इसलिए मैंने इसे नजरअंदाज कर दिया। मुझे नहीं पता था कि उनके कर्मों का फल मिलने और प्रसिद्धि प्राप्त करने का समय बस कुछ ही दिनों में आने वाला है। या फिर उन्हें इस प्रसिद्धि का कभी पता ही नहीं चलेगा, क्योंकि यह प्रसिद्धि उन्हें स्वर्ग में जाकर मिलेगी।’ वे शांत स्वर में कहते हैं।
इसके बजाय, उसने सलारिया से बस इतना कहा कि अगर किसी के भाग्य में प्रसिद्धि लिखी हो तो उसे कोई नहीं रोक सकता। सलारिया के रात्रिभोज का प्रस्ताव ठुकराकर चले जाने के तुरंत बाद, सिंह ने अपने सूटकेस में रखी चीरो की हस्तरेखा शास्त्र की किताब निकाली और बृहस्पति पर्वत पर स्थित नक्षत्र के बारे में पढ़ा। किताब में लिखा था, 'ये लोग महत्वाकांक्षी, निडर और अपने हर काम में दृढ़ निश्चयी होते हैं। ये नेता होते हैं। वे उस समय जो भी कर रहे होते हैं, उस पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित करते हैं और अपने अलावा कोई और रास्ता नहीं देखते।' सिंह की रीढ़ में एक सिहरन दौड़ गई। वह जानता था कि अजीत के अपहरण को लेकर सलारिया कितना परेशान और गुस्से में था और वह पुलिस को सबक सिखाने के लिए कितना बेताब था। चिंतित सिंह नियंत्रण कक्ष

में गया और ऑपरेटर से पूछा कि क्या सलारिया सुरक्षित अपने गंतव्य तक पहुँच गया है। पुष्टि मिलने पर उसने राहत की सांस ली।

गुरबचन सिंह सलारिया का जन्म 29 नवंबर 1935 को पाकिस्तान के शकड़गढ़ के पास जनवाल नामक गाँव में हुआ था। पाँच बच्चों में दूसरे नंबर पर रहे गुरबचन सिंह अपनी नानी के लाडले थे, जो बुरी नज़र से बचाने के लिए उनकी कमर पर काला धागा बाँध देती थीं। उस समय तक एडॉल्फ हिटलर एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उभर चुका था और दुनिया पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे।
गुरबचन के पिता मुंशी राम ब्रिटिश भारतीय सेना के बख्तरबंद कोर में थे और एक छावनी से दूसरी छावनी में स्थानांतरित होते रहते थे, केवल वार्षिक या आकस्मिक अवकाश पर ही घर आते थे। जब वे घर आते थे तो परिवार में उत्सव का माहौल होता था। उनका पसंदीदा खाना बनता था, घर जगमगाता था और दोस्त-परिवार के लोग उनसे दूर-दराज के स्थानों की उनकी प्रेरणादायक कहानियाँ सुनने आते थे, जहाँ सैनिकों ने वीरता के महान कारनामे किए थे। छोटा गुरबचन और उसके भाई-बहन अपने पिता की हुक्का पीते हुए बड़ी उत्सुकता से सुनते थे। संभवतः इसी से गुरबचन को साहसी बनने की प्रेरणा मिली होगी।
गुरबचन की माता धन देवी कभी स्कूल नहीं गईं और अपने बच्चों की परवरिश में पूरी तरह से व्यस्त रहीं। हालांकि, गांव में रहने के बावजूद, वह इस बात को लेकर बेहद सतर्क थीं कि उनके बच्चों की शिक्षा पर कोई असर न पड़े। गुरबचन नियमित रूप से स्कूल जाते थे, लेकिन पढ़ाई से ज्यादा खेलों और बाहरी गतिविधियों में व्यस्त रहते थे। वह एक अच्छे कबड्डी खिलाड़ी थे और 11 साल की उम्र में बैंगलोर के किंग जॉर्ज रॉयल मिलिट्री कॉलेज (केजीआरएमसी) में प्रवेश परीक्षा पास करने के बाद भी खेलों में उनका प्रदर्शन शानदार रहा। हालांकि, शारीरिक परीक्षा में उन्हें शुरू में इसलिए अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि उनकी छाती निर्धारित माप से एक इंच कम पाई गई थी, लेकिन उन्हें दोबारा प्रयास करने के लिए एक महीने का समय दिया गया। उन्होंने इस चुनौती को डटकर स्वीकार किया और प्रतिदिन एक लीटर बकरी का दूध पीते हुए जमकर व्यायाम किया।

जब वह मेडिकल जांच के लिए वापस गए, तो उन्होंने अपनी छाती को ढाई इंच तक बढ़ा लिया था और उन्हें तुरंत भर्ती कर लिया गया। उन्होंने अगस्त 1946 में कैडेट के रूप में कॉलेज में दाखिला लिया। 1947 में, उनका तबादला केजीआरएमसी जालंधर में कर दिया गया, जो उनके गांव के करीब था।
जब गुरबचन अपने दूसरे वर्ष में थे, तब एक बार उन्हें और उनके एक मित्र को एक अन्य कैडेट ने धमकाया और अपमानित किया। गुरबचन के आत्मसम्मान को ठेस पहुंची, लेकिन उन्होंने अगले दिन उस धमकाने वाले को मुक्केबाजी के लिए चुनौती दी। उन्होंने इतनी उग्रता से मुक्केबाजी की कि धमकाने वाला नॉकआउट हो गया और उसे माफी मांगनी पड़ी। कांगो में हुआ अभियान इस घटना की याद दिलाता है; जहां गुरबचन ने एक बहुत बड़ी और बेहतर हथियारों से लैस दुश्मन सेना का सामना सिर्फ इसलिए किया क्योंकि वह उन्हें युद्ध नैतिकता का पाठ पढ़ाना चाहते थे।
गुरबचन ने राष्ट्रीय रक्षा अकादमी और फिर भारतीय सैन्य अकादमी में दाखिला लिया। जुलाई 1954 में वे 2/3 गोरखा राइफल्स में शामिल हुए, जहाँ उनके छोटे बालों और ऊपर की ओर उठी हुई मूंछों के कारण उनके कमांडिंग ऑफिसर ने उन्हें 'खान साहब' उपनाम दिया। मार्च 1960 में, उन्हें 3/1 गोरखा राइफल्स में तबादला करने का आदेश मिला। वहीं पर तत्कालीन बटालियन एडजुटेंट जनरल आर. पी. सिंह की उनसे मुलाकात हुई।
जनरल सिंह को सलारिया एक सरल, संयमी और पैसे के मामले में बहुत सावधान व्यक्ति लगे, जो अन्य युवा अधिकारियों से बिल्कुल अलग थे, जिनमें से कई खर्चीले थे। दरअसल, सलारिया ने एक बार उनसे कहा था, जैसा कि उन्होंने याद किया, कि वह अपने छोटे भाई सुखदेव की जम्मू के कॉलेज में पढ़ाई के लिए घर पैसे भेज रहे थे।
सुखदेव अब 75 वर्ष के हैं और पठानकोट में रहते हैं। वे बिस्तर पर पड़े रहते हैं और उनका संतुलन बिगड़ चुका है, लेकिन उन्हें आज भी बड़े प्यार से याद है कि कैसे वे और गुरबचन बचपन में (गुरबचन उनसे दो साल बड़े थे) अपने गाँव से बहने वाली छोटी सी नदी में तैरने जाया करते थे। “तब हमें कोई चिंता नहीं थी; हम नदी में खूब मस्ती करते थे। कितने खूबसूरत दिन थे वो! अब गुरबचन नहीं रहे और मैं चल भी नहीं सकता, लेकिन जब भी मैं उनके बारे में सोचता हूँ, सबसे पहले वही याद मेरे मन में आती है,” बूढ़े व्यक्ति ने चुप

होते हुए कहा। उनके पास सुनाने के लिए और भी बहुत सी यादें हैं, लेकिन उनकी शक्ति जवाब दे रही है।

यह कहानी मेजर जनरल (सेवानिवृत्त) आर. पी. सिंह, एवीएसएम, वीएसएम के साथ हुई बातचीत पर आधारित है, जिन्होंने कैप्टन सलारिया पर 'ए स्टार ऑन द माउंट ऑफ जुपिटर' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें कांगो में संयुक्त राष्ट्र शांति सेना में भारतीय ब्रिगेड का विवरण दिया गया है।

1962 का भारत-चीन युद्ध
चीन की रणनीति को गलत समझने और भारतीय सेना की तैयारियों की अनदेखी करने के कारण राजनीतिक और सैन्य नेतृत्व की भूल ने भारत को चीन-भारत युद्ध में शर्मनाक हार का सामना करने पर मजबूर कर दिया। एकमात्र चीज जो सबसे अलग दिखी, वह थी सैनिकों का दृढ़ संकल्प और अदम्य साहस, जिन्होंने संख्या में कम और हथियारों की कमी के बावजूद अपने देश की रक्षा के लिए लड़ाई लड़ी। इस युद्ध की नींव अक्साई चिन क्षेत्र में पड़ी, जिसे भारत कश्मीर का हिस्सा मानता था, जबकि चीन इसे शिनजियांग का हिस्सा मानता था। 1959 के तिब्बती विद्रोह के बाद तनाव और बढ़ गया, जब भारत ने दलाई लामा को शरण दी। इससे चीन के साथ अनबन हुई और सीमा पर कुछ हिंसक घटनाएं हुईं।
इसके बाद भारत ने चीन के साथ विवादित क्षेत्रों में गश्त शुरू कर दी। इसका उद्देश्य आगे बढ़ रही चीनी सेना के पीछे चौकियां स्थापित करना था ताकि उनकी आपूर्ति बाधित की जा सके। भारत ने अग्रिम नीति अपनाई जिसके तहत उसने सीमा पर चौकियां स्थापित कीं। इनमें कुछ चौकियां मैकमोहन रेखा के उत्तर में, यानी वास्तविक नियंत्रण रेखा के पूर्वी भाग में भी स्थापित की गईं। शुरुआत में यह योजना कारगर प्रतीत हुई, लेकिन बाद में चीन ने इसे एक खतरे के रूप में लिया और भारत को सबक सिखाने का फैसला किया। हालांकि, भावुक और राजनीतिक रूप से दूरदर्शी नेहरू ने चीन के साथ संभावित युद्ध की तैयारी के लिए सैन्य खर्च नहीं बढ़ाया। सेना को न केवल उपकरण नहीं दिए गए, बल्कि प्रसिद्ध चौथी इन्फैंट्री डिवीजन को युद्ध की तैयारी के बजाय घर बनाने में लगा दिया गया।
नेहरू ने 1961 में लेफ्टिनेंट जनरल बी.एम. कौल को सेना प्रमुख नियुक्त किया। जनरल कौल को विश्वास था कि जब भारत चीन के साथ विवादित क्षेत्रों में गश्त भेजेगा तो चीन जवाबी कार्रवाई नहीं करेगा। हालांकि, चीनी सेना ने धीरे-धीरे भारतीय चौकियों को घेरना शुरू कर दिया।

लद्दाख के सिरिजाप में मेजर धन सिंह थापा की पोस्ट भी इसी तरह का एक उदाहरण थी। दरअसल, चीन के हमले न करने को लेकर इतना भरोसा था कि चीनी हमले से कुछ ही दिन पहले उन्हें घर जाने की छुट्टी भी दे दी गई थी।
मेजर थापा अपने स्थानापन्न अधिकारी का इंतजार कर रहे थे जब चीनी सेना ने हमला कर दिया, जिसमें लगभग पूरी कंपनी का नरसंहार किया गया और बचे हुए सैनिकों को युद्धबंदी बनाकर ले जाया गया। मेजर थापा, जिन्हें मृत मान लिया गया था, मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किए गए, इन्हीं युद्धबंदियों में से एक थे।
अगस्त की शुरुआत में ही चीन ने हथियार, गोला-बारूद और राशन जमा करना शुरू कर दिया था और साफ संकेत मिल रहे थे कि वे युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। हालांकि, भारत ने इन सब पर आंखें मूंद लीं। सूबेदार जोगिंदर सिंह, जिन्हें मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया, अरुणाचल प्रदेश के बुमला क्षेत्र में एक नदी के उस पार तैनात थे (तब इसे उत्तर-पूर्वी सीमांत एजेंसी कहा जाता था), और चीन को अपनी रक्षा तैयारियों में जुटते देख रहे थे।
12 अक्टूबर को जब जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की कि उन्होंने भारतीय सेना को चीनियों को पूर्वोत्तर अफ्रीका से खदेड़ने का आदेश दिया है, तब भारतीय सेना अप्रस्तुत, अपर्याप्त उपकरणों से लैस और यहां तक कि उचित शीतकालीन वस्त्रों के बिना थी। 14 अक्टूबर को चीन के पीपुल्स डेली में एक संपादकीय में भारत और नेहरू को चेतावनी जारी करते हुए कहा गया, 'इस नाजुक क्षण में, हम श्री नेहरू से एक बार फिर अपील करना चाहते हैं: खाई के किनारे पर बेहतर होगा कि आप संयम बरतें और भारतीय सैनिकों के जीवन को अपने जुए में दांव पर न लगाएं।' 20 अक्टूबर को चीनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने भारत पर दो हमले किए। इनमें से एक हमला पूर्वोत्तर अफ्रीका के थाग ला में हुआ, जबकि दूसरा लद्दाख के चुशुल सेक्टर में हुआ। दोनों ही हमले सैन्य एकाग्रता के लिहाज से बड़े पैमाने पर थे। भारतीय पक्ष में, लगभग 120 सैनिकों की एक-एक कंपनी ने उन चौकियों की रक्षा की, जो मशीनगनों, मोर्टार और ग्रेनेड से लैस हजारों दुश्मन सैनिकों से घिरी हुई थीं। रेजांग ला की लड़ाई, जिसमें लगभग हर सैनिक लड़ते हुए शहीद हो गया और मेजर शैतान सिंह को मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया, आज भी एक दुखद वीरता की कहानी के रूप में याद

की जाती है, जहां बहादुर सैनिकों ने निडर होकर अस्थिर सरकारी प्रमुखों और खराब सैन्य नेताओं की गलतियों के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया। भारत-चीन युद्ध 14,000 फीट से अधिक की ऊंचाई पर लड़ा गया था। इससे ये सबक मिले: युद्ध जीतने के लिए अच्छी खुफिया जानकारी और युद्ध की तैयारी अनिवार्य है, वरिष्ठ स्तर पर अच्छे नेतृत्व का अर्थ है कि जनरलों की नियुक्ति सैन्य योग्यता के आधार पर की जाए न कि चाटुकारिता के आधार पर, राजनेताओं को सैन्य तैयारियों के संबंध में सैन्य अधिकारियों की सलाह को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए, और यह कि शीर्ष पदों पर आसीन अयोग्य लोग राष्ट्रों को बर्बाद कर देते हैं।
1962 के युद्ध के एकमात्र चमकते सितारे भारतीय सेना के बहादुर सैनिक थे, जिन्होंने अपने क्षेत्रों की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक और अक्सर अपनी जान की बाजी लगा दी। यह बात मशहूर है कि भारतीय सैनिकों में साहस के अलावा किसी चीज की कमी नहीं थी। इन बहादुरों ने ऊंचे पहाड़ों और जमा देने वाली ठंड में लड़ाई लड़ी। उन्होंने चीनी स्वचालित हथियारों के खिलाफ पुरानी और बोझिल .303 राइफलों का इस्तेमाल किया। संख्या में कम होने और अच्छी तरह से तैयार चीनी सेना द्वारा बुरी तरह पराजित होने के बावजूद, वे अपने राष्ट्र के गौरव के लिए लड़ते रहे।
इस युद्ध से वर्दीधारी कई साधारण नायकों की वीरता की कहानियां सामने आईं। इनमें से तीन कहानियां सूबेदार जोगिंदर सिंह, मेजर धन सिंह थापा और मेजर शैतान सिंह की थीं। तीनों को मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया, लेकिन चमत्कारिक रूप से मेजर थापा सिरिजाप की लड़ाई के कुछ महीनों बाद मौत के मुंह से वापस आ गए। उन्हें चीनी सेना ने युद्धबंदी बना लिया था।
उनकी अविश्वसनीय बहादुरी और दृढ़ता की कहानियां हमें बताती हैं कि राजनेता भले ही अपनी जिम्मेदारियों को भूल जाएं, सैनिक उन्हें नहीं भूलते।

Dhan Singh Thapa

सिरिजाप की लड़ाई 1, लद्दाख क्षेत्र 20 अक्टूबर 1962
गोरखा सैनिक की उम्र लगभग 20 वर्ष है। वह अपनी खाई से गोलीबारी कर रहा है। उसकी पतली उंगलियां.303 राइफल को उसके दुबले-पतले शरीर से इतनी कसकर पकड़े हुए हैं कि वह उसके शरीर का ही एक हिस्सा लगती है। हेलमेट ने उसके युवा चेहरे को ढक रखा है।
कड़ाके की ठंड पड़ रही है, लेकिन उसके माथे पर पसीने की बूँदें हैं। वह चीनी सैनिकों पर गोलियाँ चला रहा है, जो एक विशाल लहर की तरह आगे बढ़ रहे हैं और उनकी स्वचालित राइफलें सिरिजाप 1 की रक्षा कर रहे सैनिकों पर अंधाधुंध गोलियाँ बरसा रही हैं। यह चौकी पैंगोंग त्सो के उत्तरी किनारे पर स्थित है और इस पर 8 गोरखा राइफल्स की पहली बटालियन की डेल्टा कंपनी के जवान तैनात हैं।
सैनिक बड़ी सावधानी से गोलियां चला रहा है। उसे पता है कि गोला-बारूद कम पड़ रहा है और वह और उसके साथी संख्या में बहुत कम हैं। सुबह 6 बजे जब चीनियों ने गोलाबारी शुरू की थी तब वे 28 लोग थे, लेकिन अब उनमें से लगभग आधे उसके आसपास पड़े हैं, कुछ मर चुके हैं और कुछ मरणासन्न अवस्था में हैं। तभी एक गोले से एक बंकर फट गया और कंपनी के द्वितीय-कमांड सूबेदार मिन बहादुर गुरुंग के ठीक ऊपर गिर पड़ा। गुरुंग साहब घायल और खून से लथपथ मलबे से रेंगते हुए बाहर निकले, उनके हाथ में अभी भी लाइट मशीन गन (एलएमजी) थी। उन्होंने दुश्मन पर फिर से गोलीबारी शुरू कर दी, उनका मिट्टी से सना चेहरा संयम का भाव लिए हुए था। डी कंपनी के कमांडर मेजर धन सिंह थापा एक खाई से दूसरी खाई में जाते रहे और अपने बचे हुए जवानों को बहादुरी का हौसला देते रहे।
तभी एक गोली सिपाही के हाथ में लग जाती है। वह राइफल गिरा देता है और दर्द से चीखता हुआ उस तंबू की ओर भागता है जो अभी भी सही-सलामत खड़ा है। एक पल भी गंवाए बिना, मेजर थापा गिरी हुई बंदूक उठाते हैं और उसे अंदर ले जाते हैं। उन्हें डरा हुआ सिपाही एक कोने में दुबका हुआ, अपने घायल हाथ को सहलाता हुआ मिलता है।

थापा उसके पास जाकर उसके सिर पर धीरे से थपथपाता है। "कायर होने से बेहतर है मर जाना," वह कहता है और बंदूक वापस उस युवक को सौंप देता है। "अगर मरना ही है तो हम सब एक साथ मरेंगे, लेकिन मरने से पहले कुछ लोगों को मार डालो।" इतना कहकर मेजर थापा मुड़े और तेज़ी से उस जगह की ओर बढ़े जहाँ एक सैनिक अपनी एलएमजी (लम्बार बंदूक) हाथ में लिए मृत पड़ा था। उन्होंने बंदूक उठाई और खुद खाई में घुस गए, आगे बढ़ते दुश्मन के सामने खुद को तैनात कर लिया। उनकी नज़र के कोने से उन्होंने घायल सैनिक को दृढ़ निश्चय के साथ वापस आते देखा, जिसके चेहरे पर खून से सने हाथों में राइफल थी।

लद्दाख के चुशुल सेक्टर में सिरिजाप 1 में हुई लड़ाई मेजर धन सिंह थापा के प्रभावशाली नेतृत्व के लिए सैन्य इतिहास में अमर हो गई है। उन्होंने ही अपने बहादुर गोरखा सैनिकों को अंत तक लड़ने के लिए प्रेरित किया था। सिरिजाप 1 उन कई चौकियों में से एक थी जिन्हें भारत ने चीन का मुकाबला करने के लिए अपनाई गई अग्रिम नीति के तहत स्थापित किया था। चीन लद्दाख में चौकियां बना रहा था। डी कंपनी के जवानों को कई चौकियों पर तैनात करना था, इसलिए सिरिजाप 1 पर केवल लगभग 28 सैनिक ही तैनात किए गए थे। वहां चीनी हमले की आशंका नहीं थी और मेजर, जो अपनी गर्भवती पत्नी को देहरादून में छोड़कर लद्दाख गए थे, उन्हें घर जाने के लिए एक सप्ताह की छुट्टी भी मिल गई थी और उनकी जगह लेने के लिए भेजा गया अधिकारी लेह पहुंच चुका था। लेकिन छुट्टी पर जाने की अनुमति मिलने के बावजूद, थापा ने सिरिजाप का कार्यभार संभालने के लिए अपने उत्तराधिकारी का इंतजार करने पर जोर दिया क्योंकि वह अपनी कंपनी को बिना मुखिया के नहीं छोड़ना चाहते थे।
19 अक्टूबर को मेजर थापा दुश्मन पक्ष की हलचल और चौकियों पर चीनी सेना की बढ़ती तैनाती देखकर हैरान रह गए। संभावित हमले की आशंका में मेजर थापा और उनके सैनिकों ने अपनी रक्षा की तैयारी शुरू कर दी। ज़मीन सख्त और जमी हुई थी, इसलिए खुदाई करना बहुत मुश्किल था। उन्होंने अपने बंकरों को मजबूत करने के लिए रेत की बोरियाँ जमा कर दीं।

वे जवान पूरी रात बेसब्री से इंतज़ार करते रहे। वे मात्र 28 ही थे! लेकिन मेजर थापा ने अपने साहस भरे शब्दों से उनका हौसला बढ़ाया। उन्होंने शांत आत्मविश्वास के साथ उनसे कहा, 'यह मत भूलो कि एक गोरखा दस अन्य गोरखाओं के बराबर होता है।'
‘हम ज़रा भी घबराए नहीं, न ही हमें किसी चीज़ का डर था, सिवाय खाइयों के बाहर कड़ाके की ठंड के, जहाँ रात में गश्त के दौरान बर्फीली हवाएँ चलती थीं,’ सूबेदार मेजर तुलसी राम थापा, जो उस घटना में बच गए थे, पूनम (मेजर थापा की सबसे छोटी बेटी) को कई साल बाद बताएंगे जब वह अपने पिता की जीवनी पर शोध कर रही होंगी। ‘हमारे पास पर्याप्त कपड़े थे। हममें से प्रत्येक को ऊनी मोजों के तीन जोड़े, ऊनी अंतर्वस्त्र, पतलून, चश्मे, जैकेट, स्लीपिंग बैग, छलावरण वाले रेनकोट आदि दिए गए थे, और शारीरिक रूप से हम काफी आरामदायक थे। हममें से कुछ को घर से चिट्ठियाँ भी मिली थीं।’
वह काली रात बिना किसी अप्रिय घटना के गुज़री और धीरे-धीरे ड्यूटी पर न मौजूद सैनिक आराम करने के लिए अपनी आँखें बंद कर लीं। 20 अक्टूबर को सुबह 6 बजे एक धमाका हुआ और भारी तोपखाने की गोलाबारी से सिरिजाप 1 हिल उठा। बम फटे और हवा में गोले की घातक फुफकार और घायलों की चीखें गूंज उठीं, जिसके बाद भारी मोर्टारों की गड़गड़ाहट सुनाई दी। विस्फोटों ने गोरखाओं द्वारा बनाए गए बंकरों को नष्ट कर दिया और उनकी छोटी सी टुकड़ी में तबाही मचा दी। कई सैनिक अपनी खाइयों में मारे गए, कई और घायल हुए। बहुत जल्द रेडियो नेटवर्क भी ठप हो गया, जिससे कंपनी का बाकी बटालियन से पूरी तरह संपर्क टूट गया।
सिग्नल अधिकारी मेजर वेद व्यास को बाद में मेजर थापा से प्राप्त अंतिम संदेश याद आएगा। उन्होंने कहा था, 'न तो मैं पीछे हटूंगा, न ही मैं आत्मसमर्पण करूंगा।'
टोकुंग में स्थित अवलोकन चौकी, जो पैंगोंग त्सो क्षेत्र में चौकियों के रखरखाव के लिए इस्तेमाल होने वाली नौकाओं का एक घाट था, एकमात्र ऐसी जगह थी जहाँ से सैनिक सिरिजाप की लड़ाई देख सकते थे। सैनिकों का कहना है कि गोलाबारी दो घंटे से अधिक समय तक चली और सिरिजाप ऐसा लग रहा था मानो उसे आग लगा दी गई हो।
गोलाबारी जारी रहने के दौरान, चीनी सेना कंपनी की चौकी के करीब पहुँचने में कामयाब रही। गोलाबारी रुकते ही उन्होंने 500 से अधिक सैनिकों के साथ

हमला कर दिया। गोरखा सैनिकों ने बहादुरी से मुकाबला किया। उनमें से अधिकतर 20 वर्ष की आयु के थे और कुछ ही वर्षों की सेवा का अनुभव था। उनकी एलएमजी और.303 पिस्तौलें दुश्मन के अत्याधुनिक हथियारों और गोला-बारूद का मुकाबला नहीं कर सकती थीं, लेकिन फिर भी उन्होंने चीनी सेना में भारी खलबली मचा दी।
कद में छोटे और दुबले-पतले होने के बावजूद उनमें साहस की कोई कमी नहीं थी। अपने कंपनी कमांडर के नेतृत्व में, जो स्वयं मात्र 33 वर्ष के थे, उन्होंने दुश्मन सैनिकों को अपनी तोपों के निशाने पर लिया और जैसे ही वे करीब आए, उन्हें मार गिराया।
लेकिन चीनी सेना की विशाल संख्या बेहद भारी थी। हर बार जब वे दुश्मन के आक्रमण को विफल करते, तो दुश्मन और भी अधिक संख्या में हमला कर देता। एक टुकड़ी के प्रभारी नायक कृष्ण बहादुर थापा को छर्रे से चोट लगी जिससे उनका पैर कट गया। गंभीर रूप से घायल होने के बावजूद, उन्होंने अपने एक मृत साथी की एलएमजी उठाई और आगे बढ़ते दुश्मन पर तब तक गोलीबारी करते रहे जब तक कि गोलियों की एक और बौछार से वे गिरकर मर नहीं गए।
जो सैनिक बच गए, वे याद करते हैं कि मेजर थापा किस प्रकार सर्वोपरि थे। उन्होंने उन्हें साबित कर दिया कि वे एक सच्चे कमांडर थे। गोलीबारी के दौरान, उन्होंने अपनी जान की परवाह किए बिना निडर होकर बंकरों का चक्कर लगाया, दरारों को मजबूत किया, मृत या घायल सैनिकों की जगह नए सैनिक भेजे और बचे हुए सैनिकों का अपने साहसी शब्दों से हौसला बढ़ाया। उन्होंने उन्हें साहसपूर्वक डटे रहने और जो होना तय था उसकी परवाह न करने के लिए प्रेरित किया।
उनके दो हमलों को नाकाम करने के बाद, चीनियों ने जल-रोधक नौकाओं का इस्तेमाल करके मशीनगन और बाज़ूका को झील के पार पहुंचाया। चूंकि डी कंपनी का रेडियो संपर्क पूरी तरह टूट चुका था, इसलिए बटालियन मुख्यालय ने नायक रबीलाल थापा को दो नावों के साथ झील में भेजा ताकि पता लगाया जा सके कि क्या हो रहा है, लेकिन चीनियों ने उन पर गोलीबारी की और एक नाव को पलट दिया, जिससे उसमें सवार सभी लोग डूब गए। दूसरी नाव नायक रबीलाल को लेकर बटालियन में लौट आई। दुश्मन द्वारा तीन तरफ से उन पर एलएमजी से गोलीबारी शुरू करने से पहले वे सिरिजाप से 1000 गज की दूरी तक पहुँचने में कामयाब रहे। उन्होंने सिरिजाप से भूरे धुएं और आग के बादल उठते देखे, जो पूरी तरह से

नष्ट हो चुका था। उन्होंने सूचना दी कि चौकी चीनियों के कब्जे में आ गई है और उसकी रक्षा कर रहे सभी सैनिक शहीद हो गए हैं।
असलियत यह थी कि सिरिजाप ने अपने सभी सैनिक नहीं खोए थे। सात बहादुर सैनिक अभी भी डटे हुए थे, हालांकि उनके पास गोला-बारूद तेजी से खत्म हो रहा था। अपने कंपनी कमांडर के उदाहरण से प्रेरित होकर, जो उनके साथ लड़ता रहा, उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। जिन सैनिकों की गोलियां खत्म हो गईं, उन्होंने अपने मृत साथियों की राइफलें उठाईं और फायरिंग जारी रखी।
जब उनका गोला-बारूद खत्म हो गया और चीनी सैनिकों ने आग लगाने वाले बमों से सैनिकों को धुएं से बाहर निकालने की कोशिश की, तो गोरखाओं ने अपनी खुकरी (पारंपरिक नेपाली चाकू) निकाली और अपनी खाइयों से बाहर निकलकर युद्धघोष किया: 'जय महाकाली, आयो गोरखाली।' अपने कमांडर के नेतृत्व में, उन्होंने अपनी घातक तलवारें दुश्मन के गले और सीने में घोंप दीं। मेजर थापा बचे हुए कुछ अंतिम सैनिकों में से एक थे और अपनी खुकरी से लड़ रहे थे जब राइफल के बट से उनके चेहरे पर चोट लगी और उनके दो दांत टूट गए। उन्होंने चीनी सैनिक को मार गिराया और आग बुझाने के लिए उस पर लोट-पोट हो रहे थे जब उन्हें घेर लिया गया और कुछ अन्य लोगों के साथ बंदी बना लिया गया।
20 अक्टूबर की शाम जब सिरिजाप में अंधेरा छा गया, तब बटालियन को मेजर थापा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, जिन्हें 28 अन्य वीरों के साथ मृत मान लिया गया था। कर्तव्यनिष्ठा, अदम्य वीरता और प्रेरणादायक नेतृत्व के लिए मेजर थापा को तत्काल परम वीर चक्र (पीवीसी) से सम्मानित करने की सिफारिश की गई थी। उन्हें मरणोपरांत पीवीसी से सम्मानित किया गया क्योंकि माना जा रहा था कि वे युद्ध में शहीद हो गए थे।

उनकी बटालियन को बिना बताए, मेजर और सिरिजाप के कुछ अन्य जीवित बचे सैनिकों को चीनी सेना पहले खुरनाक किले और बाद में सिंकियांग ले गई, जहाँ उन्हें युद्धबंदी बना लिया गया। मेजर थापा मई 1963 तक चीनी कैद में रहे। उन्हें पूरी तरह से एकांत में रखा गया, चीनी दुष्प्रचार का शिकार बनाया गया, जिसमें उन्हें चीनी नीतियों का महिमामंडन करने वाली चीनी फिल्में

दिखाई गईं, और उन्हें भावनात्मक रूप से कमजोर किया गया, यह कहकर कि उनके जीवित होने के बावजूद, भारतीय सेना और सरकार उनकी रिहाई में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही है।
अगर मेजर थापा की दोस्ती उस चीनी लड़के से न हुई होती, जो उन्हें उस तंबू में खाना पहुँचाता था जहाँ उन्हें बंदी बनाया गया था, तो शायद उन्हें पूरी ज़िंदगी कैद में ही गुज़ारनी पड़ती। हालाँकि मेजर थापा चीनी भाषा नहीं बोल सकते थे, फिर भी उन्होंने उस लड़के से एक गहरा रिश्ता बना लिया और उसे यह बताने में कामयाब रहे कि भारत में उनका परिवार है, उनकी पत्नी गर्भवती हैं और वे उन्हें एक पत्र भेजना चाहते हैं जिसमें वे अपने जीवित होने की सूचना दें। उस चीनी लड़के ने उनके लिए वह पत्र डाक से भेज दिया और वह शिमला में मेजर थापा के मामा तक पहुँच गया। मामा ने सेना को इस बात की जानकारी दी कि पीवीसी पुरस्कार विजेता, जिसे मृत घोषित कर दिया गया था, वास्तव में जीवित है और चीनी कैद में है।
जब मेजर थापा को वापस लाया गया, तो उन्होंने बताया कि कैसे उन पर लगातार दबाव डाला गया कि वे चीनियों के सामने आत्मसमर्पण कर दें। जब उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया, तो उन्हें कड़ाके की ठंड में बिना जूतों के और पीठ पर रेडियो बांधकर एक चौकी से दूसरी चौकी तक पैदल चलने के लिए मजबूर किया गया। लगातार बर्फ में रहने के कारण उन्हें फ्रॉस्टबाइट हो गया। पूर्णिमा कहती हैं कि उनके पिता जीवन भर सूजे हुए पैरों और जोड़ों के दर्द से पीड़ित रहे, जो बाद में गठिया में बदल गया।
मेजर थापा को कैदी के रूप में बिताए अपने दिनों के बारे में बात करना पसंद नहीं था और वे युद्ध के बारे में भी शायद ही कभी बोलते थे। पूर्णिमा कहती हैं, 'जब हम उनसे बार-बार पूछते थे, तो वे बस इतना ही कहते थे कि वे अपने सैनिकों को अपनी आँखों के सामने एक-एक करके मरते हुए देखने का दृश्य कभी नहीं भूल सकते और युद्धबंदी होने के अपमान को कभी नहीं भुला सकते।'
धन सिंह के निधन की खबर आने के बाद, उनके परिवार ने उनकी अंतिम संस्कार की सभी रस्में पूरी कर लीं, हालांकि उनकी पत्नी शुक्ला लगातार कहती रहीं कि उनके पति जीवित हैं और वापस लौटेंगे; उन्होंने उनसे वादा किया था कि वे उन्हें अपने अगले पोस्टिंग पर अपने साथ ले जाएंगे। युद्ध के बाद जब गोरखा अधिकारी अपनी वर्दी पर काली पट्टियाँ बांधकर देहरादून के यंग रोड स्थित उनके घर आए और उनके पति की मृत्यु की खबर दी, तो उन्होंने उन पर विश्वास

करने से इनकार कर दिया। उस समय सभी को लगा कि वह सदमे में हैं। जब मेजर थापा मई 1963 में वापस लौटे, तो उन्हें शुक्ला से दोबारा शादी करनी पड़ी क्योंकि उन्हें विधवा के रीति-रिवाज निभाने के लिए मजबूर किया गया था। उनका सामना अपने नवजात पुत्र परम दीप थापा से भी हुआ, जिसका नाम उसके पिता को मिले पीवीसी (पुलिस गार्ड) के नाम पर रखा गया था। बड़े होकर परम ने सेना में भर्ती होने का फैसला किया।
मेजर थापा लेफ्टिनेंट कर्नल के पद तक पहुंचे और सेवानिवृत्ति तक सेवा करते रहे। उन्होंने 1964 से 2004 तक लगभग सभी गणतंत्र दिवस परेड में भाग लिया। दिल्ली में गुर्दे की खराबी के कारण बीमार और डायलिसिस से गुजर रहे लेफ्टिनेंट कर्नल थापा अपने अंतिम वर्ष में बार-बार बेहोश हो जाते थे। उनकी देखभाल कर रही पूर्णिमा ने उनसे उस वर्ष परेड में शामिल न होने की विनती की, लेकिन उन्होंने विनम्रतापूर्वक दृढ़ता से इनकार कर दिया। उन्होंने पूर्णिमा से कहा, 'जब मैं वर्दी पहनकर परेड में जाता हूं, तो मैं अपने सैनिकों का प्रतिनिधित्व करता हूं; उन लोगों का जिन्होंने मेरे साथ युद्ध लड़ा। मैं उन्हें निराश नहीं कर सकता।' पूर्णिमा याद करती हैं कि हालांकि वे मुश्किल से लंबे समय तक खड़े रह पाते थे या सचेत रह पाते थे, फिर भी उन्होंने वर्दी पहनी, पीवीसी पिन लगाई, अपनी गोरखा टोपी को सही कोण पर झुकाया और परेड में चले गए। अपने दृढ़ संकल्प से वे राष्ट्रपति को सलामी देने तक जीप में खड़े रहे। उसके बाद वे बैठ गए।
यह गणतंत्र दिवस की वह आखिरी परेड थी जिसमें उन्होंने भाग लिया था। 5 सितंबर 2005 को लेफ्टिनेंट कर्नल थापा का गुर्दे की खराबी के कारण निधन हो गया। वे 77 वर्ष के थे।

धन सिंह थापा का जन्म 28 अप्रैल 1928 को शिमला, हिमाचल प्रदेश में हुआ था और 28 अगस्त 1949 को वे 8 गोरखा राइफल्स में कमीशन प्राप्त हुए थे। स्वभाव से सौम्य और विनम्र होने के बावजूद, वे फुटबॉल के प्रति बेहद जुनूनी थे, एक ऐसा खेल जिसे वे बाद में गठिया से पीड़ित होने के कारण नहीं खेल सके।

वह एक बहादुर इंसान थे। 1962 के युद्ध से पहले भी, जब वह नागालैंड में उग्रवाद से लड़ रहे थे, उनकी पत्नी को याद है कि वह अपनी सुरक्षा की परवाह किए बिना रात में गश्त पर निकल जाते थे। दरअसल, शुक्ला ने अपनी दूसरी बेटी को घर पर ही रात में जन्म दिया था, जब वह नागालैंड के उग्रवाद प्रभावित मोचुंगचुंग में एक ऑपरेशन पर थे। युद्ध में जाने से कुछ महीने पहले ही उन्होंने अपनी बेटी को खो दिया; थापा अपनी गर्भवती और दुखी पत्नी को पीछे छोड़ गए। हालांकि कर्तव्य उनके लिए सर्वोपरि था, वह एक स्नेही पिता और समर्पित पति थे, जो पार्टियों और घर पर अपनी पत्नी को गाते हुए सुनकर प्रसन्न होते थे।
सरल और स्पष्टवादी, वह अपने दिल की सुनता था। वह अपने से ऊपर के लोगों से ज़्यादा अपने अधीन काम करने वालों से प्यार करता था। गहरे धार्मिक स्वभाव का होने के कारण, उसे दर्शनशास्त्र की किताबें पढ़ना पसंद था। जब वह कैद में था, तो चीनी अधिकारियों ने उससे पूछा कि वह ईश्वर में विश्वास क्यों करता है। उसने कहा, 'मुझे युद्ध में मर जाना चाहिए था, लेकिन यह एक चमत्कार है कि मैं अभी भी जीवित हूँ।' फिर उसने अपनी जैकेट खोली और पूछताछ करने वाले अधिकारी से कहा, 'आप चाहें तो मुझे गोली मार सकते हैं, लेकिन अगर ईश्वर नहीं चाहता कि मैं मरूँ, तो मैं नहीं मरूँगा।'
चीनियों ने उसे गोली नहीं मारी और सच्चाई यह है कि वह अपने लोगों के लिए मौत के मुंह से वापस लौटा।

यह कहानी सेवानिवृत्त सैनिकों के बयानों और दिवंगत लेफ्टिनेंट कर्नल धन सिंह थापा (पीवीसी) की बेटी पूनम थापा के साथ हुई बातचीत के आधार पर पुनर्निर्मित की गई है।

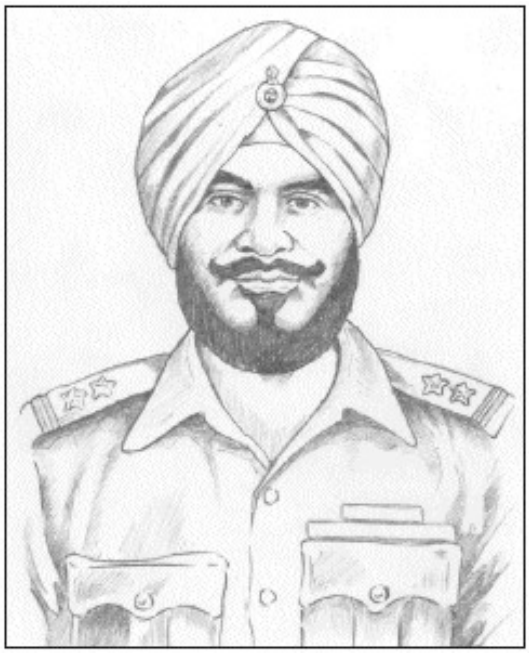

Joginder Singh

बठिंडा से लगभग 45 किलोमीटर दूर, गेहूं से लदे हरे-भरे खेतों के पार, चेहलनवालन नाम का एक छोटा सा गाँव है। वहाँ एक बड़े ईंट के मकान में तरह-तरह के लोग और चीजें मौजूद हैं: एक चमकीला ट्रैक्टर, प्यार से तराशी गई एक जिप्सी गाड़ी, तेज़ बॉलीवुड रिंगटोन वाला एक पुराना मोबाइल फोन, शोर मचाती दो बकरियाँ, खट्टी लस्सी और बिना दांतों वाली मुस्कान के साथ एक झुकी हुई बूढ़ी बिजी (दादी)।
यह एक संयुक्त परिवार है जिसमें कई सदस्य हैं और इसके मुखिया 81 वर्षीय सूबेदार काला सिंह हैं, जो 30 साल से भी अधिक समय पहले सेना से सेवानिवृत्त हुए थे। गर्व से खड़े ये सरदार, जो सफेद पठान सूट में शान से खड़े रहते हैं, अब जैतून के हरे रंग की वर्दी नहीं पहनते। फिर भी, कोई भी इस बात पर संदेह नहीं करेगा कि वे एक सैनिक हैं। वे उन तीन लोगों में से एक हैं जो 1962 में उत्तर-पूर्वी सीमांत एजेंसी (एनईएफए) के तवांग जिले के बुम ला के पास टोंगपेन ला की लड़ाई से जीवित वापस लौटे थे।
काला सिंह उन अंतिम व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने परम वीर चक्र विजेता जोगिंदर सिंह को जीवित देखा था। वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो हमें उस वीर योद्धा के बारे में बता सकते हैं, जिसने मात्र 29 सैनिकों के साथ चीनी सेना की एक ब्रिगेड पर आक्रमण किया था। वे उस व्यक्ति के बारे में भी बता सकते हैं जिसने न केवल अपने सैनिकों को वीरता के लिए प्रेरित किया, बल्कि गोला-बारूद समाप्त होने के बाद भी उन्हें गौरवशाली मृत्यु की ओर अग्रसर किया, जब उन्होंने अपनी तोपों पर संगीनें लगाकर लड़ाई लड़ी। जोगिंदर सिंह वीरों में सर्वोपरि थे और उन्होंने ठीक उसी तरह जीवन व्यतीत किया जैसा उन्होंने अपने सैनिकों को करने के लिए कहा था: शेर की तरह, 'शेर के माफिक'।
लेकिन इसे समझने के लिए हमें वहीं से शुरुआत करनी होगी जहाँ से बूढ़े काला की कहानी शुरू होती है: बुम ला की एक पहाड़ी पर एक बेहद ठंडे दिन, जहाँ सूबेदार जोगिंदर सिंह के नेतृत्व में 1 सिख रेजिमेंट की एक पलटन सतर्कता से देख रही थी कि एक हजार से अधिक चीनी सैनिक मात्र 250 गज की दूरी पर,

दोनों सेनाओं के बीच बहने वाली एक उथली धारा के पार, खाइयाँ खोदकर कतार में खड़े हो गए थे। एक खूनी युद्ध होना तय था।

अक्टूबर 1962
काला 27 वर्ष के थे और लखनऊ में एक बास्केटबॉल टूर्नामेंट में भाग लेने गए थे, तभी चीन के साथ युद्ध की आशंका फैल गई। सभी मैच रद्द कर दिए गए और उन्हें अपनी बटालियन में शामिल होने के लिए कहा गया, जिसे हाल ही में NEFA (अब अरुणाचल प्रदेश राज्य) में स्थानांतरित किया गया था। काला बताते हैं कि उन्होंने असम के मिसामारी तक ट्रेन ली और फिर 11 अक्टूबर को लिफ्ट लेकर तवांग पहुंचे। दो दिन बाद उन्हें अपनी कंपनी में शामिल होने के लिए कहा गया और 14 अक्टूबर को उन्हें बम ला अक्ष पर सूबेदार जोगिंदर सिंह की पलटन में शामिल होने के लिए भेज दिया गया।
एक सिख सैनिक के वहाँ पहुँचने के बाद दो सप्ताह से अधिक का समय बीत चुका था। युद्ध अपरिहार्य प्रतीत होने पर उन्हें सीधे जयपुर से वहाँ भेजा गया था। आदेश मिलते ही सैनिकों ने अपने बक्से पैक किए, मिसामारी के लिए ट्रेन पकड़ी और तवांग की ओर जाने वाले सेना के ट्रकों में सवार हो गए। उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के घने जंगलों से होकर एक लंबी और थका देने वाली यात्रा की, जहाँ हरे-भरे पेड़ों से ऑर्किड लटक रहे थे; उन्होंने तंग तेंगा घाटी को पार किया, बोमडिला तक घुमावदार रास्ते पर चढ़ाई की और फिर खूबसूरत धीरंग पहुँचे, जहाँ महिलाएँ अपनी पीठ पर गुलाबी गालों वाले, नाक बहते बच्चों को बाँधकर काम कर रही थीं। 13,714 फीट ऊँचे धुंध से ढके सेला दर्रे को पार करते हुए, उन्होंने जमी हुई सेला झील को पार किया। अंत में वे गिरी हुई बर्फ में बने एक संकरे रास्ते पर चलकर तवांग पहुँचे।
वे वहां युद्ध लड़ने जा रहे थे।
बटालियन के अधिकांश सैनिकों ने पहले कभी यह इलाका नहीं देखा था, और वे अपने निर्धारित पदों और कंपनियों तक पैदल चलकर गए। कई सैनिक और अधिकारी अभी भी छुट्टी पर या तैनाती पर थे। चूंकि स्थानांतरण के आदेश अचानक आए थे, इसलिए कई प्लाटूनों में सैनिकों की संख्या सामान्य से कम थी। उनके पास पर्याप्त शीतकालीन वस्त्र या लड़ने के लिए आधुनिक उपकरण भी नहीं थे। यह युद्ध केवल

साहस के बल पर लड़ा गया था। "सिपाहियों का दिल था जो वो लड़ने गए," काला भावुक स्वर में कहते हैं। उनके पास खुद न तो जैकेट थी, न ही उचित शीतकालीन जूते और न ही दस्ताने।
द्वितीय विश्व युद्ध और 1947-48 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में सूबेदार जोगिंदर सिंह के अनुभव ने उन्हें बटालियन में एक अत्यंत सम्मानित व्यक्ति बना दिया था, इसलिए उन्हें आगे भेजे जाने के लिए विशेष रूप से चुना गया। निर्धारित स्थान पर पहुँचते ही, उन्होंने और उनकी 29 जवानों की पलटन ने पहाड़ी पर खाइयाँ खोदीं और आगे के आदेशों की प्रतीक्षा में बैठ गए। जैसे ही युद्ध के बादल मंडराने लगे, उन्होंने असम राइफल्स के सैनिकों को पीछे हटते देखा—यह एक सामान्य प्रक्रिया थी। युद्ध के दौरान असम राइफल्स और अर्धसैनिक बल सेना के लिए रास्ता बनाने के लिए पीछे हट जाते थे।
'जब हम शिविर लगा रहे थे और खाइयाँ खोद रहे थे, तब हम उन्हें सुरक्षित क्षेत्रों की ओर मार्च करते हुए देखते थे। वे हमसे कहते थे, "लड़ाई होने वाली है, अब हमारा काम खत्म, आपका काम शुरू (युद्ध शुरू होने वाला है, हमारा काम हो गया है; अब आपके सामने काम है),"' काला याद करते हैं।
20 अक्टूबर को, चीनी सेना ने नामका चू स्थित भारतीय चौकी पर हमला किया, जो सातवीं इन्फैंट्री ब्रिगेड के अधीन थी। नवीनतम हथियारों और गोला-बारूद से लैस और लगभग तीन वर्षों से युद्ध की तैयारी कर रहे चीनी सैनिकों ने भारतीय सैनिकों का बेरहमी से नरसंहार किया। भारतीय सैनिकों द्वारा इस्तेमाल की जा रही द्वितीय विश्व युद्ध की पुरानी सिंगल-शॉट राइफलें चीनी सैनिकों की स्वचालित राइफलों के सामने टिक नहीं पाईं। भारतीय सैनिकों के पास सर्दियों के लिए उचित वस्त्र भी नहीं थे, जबकि चीनी सेना युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार थी। अपनी पहली जीत के बाद, चीनी सेना भारतीय क्षेत्र में घुस गई और उस स्थान तक मार्च किया जहाँ जोगिंदर सिंह और उनके साथियों ने अपनी चौकी स्थापित की थी। वे नदी के दूसरे किनारे पर इकट्ठा होने लगे और खाइयाँ खोदने लगे। नदी लगभग ढाई फुट गहरी थी और यदि वे चाहते तो सैनिक आसानी से पार कर सकते थे। जैसे-जैसे चीनी सेना की संख्या बढ़ती गई और उनके बंकर मजबूत होते गए, जोगिंदर सिंह और उनके साथी असहज महसूस करने लगे। काला के अनुसार, जब उन्होंने अपने और अपनी पलटन के लिए आदेश मांगे, तो उन्हें बताया गया, 'तुम आखिरी गोली तक वहीं डटे रहोगे और लड़ोगे।' आप आखिरी गोली तक लड़ेंगे।'

उन सैनिकों ने साहस के साथ इसे स्वीकार कर लिया था और युद्ध के लिए मानसिक रूप से खुद को तैयार कर लिया था। हर सुबह वे जागते ही चीनी पक्ष में कोई न कोई हलचल देख लेते थे; दिन भर वे घर और प्रियजनों की यादें साझा करते और रात को बेचैनी से सोते, किसी भी क्षण हमले की आशंका में।

काला उस खाई में था जो लंगर (रसोईघर) का काम करती थी। यह पहाड़ी की ऊँचाई पर थी और बाकी पलटन से कुछ दूरी पर थी। इसके बगल में एक लकड़ी की झोपड़ी में राशन और भंडार रखा था; काला वहाँ सामान का जायज़ा लेने गया था ताकि कमी होने पर रेडियो से ऑर्डर दिया जा सके। सैनिकों को मांस और ताज़ी सब्ज़ियाँ जैसे फूलगोभी और आलू नियमित रूप से मिल रहे थे, उन्हें दाल भी भरपूर मात्रा में मिल रही थी, लेकिन तनाव बढ़ने के बाद से दूध आना बंद हो गया था। जवान चाय में चम्मच भर दूध मिलाकर पी रहे थे। काला याद करते हुए बताते हैं, “गाढ़ा दूध पंजाब में घर पर स्थित वेरका डेयरी से एक-एक पाउंड के डिब्बों में आता था। कभी-कभी हम उसमें गर्म पानी मिलाकर उसे दूध की तरह पीते थे। मुझे आज भी वह डिब्बा याद है जिस पर एक महिला की तस्वीर बनी होती थी; वह इतना मीठा होता था कि हमें कभी चीनी डालने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी।” अक्सर दोपहर में जोगिंदर सिंह रसोईघर में आकर काला से उस युद्ध में अपनी जान गंवाने की संभावना के बारे में बात करते, जो उनकी सेवानिवृत्ति से ठीक एक साल पहले हो सकता था। ‘लेकिन हम इससे भाग नहीं सकते, काले। हम अपने परिवार को क्या चेहरा दिखाएंगे? कहेंगे गद्दार आ गए। हमें जीवन भर गद्दार कहा जाएगा,’ वे कहते और काला उनसे सहमत हो जाता। फिर दोनों पलटन में साथ बिताए समय की यादों में खो जाते। अपने जीवन के अंतिम युद्ध से एक शाम पहले जोगिंदर सिंह ने अपने सहायक को भंडार से रम की बोतल लाने भेजा था। ‘साहब ने मुझे रम की बोतल लाने को कहा है। उन्होंने कहा: “कल दिन चढ़े, ना चढ़े, हम जिंदा बचें या ना बचें, एक बोतल रम पड़ी है, पी लें उसे (हम अगली सुबह तक जीवित रहें या न रहें, रम की एक बोतल बची है, मुझे इसे खत्म करने दो)’
Kala had handed over the bottle. ‘Maine bhej di thi. Shayad pee li hogi (I sent it. He must have drunk it),’ he says.
अगली सुबह चीन ने हमला कर दिया।

23 अक्टूबर 1962, सुबह 5:30 बजे। चीनी हमले की पहली लहर उस समय आती है जब कुछ ही मिनट पहले लंगरी या रसोइया बहादुर सिंह पलटन के लिए ताजी बनी हुई गरमागरम चाय से भरे थर्मस लेकर रसोईघर से निकलता है।
सूबेदार काला सिंह को गोलीबारी की आवाज़ सुनाई नहीं देती क्योंकि सैनिकों की खाइयाँ पहाड़ी की चोटी पर काफी नीचे बनी हुई हैं। लेकिन बाकी सैनिक अपनी तोपों की ओर बढ़ जाते हैं क्योंकि चीनी सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी नदी पार करने लगती है, उनके खुरदुरे जूते पानी पर छपछपाते हुए आगे बढ़ते हैं। वे सैकड़ों की संख्या में लहरों की तरह आते हैं।
अपने निडर कमांडर के नेतृत्व में, प्रथम सिख रेजिमेंट के वीर जवान अपनी जगह पर डटे रहे और पहले हमले का बहादुरी से सामना किया। अपनी खाइयों से उन्होंने दुश्मन सैनिकों पर हमला किया, उन्हें अपनी राइफलों के निशाने पर लेकर उनके सिर और दिल में गोलियां दागीं।
पहला हमला सफलतापूर्वक विफल कर दिया गया। भारी हताहतों के कारण दुश्मन कुछ समय के लिए रुक गया। हालांकि, आधे घंटे के भीतर ही उन्होंने और सैनिकों के साथ दूसरा हमला कर दिया। युद्धघोष गूंज उठे और जोगिंदर सिंह ने अपने शब्दों और कार्यों से अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाया। शेर की तरह दहाड़ते हुए, उन्होंने मोर्चा संभाले रखा और अपने सैनिकों से गोलियों का सटीक और तेज़ी से इस्तेमाल करने का आग्रह किया। उनकी जांघ में गोली लगी, लेकिन अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाते हुए उन्होंने वहां से हटने से इनकार कर दिया। संख्या में पूरी तरह से कम होने के बावजूद, सैनिक दृढ़ता से अपनी स्थिति पर डटे रहे और एक इंच भी पीछे नहीं हटे।
इसी बीच, कंपनी के डाकघर से भी संपर्क टूट गया है।
गोला-बारूद की कमी हो रही है; सिखों के पास मौजूद पुरानी, एक गोली वाली राइफलें चीनियों के परिष्कृत हथियारों का मुकाबला नहीं कर सकतीं, लेकिन फिर भी वे चौकी पर कब्जा नहीं कर पा रहे हैं।
तो, उन्होंने हमले की तीसरी लहर शुरू की। तब तक प्लाटून के लगभग आधे जवान मारे जा चुके थे और गोला-बारूद बहुत कम बचा था। अपनी चोट के बावजूद,

जोगिंदर सिंह ने खुद एक हल्की मशीनगन संभाली और दुश्मन के जितने सैनिकों को मार गिरा सके, मार गिराया। जल्द ही, जवानों का गोला-बारूद पूरी तरह खत्म हो गया।
चीनी सेना अब भी उन पर हमला कर रही है। जब मृत्यु निकट आ जाती है, तो जोगिंदर सिंह सैनिकों से कहता है कि अब आत्म-सिद्धि का समय आ गया है। वे अपनी तोपों पर संगीनें कसते हैं, अपनी खाइयों से बाहर निकलते हैं और 'बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' के नारे लगाते हुए हमलावर दुश्मन सैनिकों की ओर दौड़ पड़ते हैं।
संख्या में बहुत कम होने के बावजूद, इन साहसी सिख योद्धाओं के साहस को देखकर चीनी स्तब्ध रह गए, जिनके लंबे दाढ़ी और पगड़ी थे। उन्होंने पहले कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा था।
दुबले-पतले और फुर्तीले जोगिंदर सिंह के नेतृत्व में बचे हुए सैनिक चीनी सेना की टुकड़ियों पर सीधे हमला कर देते हैं। चारों ओर सैनिकों की चीखें और गालियां गूंज रही हैं। चीनी सैनिक लगातार गोलियां बरसाते हुए उन पर टूट पड़ते हैं, लेकिन कोई भी सिख भागने या छिपने की कोशिश नहीं करता। जोगिंदर सिंह से प्रेरणा लेकर वे आगे बढ़ते हैं और दुश्मन की गोलीबारी में गिरने से पहले जितने हो सके उतने सैनिकों को संगीनों से मार गिराते हैं। अंततः, हर एक सैनिक गिर पड़ता है।
उस शाम जैसे ही सूरज ढलता है, बहादुर सिख सिपाही जोगिंदर सिंह, जो अपनी चोटों से अपंग हो चुके थे, बुम ला पर्वतमाला पर लेटे हुए थे, धीरे-धीरे गिरती बर्फ उनके शरीर को ढक रही थी। लेकिन जोगिंदर सिंह की मृत्यु वहीं नहीं हुई। उन्हें चीनी सैनिक अपने साथ ले गए, जो अगले दिन खच्चरों पर सवार होकर वापस आए। उनकी मृत्यु कैद में हुई। उनका शव कभी वापस नहीं लौटाया गया।
जब चीनियों को रेडियो पर पता चलता है कि भारतीय सरकार सूबेदार जोगिंदर सिंह को पीवीसी (पुलिस रैंक) प्रदान कर रही है, तो वे श्रद्धापूर्वक उनकी अस्थियां लौटा देते हैं। सूबेदार काला सिंह अस्थियां लेकर सूबेदार जोगिंदर सिंह के गांव जाते हैं और उनकी पत्नी को सौंप देते हैं। उन्हें पता चलता है कि पिता के बलिदान की खबर सुनकर बहादुर जेसीओ की बेटी सदमे से मर गई थी।

अगर जोगिंदर सिंह युद्ध में शहीद न हुए होते, तो एक साल के भीतर ही वे अपनी वर्दी उतारकर पंजाब के मोगा के पास स्थित अपने धूप से सराबोर गांव में अपनी पत्नी और बच्चों के पास लौट जाते, जहां उन्हें 116 रुपये की मासिक पेंशन मिलती। शायद वे अब भी वहां गेहूं की खेती कर रहे होते और अपने पोते- पोतियों को युद्ध की कहानियां सुना रहे होते, उस दिन की जब चीनियों ने बुम ला के पास एक बर्फीली पहाड़ी पर उनकी पलटन पर हमला किया था।

काला को जोगिंदर साहब की कई यादें हैं। उन्हें याद है कि वे एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वे आम तौर पर पंजाबी बोलते थे, लेकिन गुस्सा आने पर उर्दू बोलने लगते थे। वे अपने अधीन जवानों को डांटने या वरिष्ठ अधिकारियों के सामने डटकर खड़े होने में जरा भी संकोच नहीं करते थे। 1959 में जयपुर में हुई एक घटना को याद करते हुए काला हंसते हुए कहते हैं, 'कड़क ज्यादा था साहब (सर बहुत सख्त थे)'।
वे बताते हैं कि माहौल में काफी उत्साह था, क्योंकि महारानी एलिजाबेथ आने वाली थीं। सूबेदार जोगिंदर सिंह परेड के प्रभारी थे और उन्होंने अपने अधीन 90 जवानों से कड़ा अभ्यास करवाया था। एक ऐसे ही कड़े अभ्यास के बाद उन्होंने 10 मिनट का विश्राम दिया। जवान खुशी-खुशी कतारें तोड़कर इधर-उधर चले गए, लेकिन जोगिंदर सिंह को बहुत गुस्सा आया क्योंकि वे वापस आने में देर कर रहे थे। उन्होंने जवानों से कहा, 'तुम्हें विश्राम दिया गया था और तुम्हें दौड़ते हुए वापस आना चाहिए था।' फिर उन्होंने दूर एक पेड़ की ओर इशारा किया। 'सब उसके बाएँ से जाएँगे और दाएँ से आएँगे,' उन्होंने चिल्लाकर कहा और जवानों को सजा के तौर पर दौड़ा दिया।
पेड़ के चारों ओर घूमते हुए, एक सिपाही बैंड द्वारा छोड़े गए ढोल के पास से गुजरा और उसे बजाने से खुद को रोक नहीं पाया। जब जोगिंदर साहब ने ढोल की आवाज सुनी तो वे बेहद क्रोधित हो गए और दोषी को कबूल करने को कहा। किसी ने भी कबूल नहीं किया। इससे उनका गुस्सा और बढ़ गया और उन्होंने सभी जवानों को अपने हथियार जमीन पर रखने और पेट और कोहनियों के बल रेंगने का आदेश दिया। गुरशरण सिंह, जो एक फुटबॉलर थे, को मुख्य संदिग्ध माना जा रहा था,

लेकिन उन्होंने कबूल करने से इनकार कर दिया और कहा कि अगर उनका भेद खुल गया तो जोगिंदर साहब उन्हें जो सजा देंगे उससे वे बहुत डरे हुए हैं!
इसी दौरान एक और घटना घटी, जब रसोईघर का निरीक्षण कर रहे एक अधिकारी ने ड्यूटी पर तैनात कुछ जवानों को निर्धारित लंबाई से अधिक लंबे नाखून लिए हुए पाया। जोगिंदर साहब को बुलाया गया और उन्हें फटकार लगाई गई। उन्होंने अधिकारी को समझाने की कोशिश की कि परेड की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर थी, इसलिए वे दोनों कामों के लिए समय नहीं निकाल पा रहे थे। इससे अधिकारी और भी क्रोधित हो गए और मुट्ठी भर रेत उठाकर उस पर फूँक मारते हुए बोले: 'तुझे रेत की तरह उड़ा दूँगा'।
जोगिंदर सिंह ने अधिकारी की आंखों में आंखें डालकर आसमान की ओर उंगली उठाई और फिर उसकी नोक अपने माथे पर रखकर कहा: 'जब तक वो नहीं चाहे आप मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते (जब तक ईश्वर न चाहे तब तक आप मुझे नुकसान नहीं पहुंचा सकते)'।
अधिकारी गुस्से में वहां से चले गए, लेकिन जल्द ही उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने एक गौरवशाली, अनुभवी सैनिक का अपमान किया है। उन्होंने अगले दिन जोगिंदर सिंह को अपने कार्यालय में बुलाया; दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया और झगड़े को भूल जाने का वादा किया।

जोगिंदर सिंह का जन्म 28 सितंबर 1921 को पंजाब के मोगा के पास महाकलां गांव में हुआ था। उनके माता-पिता आर्थिक रूप से संपन्न नहीं थे और उन्हें अच्छी शिक्षा दिलाने में असमर्थ थे। परिणामस्वरूप, वे स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं कर सके और सेना में भर्ती होने का निर्णय लिया।
उन्हें प्रथम सिख रेजिमेंट में भर्ती किया गया और उन्होंने पेशेवर परीक्षा उत्तीर्ण करके और यूनिट प्रशिक्षक बनकर शिक्षा प्राप्त करने की अपनी इच्छा पूरी की। वे अत्यंत अनुशासित थे और अपने अधीन सैनिकों में सम्मान की भावना पैदा करते थे। जब वे लगभग 30 वर्ष के थे, तब उनका विवाह हुआ और उनके एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।

जोगिंदर सिंह ने एक शर्मनाक रूप से असमान लड़ाई लड़ते हुए अपनी जान गंवाई, जिसमें उनकी सरकार ने उन्हें धकेल दिया था, वे पूरी तरह से अप्रस्तुत और असंसाधनहीन थे, लेकिन वे अपने वीरतापूर्ण कार्य के लिए देश के इतिहास में अमर हो गए हैं।

यह कहानी सूबेदार (सेवानिवृत्त) काला सिंह की यादों से पुनर्निर्मित की गई है।

Shaitan Singh

फरवरी 1963 का महीना है। चीन के साथ युद्ध समाप्त होने के कुछ महीनों बाद, लद्दाख का एक चरवाहा, जो निर्जन क्षेत्र में अपने पशुओं को चरा रहा था, संयोगवश चुशुल के रेजांग ला पहुँच जाता है। चारों ओर बिखरे हुए नष्ट हुए बंकर, खाली गोले और इस्तेमाल किए गए कारतूस उसे बताते हैं कि वह संघर्ष स्थल पर आ गया है। तभी उसकी नज़र शवों पर पड़ती है। ये वर्दीधारी मृत सैनिकों के शव हैं, कुछ अभी भी अपने हथियार पकड़े हुए हैं, उनके चेहरे दर्द से विकृत हैं। अत्यधिक ठंड ने उन्हें उस क्षण में संरक्षित कर दिया है जब मृत्यु ने उन्हें अपने शिकंजे में लिया। उनकी खाली आँखें अंतरिक्ष और समय में घूरती हुई, अपने अंतिम क्षणों की मूक गवाह हैं। ये मृत पुरुष उस भयानक नरसंहार की कहानी बयां करते हैं जो उन पर बीता था। भय से स्तब्ध चरवाहा दौड़कर पास की भारतीय सेना की चौकी को सूचना देता है।
प्रेस सूचना ब्यूरो के अधिकारियों के साथ, 13 कुमाऊं रेजिमेंट के जवान एक दल को भेजते हैं, जो अपने साथियों को पहचान लेते हैं। ये शव 13 कुमाऊं रेजिमेंट की चार्ली कंपनी के सैनिकों के हैं, जिसकी कमान मेजर शैतान सिंह के पास थी और जो 18 नवंबर 1962 को रेजांग ला की लड़ाई में चीनियों द्वारा लगभग पूरी तरह से नष्ट हो गई थी। उन्हें जितने भी सैनिक मिले, वे सभी कई गोलियों के घावों, गोले के घावों या छर्रों से मृत थे। कुछ अपने बंकरों में पत्थरों के नीचे दबे हुए मृत पड़े थे, जबकि अन्य अभी भी क्षतिग्रस्त राइफलों के बट पकड़े हुए थे। नर्सिंग सहायक के हाथ में एक सिरिंज और पट्टी का एक रोल था, जबकि मोर्टार चलाने वाले सैनिक के हाथ में एक बम था।
मेजर शैतान सिंह एक चट्टान के पास लेटे हुए हैं, उनके बाएं हाथ पर खून से सनी पट्टी बंधी है और मशीन गन की गोलीबारी से उनका पेट बुरी तरह फट गया है। युद्ध में माहिर ब्रिगेडियर टी. एन. रैना, 114 इन्फैंट्री ब्रिगेड के कमांडर, इतने भावुक हो जाते हैं कि वे रोने लगते हैं। हर जवान को आखिरी गोली तक लड़ने का आदेश उन्होंने ही दिया था।
सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि किसी भी जवान की पीठ में गोली नहीं लगी। इसका मतलब है कि किसी ने भी भागने की कोशिश नहीं की। मेजर शैतान सिंह के पार्थिव शरीर को जोधपुर वापस भेज दिया गया, जबकि रेजांग ला के अन्य वीरों का अंतिम

संस्कार पूरे सैन्य सम्मान के साथ हाई ग्राउंड में किया गया, जहाँ युद्ध के समय बटालियन मुख्यालय हुआ करता था। सामूहिक चिताएं जलाई गईं। बाद में 13 कुमाऊं को रेजांग ला युद्ध सम्मान और लद्दाख 1962 रंगमंच सम्मान से सम्मानित किया गया। ये नाम सैनिकों की नई पीढ़ियों को मेजर शैतान सिंह और उनके उन बहादुर जवानों की कहानी की याद दिलाते रहते हैं, जिन्होंने अपने देश की रक्षा करते हुए अपनी जान गंवाई। बाद में सी कंपनी का पुनः गठन किया गया और सेना मुख्यालय द्वारा इसे रेजांग ला कंपनी नामित किया गया।

रेजांग ला में तैनात 124 सैनिकों में से 113 युद्ध में शहीद हो गए। पाँच को युद्धबंदी बना लिया गया, जिनमें से एक की हिरासत में मृत्यु हो गई। केवल छह जीवित सैनिक ही अपने बटालियन में वापस लौट सके, जिनमें से दो दिल्ली से लगभग 80 किलोमीटर दूर हरियाणा के रेवाड़ी में रहते हैं।
सूबेदार (मानद कप्तान) राम चंदर और हवलदार निहाल सिंह, सेना पदक से सम्मानित, दोनों 74 वर्ष के हैं और कुमाऊंनी रेजिमेंट की हरी-पीली धारीदार टाई पहने हुए हैं। वे रेवाड़ी के रेजांग ला स्मारक पर मुझसे मिले। चूंकि 13 कुमाऊं एक अखिल अहीर पलटन थी, इसलिए रेजांग ला में शहीद होने वाले अधिकांश सैनिक उसी क्षेत्र के गांवों से थे, और यह स्मारक, जिसमें उस स्थान की मिट्टी रखी गई है जहां उन्होंने अपनी अंतिम लड़ाई लड़ी थी, उन्हीं को समर्पित है।
राम चंदर मेजर शैतान सिंह के रेडियो ऑपरेटर थे और उन्हें जीवित देखने वाले अंतिम लोगों में से एक थे। निहाल लाइट मशीन गन (एलएमजी) पर तैनात थे; उन्होंने अपनी कमीज़ की आस्तीन ऊपर करके मुझे दुश्मन की गोलियों के भयानक निशान दिखाए जो उनकी बांहों में तब लगे थे जब वे अपनी बंदूक को दाएं-बाएं घुमा रहे थे। अपनी खाई में वही अकेले जीवित बचे थे।
इन्हीं लोगों से मैंने मेजर शैतान सिंह और सी कंपनी, 13 कुमाऊं के वीर अहीरों की अद्भुत कहानी सुनी है।

रेज़ांग ला
अक्टूबर 1962
जब लद्दाख में चीनी हमले का खतरा मंडराने लगा, तो 114 इन्फैंट्री ब्रिगेड के तहत 13 कुमाऊं बटालियन को वहां भेजा गया। इस ब्रिगेड को चुशुल की रक्षा का जिम्मा सौंपा गया था। बटालियन 2 अक्टूबर को लेह पहुंची और लगभग दस दिन बाद उन्हें चुशुल भेज दिया गया। सी कंपनी को चुशुल गांव से लगभग 30 किलोमीटर दक्षिण में स्थित रेजांग ला दर्रे पर चौकियां स्थापित करने का निर्देश दिया गया था। यह उन रास्तों में से एक था जहां से दुश्मन के हमले की आशंका थी। सी कंपनी का प्रशासनिक अड्डा बटालियन मुख्यालय से लगभग 10 किलोमीटर दूर था और मेजर शैतान सिंह और उनकी 124 जवानों की टुकड़ी को दर्रे तक पहुंचने में तीन घंटे लगे। उन्होंने अपना भारी सामान स्थानीय लद्दाखियों से किराए पर लिए गए याक और टट्टुओं पर लादा। अधिकांश जवान हरियाणा के थे और उन्होंने पहले कभी बर्फ नहीं देखी थी। अब, अचानक ही, वे 16,420 फीट की ऊंचाई पर जमा देने वाली ठंड में पहुंच गए। उन्हें जम्मू- कश्मीर के बारामूला से लाया गया था और उन्हें वहां के वातावरण के अनुकूल ढलने का मुश्किल से ही समय मिला था।
मेजर शैतान सिंह ने अपने जवानों को पहाड़ी की अग्रिम ढलानों पर तैनात किया — जेमादार सुरजा सिंह के नेतृत्व में नंबर 7 प्लाटून उत्तरी किनारे पर थी; जेमादार हरि राम के नेतृत्व में 8 प्लाटून दर्रे वाले क्षेत्र में थी; और केंद्रीय चौकी जेमादार राम चंदर के नेतृत्व में 9 प्लाटून के पास थी, जिसके बगल में कंपनी मुख्यालय था। नायक राम कुमार यादव के नेतृत्व में मोर्टार सेक्शन पिछली ढलान पर था।
जब सैनिक बंकर खोद रहे थे और रेत की बोरियों का इस्तेमाल करके रक्षात्मक संरचनाएं बना रहे थे, तब उनके पास कठोर, ठंडी हवाओं से बचने के लिए केवल 40 पाउंडर के तंबू ही थे। प्रत्येक प्लाटून में लगभग 25 सैनिक थे। उनमें से प्रत्येक को पता था कि 24 अक्टूबर को बटालियन कमांडर द्वारा जारी आदेशों में कहा गया था कि यदि चीनी हमला करते हैं तो सभी उप-इकाइयों को अंतिम सैनिक और अंतिम गोली तक लड़ना होगा।
राम चंदर बताते हैं, “मौसम बेहद खराब था; हमारे पास सर्दियों के लिए ठीक से कपड़े या जूते नहीं थे। हमें जो जर्सी, सूती पतलून और हल्का कोट दिया गया

था, उससे उन बर्फीली हवाओं में हमें मुश्किल से ही गर्मी मिल पा रही थी। सैनिकों को भयानक सिरदर्द हो जाता था और नर्सिंग सहायक धर्म पाल दहिया एक चौकी से दूसरी चौकी जाकर दवाइयां बांटते थे।” शांत और मृदुभाषी मेजर शैतान सिंह अपने जवानों के साथ इस कठिन परिस्थिति का सामना करते रहे। रेडियो ऑपरेटर के रूप में, राम चंदर का काम विभिन्न प्लाटूनों के बीच संचार स्थापित करना था। वे कहते हैं, “जब भी हमें फुर्सत मिलती, हम सब साथ बैठकर ऑल इंडिया रेडियो सुनते थे। हमें पता चलता था कि चीनी सेना किन चौकियों पर हमला कर रही है और कैसे हमारे जवानों का नरसंहार कर रही है। हमारा खून खौल उठता था। हम उन्हें सबक सिखाने के लिए बेताब थे। हम साहब से कहते थे, “हमें मौका मिलेगा तो हम जमकर लड़ेंगे”, और वे बस मुस्कुरा देते थे।”
रेजांग ला की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि यह भारतीय तोपखाने की गोलाबारी की चपेट में था और आसपास की पहाड़ियों के कारण इसे तोपखाने से कोई सहायता नहीं मिल पा रही थी। इस प्रकार सी कंपनी के जवान पूरी तरह से अलग-थलग पड़ गए थे और उनके पास द्वितीय विश्व युद्ध के समय की पुरानी.303 सिंगल एक्शन राइफलें थीं, जबकि चीनियों के पास आधुनिक स्वचालित राइफलें थीं। उन्हें अंतरराष्ट्रीय सीमा पर गश्त न करने का आदेश भी दिया गया था, इसलिए उनकी सभी गश्तें उनके स्थान से 400 गज के दायरे तक ही सीमित थीं।

रेजांग ला की लड़ाई
18 नवंबर 1962 रविवार का दिन है। सामान्य से अधिक ठंड है और रेजांग ला पर हल्की बर्फबारी हो रही है।
सुबह करीब साढ़े तीन बजे, सन्नाटे में एलएमजी की तेज आवाज गूंज उठी। मेजर शैतान सिंह ने राम चंदर से रेडियो चालू करने को कहा। 8 वीं प्लाटून के जमादार हरि राम ने बताया कि दुश्मन ने करीब दस जवानों के साथ उनके निगरानी चौकी पर हमला करने की कोशिश की, लेकिन उन्हें देख लिया गया। 8 वीं प्लाटून ने नालों से बाहर आ रहे चीनी सैनिकों पर एलएमजी से गोलीबारी की और उनमें से अधिकतर को मार गिराया, जबकि बचे हुए सैनिक भाग गए।

‘शाबाश! चौकस रहिए,’ मेजर ने कहा। दुश्मन के और हमलों की आशंका जताते हुए उन्होंने गश्ती दल को 7 वीं और 9 वीं प्लाटून के बीच की गलियों की जाँच करने का आदेश दिया।
गश्ती दल लौटकर रिपोर्ट करता है कि इन घाटियों में चीनी सैनिकों की भरमार है। एलएमजी और मोर्टार तैनात कर दिए गए हैं। 7 वीं प्लाटून के जमादार सुरजा राम ने बताया कि लगभग 400 दुश्मन सैनिक अपनी चौकी की ओर चढ़ रहे हैं। उन्होंने अपने कंपनी कमांडर से कहा, 'बर्फ के बीच से हम उन्हें साफ देख सकते हैं।'
मेजर शैतान सिंह ने आदेश दिया कि जैसे ही दुश्मन सैनिक गोलीबारी की सीमा में आएं, उन पर गोली चला दी जाए। जब दुश्मन सैनिक 250 गज दूर थे, तब 7 वीं प्लाटून ने गोलीबारी शुरू कर दी। उनकी तीनों एलएमजी चार मिनट तक लगातार चलती रहीं। उन्होंने सूचना दी कि दुश्मन का हमला विफल कर दिया गया है। तभी, 8 वीं प्लाटून ने सूचना दी कि उनके पास की पहाड़ी से 800 दुश्मन सैनिक आ रहे हैं। मेजर ने जमादार हरि से कहा, 'आप वीर अहीर हैं, पूरे जोश से लड़िए।' जमादार हरि ने बहादुरी से जवाब दिया, 'आप चिंता ही मत करिए साहब, हम लड़ेंगे।'
प्लाटून ने गोलीबारी शुरू की और हमला नाकाम कर दिया गया। मेजर शैतान सिंह ने नाले में मोर्टार दागने का आदेश दिया; जमादार हरि राम ने सलाह दी: 'साहब, उस नाले में और गोलीबारी मत करो; वह मरे हुए चीनी सैनिकों से भरा पड़ा है।' अपने सभी प्रत्यक्ष हमलों के विफल होने के बाद, चीनी सेना ने तुरंत अपनी योजना बदल दी। सुबह लगभग 4:30 बजे, उन्होंने एक साथ सभी चौकियों पर गोलाबारी शुरू कर दी। बाद में बरामद किए गए बमों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने तीन प्रकार के मोर्टार का इस्तेमाल किया: 120 मिमी, 81 मिमी और 60 मिमी। बंकरों को नष्ट करने के लिए, उन्होंने 75 मिमी और 57 मिमी रिकॉइललेस (आरसीएल) तोपों का इस्तेमाल किया, जिन्हें वे ठेले पर लादकर लाए थे। ठोस चट्टान में मिले चार फुट गहरे गड्ढे यह संकेत देते हैं कि उन्होंने 132 मिमी रॉकेटों का भी इस्तेमाल किया। राम चंद्र कहते हैं, 'यह इतना भीषण हमला था कि कोई किसी की मदद नहीं कर सका। शोर के कारण हम एक-दूसरे की आवाज नहीं सुन पा रहे थे; गोले आते ही हमारे बंकरों को उड़ा ले गए। हमारे मुख्य सैनिकों में से एक का सिर और दूसरे के पैर उड़ गए। लकड़ी

के तख्ते चूर-चूर हो गए और रेत की बोरियां छलनी हो गईं। यह सब 15 मिनट में खत्म हो गया और चारों ओर मौत और तबाही का मंजर था।'
बमबारी रुकने पर, बचे हुए सैनिकों ने पहाड़ी की चोटी पर याक और घोड़े देखे। कंपनी हवलदार मेजर (सीएचएम) हरफुल सिंह को पहले लगा कि अल्फा कंपनी उनकी मदद के लिए आ रही है, लेकिन दूरबीन से देखने पर उन्हें एहसास हुआ कि चीनी सेना 8 वीं प्लाटून पर हमला करने के लिए अतिरिक्त सैनिक लेकर आ रही है। उसी समय, 7 वीं प्लाटून ने सूचना दी कि लगभग 700 दुश्मन सैनिक उनकी चौकी की ओर चढ़ रहे हैं।
मेजर शैतान सिंह, जो गोले की चपेट में आ गए थे और उनके बाएं हाथ पर पट्टी बंधी थी, एक-एक जवान के पास दौड़कर उनका हौसला बढ़ा रहे थे। उन्होंने घायल जवानों को प्राथमिक उपचार लेने और लड़ने के लिए तैयार रहने को कहा। राम चंद्र याद करते हैं, “हमारे सभी बंकर नष्ट हो गए थे, हमारे जवान घायल और मृत थे, हमारा गोला-बारूद खत्म हो रहा था, ठंड से उंगलियां जम जाने के कारण कई जवान अपनी.303 राइफलें भी नहीं उठा पा रहे थे, लेकिन मेजर साहब ने हिम्मत नहीं हारी। वे शांत खड़े रहे और जवानों को निर्देश देते रहे, उन्हें बहादुर बनने और लड़ते रहने को कहते रहे।”
निहाल सिंह अपने साथी राम मेहर सिंह के साथ कंपनी मुख्यालय में एलएमजी पर तैनात हैं। राम मेहर को एक गोला लगता है और वह गिर पड़ते हैं। खाई में अकेले रह जाने और किसी से संपर्क न कर पाने के कारण, निहाल तब तक फायरिंग करते रहते हैं जब तक उन्हें गोली नहीं लग जाती। वह किसी तरह अपनी एलएमजी के पुर्जे अलग कर लेते हैं ताकि वह दुश्मन के हाथ न लगे। उनके पास ग्रेनेड तो हैं, लेकिन उनके हाथों में इतनी ताकत नहीं है कि वे पिन निकाल कर फेंक सकें। अंत में, दुश्मन सैनिक उन्हें खाई से खींचकर ले जाते हैं।
मेजर शैतान सिंह पहाड़ी की चोटी पर थे जब एक मध्यम मशीन गन की बौछार उनके पेट में लगी। इससे राम चंदर का रेडियो सेट भी जल गया और वे बाकी सभी से पूरी तरह कट गए। सीएचएम हरफुल सिंह ने एक एलएमजी उठाई और मेजर शैतान सिंह को गोली मारने वाले दुश्मन सैनिक को मार गिराया। उन पर आरसीएल की गोलीबारी हुई और वे गिर पड़े। अपनी अंतिम सांस लेते हुए उन्होंने राम चंदर से कहा, 'मेजर साहब को दुश्मन के हाथों में मत पड़ने देना।'
मेजर शैतान सिंह का खून बह रहा है और वे बार-बार बेहोश हो रहे हैं। पेट में तेज दर्द होने के कारण वे राम चंदर से बार-बार बेल्ट खोलने को कह रहे हैं।

राम चंदर ने उनकी कमीज के अंदर हाथ डालकर देखा तो उनकी आंतें बाहर निकली हुई थीं। उन्होंने कहा, 'मैंने बेल्ट नहीं खोली क्योंकि सब कुछ बाहर गिर जाता।'
राम चंदर उसे कसकर गले लगाता है और उसके साथ खाई में लुढ़क जाता है। फिर, अपने कंपनी कमांडर को पीठ पर लादकर वह 800 मीटर चलता है और एक चट्टान के पास रुककर मेजर को नीचे लिटा देता है। वहाँ उसकी मुलाकात एक अन्य घायल और खून बह रहे सैनिक से होती है। वे दुश्मन की गोलीबारी में फंस जाते हैं। यह समझते हुए कि अगर उन्हें उसे ले जाना पड़ा तो उनके सैनिकों के पास भागने का कोई मौका नहीं होगा, मेजर शैतान सिंह उन्हें आदेश देते हैं कि उसे वहीं छोड़ दें और अपनी जान बचा लें। “वापस जाओ और उन्हें बताओ कि हमने आखिरी दम तक कैसे लड़ाई लड़ी। यह मेरी कंपनी है। मैं यहीं मरना चाहता हूँ। ये आपके लिए आदेश है,” वह दर्द भरी साँसें लेते हुए ज़ोर देकर कहते हैं।
सुबह के 8:15 बज रहे हैं। बर्फ अभी भी गिर रही है और आसमान धुंधला सा धूसर है। अनिच्छा से सैनिक निकल पड़ते हैं। वे किसी तरह क्वार्टर मास्टर के शेड तक पहुंचते हैं, लेकिन उसे जलता हुआ पाते हैं। इसे उनके ही आदमियों ने आग लगा दी है, जिन्हें सब कुछ नष्ट करके चुशुल स्थित बटालियन मुख्यालय लौटने का आदेश मिला था। बचे हुए सैनिक बटालियन तक पहुंचने के लिए छह मील पैदल चलते हैं।
इसी बीच, निहाल उसी रात दुश्मन की कैद से भाग निकलता है और किसी तरह अपनी चौकी पर पहुँच जाता है। वहाँ उसे बिखरे हुए शव मिलते हैं, मानो गुड़िया के टुकड़े हों। मेजर शैतान सिंह का तंबू चकनाचूर हो चुका है। उसके दोस्त चिमन का सिर धड़ से अलग हो गया है। मंडोला गाँव का महेंद्र अपने पैरों को घसीटता हुआ चल रहा है, उसके पैर कुचले हुए हैं।
‘Bhai mujhe bhi le chal (Buddy, take me along),’ Mahender implores him, but Nihal tells him he is helpless since his own arms are useless.
‘मैं महेंद्र की मदद नहीं कर सका,’ वह उदास होकर कहता है।
महेंद्र उससे कहता है, 'ठीक है भाई, फिर तू निकल।' निहाल अपने बटालियन मुख्यालय की ओर वापस जाने के लिए मुड़ जाता है। वह देखता है कि दुश्मन उसे ढूंढने के लिए हवा में रोशनी वाले गोले दाग रहे हैं, लेकिन उसकी सफेद जैकेट गिरती बर्फ में घुलमिल जाती है और वह बिना किसी की नज़र में आए पहाड़ी से नीचे उतरने में कामयाब हो जाता है।

जातर मेजर शैतान सिंह के बारे में बड़े स्नेह से बात करते हैं। वे कहते हैं, “उनका नाम शैतान सिंह था, लेकिन वे मेरे अब तक के सबसे बेहतरीन सज्जनों में से एक थे। वैसे तो वे शांत और शर्मीले स्वभाव के थे, लेकिन युद्ध में वे शेर की तरह थे। जवान उन्हें बहुत प्यार करते थे।” वे याद करते हैं कि कैसे युद्ध से ठीक पाँच महीने पहले शैतान की कंपनी ने बारामूला में रक्षा तैयारी प्रतियोगिता जीती थी। “रेज़ांग ला में उनके पास बहुत सीमित संसाधन थे, टिन की छतें न होने के कारण वे ठीक से छत भी नहीं बना पाए थे और उनकी कंपनी पर पूरी तरह से बमबारी हुई थी। वे खुद को बचा नहीं सकते थे।” जातर एक किस्सा सुनाते हैं कि कैसे शैतान और एक अन्य अधिकारी ट्रेन में थे और संयोग से उनकी मुलाकात एक ज्योतिषी से हुई। उन्होंने मज़ाक में ही अपनी हथेलियाँ पढ़ने को कहा। जातर कहते हैं, “जब ज्योतिषी ने शैतान की हथेली देखी, तो उसने भविष्यवाणी की कि वे महान यश की ओर बढ़ रहे हैं। शायद उसने मृत्यु देखी हो, लेकिन उसने इसका ज़िक्र नहीं किया।”
जिस युद्ध को अधिकतर लोग शर्मनाक मानते हैं, उसमें मेजर शैतान सिंह ने महान गौरव प्राप्त किया। रेज़ांग ला में लड़ने वाली सी कंपनी का हर जवान वीर था। मेजर शैतान सिंह का नाम, जिन्होंने अपने जवानों को इतना प्रेरित किया कि उन्होंने आत्मसमर्पण के बजाय मृत्यु को चुना, भारत के सैन्य इतिहास के पन्नों में अमर रहेगा। उनके अदम्य साहस, नेतृत्व और कर्तव्यनिष्ठा ने उनकी कंपनी को अंतिम जवान तक वीरतापूर्वक लड़ने के लिए प्रेरित किया। शत्रु के सामने इस अदम्य साहस के लिए उन्हें मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया।

शैतान सिंह का जन्म 1 दिसंबर 1924 को राजस्थान के जोधपुर जिले के बानसौर गांव में हुआ था। यह गांव अब शैतान सिंह नगर के नाम से जाना जाता है। वे राजपूतों के भाटी वंश से थे। उनका परिवार सेना में था और वे अपने पिता लेफ्टिनेंट कर्नल हेम सिंह से बहुत प्रेरित थे, जिन्होंने जोधपुर लांसर्स में सेवा की थी और प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में घायल हो गए थे;

उन्हें उनकी वीरता और कर्तव्यनिष्ठा के लिए ओबीई से सम्मानित किया गया था।
शैतान ने जोधपुर के चोपसनी स्थित राजपूत हाई स्कूल में पढ़ाई की। वह शांत और मृदुभाषी लड़का था और खेलों, विशेषकर फुटबॉल में निपुण था। उसने सेना के लिए खेला और डूरंड कप में भी भाग लिया। स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद, वह जोधपुर लांसर्स (घुड़सवार सेना) में शामिल हो गया और जब राज्य सेना का भारतीय सेना में विलय हुआ, तो वह कुमाऊं रेजिमेंट में भर्ती हो गया।

सेना के अधिकारी, जो अपने परिवारों को लद्दाख की चमकीली नीली झील पैंगोंग त्सो में छुट्टियां मनाने लाते हैं, अक्सर चूशुल तक जाने वाले कच्चे रास्ते पर गाड़ी चलाते हुए जंगली घोड़ों (कियांग) के साथ दौड़ लगाते हैं और चरती हुई नीली भेड़ों (नापो) के झुंडों को देखते हैं। वे घास की पत्तियों को कुतरते हुए मरमोट्स को चौंका देते हैं और पथरीले रास्ते पर गाड़ी चलाते हुए रेजांग ला स्मारक तक पहुँच जाते हैं।
यह स्मारक उस स्थान पर बनाया गया है जहाँ सी कंपनी के जवानों का अंतिम संस्कार किया गया था। वहाँ, एक सफेद संगमरमर के ब्लॉक पर, रेजांग ला के शहीदों के नाम और लॉर्ड थॉमस मैकाले की निम्नलिखित पंक्तियाँ अंकित हैं: अपने पूर्वजों की अस्थियों और अपने देवताओं के मंदिरों के लिए, भयानक विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए मरने से बेहतर और क्या हो सकता है?

1965 का दूसरा कश्मीर युद्ध

1965 के संघर्ष को द्वितीय कश्मीर युद्ध के नाम से भी जाना जाता है। पहला युद्ध 1947-48 में लड़ा गया था।
1962 के युद्ध में मिली हार का एक परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान को लगा कि भारत सैन्य रूप से कमजोर है और कश्मीर पर दोबारा कब्ज़ा करने का यह सही समय है। भारत-चीन युद्ध में मिली प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण भारतीय सेना का मनोबल गिरा हुआ था; अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही थी, जवाहरलाल नेहरू का निधन हो चुका था और अगले प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री में अपने पूर्ववर्ती जैसा करिश्मा नहीं था। दूसरी ओर, पाकिस्तान को अमेरिका से मिल रही सहायता पर पूरा भरोसा था। इस सहायता में 200 पैटन टैंक, बमवर्षक विमानों के दो स्क्वाड्रन, सेबर जेट विमानों के चार स्क्वाड्रन और सुपरसोनिक लड़ाकू विमानों का एक स्क्वाड्रन शामिल था। उन्होंने कच्छ के रण में हमला किया, जिसका भारत ने जवाब दिया, लेकिन युद्धविराम समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद यथास्थिति बहाल हो गई।
अगस्त की शुरुआत में, पाकिस्तान ने चुपके से जम्मू और कश्मीर में सेना भेजकर विद्रोह भड़काने की कोशिश शुरू की। इस अभियान को 'ऑपरेशन जिब्राल्टर' नाम दिया गया। इसका उद्देश्य जम्मू और कश्मीर में सेना भेजकर भारतीय शासन के खिलाफ विद्रोह को बढ़ावा देना था। पाकिस्तान का मानना था कि स्थानीय कश्मीरी भारतीय शासन नहीं चाहते और आंदोलन में शामिल हो जाएंगे। पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित और हथियारों से लैस 25,000 से अधिक गुरिल्ला सैनिकों ने स्थानीय लोगों के वेश में नियंत्रण रेखा पार करके कश्मीर में प्रवेश किया।
पाकिस्तान ने चालाकी से इस अशांति को भारतीय शासन के विरुद्ध विद्रोह का नाम दिया और भारत पर हमले की योजना बनाई। 15 अगस्त को भारतीय सेना ने मोर्चा संभाला, गुरिल्ला ठिकानों को नष्ट किया और हाजी पीर जैसे इलाकों पर कब्जा कर लिया। पाकिस्तान ने अखनूर पर कब्जा करने का प्रयास किया लेकिन असफल रहा। 6 सितंबर को भारतीय सेना ने अंतरराष्ट्रीय सीमा पार की और आधिकारिक तौर पर युद्ध की घोषणा कर दी गई।
1965 की सबसे प्रसिद्ध लड़ाई असल उत्तर की लड़ाई थी, जिसका अर्थ है मुंहतोड़ जवाब। खेम करण सेक्टर में एक प्रसिद्ध टैंक युद्ध लड़ा गया, जिसमें पाकिस्तान को भारी नुकसान हुआ। लगभग 75 पाकिस्तानी पैटन टैंक नष्ट हो गए या छोड़ दिए गए, जिन्हें भारतीयों ने युद्ध ट्राफियों के रूप में

प्राप्त किया। वास्तव में, जिस स्थान पर वे छोड़े गए थे, उसे स्थानीय लोगों ने पैटन नगर नाम दिया और यह पाकिस्तान की अपमानजनक पराजय का प्रतीक बन गया। यह वही लड़ाई थी जिसमें 4 ग्रेनेडियर्स के कंपनी क्वार्टर मास्टर अब्दुल हामिद को मरणोपरांत परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया था।
टैंकों की एक और प्रसिद्ध लड़ाई चाविंदा की लड़ाई थी, जिसमें 17 हॉर्स रेजिमेंट के लेफ्टिनेंट कर्नल ए. बी. तारापोर ने अपनी जान गंवाई और उन्हें मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया।
दोनों देशों में भारी जानमाल के नुकसान का कारण बने इस युद्ध का अंत संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप और ताशकंद घोषणापत्र पर हस्ताक्षर के साथ हुआ।

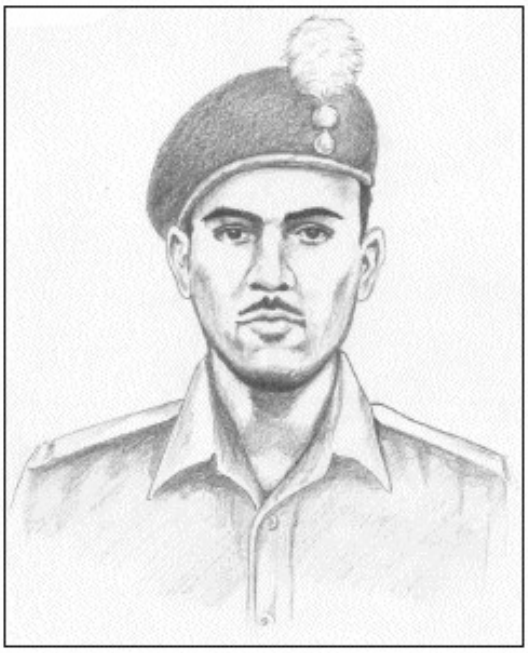

अब्दुल हामिद

मार्च 2014 की बात है। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के धामूपुर गांव में कटाई के लिए तैयार सुनहरे गेहूं के खेतों के बीच एक जर्जर, पुराना मकान खड़ा है। कई साल पहले, यही वह जगह थी जहां अब्दुल हामिद सिलाई मशीन लेकर लोगों के कपड़े सिला करते थे, और उनके बच्चों की चहचहाहट पूरे घर में गूंजती रहती थी।
अब तो उनकी पत्नी रसूलन बीबी भी यहां नहीं रहतीं। खेत खेती के लिए किराए पर दे दिए गए हैं, जबकि हामिद का परिवार तीन किलोमीटर दूर धुलापुर रेलवे स्टेशन के पास शिफ्ट हो गया है। रसूलन बीबी के पोते जमील का कहना है कि वहां से आना-जाना और दादी के लिए दवाइयां लाना आसान है। जमील काम के लिए हर दिन लोकल ट्रेन से वाराणसी जाता है।
जमील का कहना है कि गाजीपुर सिर्फ दो चीजों के लिए मशहूर है: अफीम का कारखाना और उनके दादाजी। छठी कक्षा के छात्र हिंदी साहित्य की किताबों में 'वीर अब्दुल हामिद' (बहादुर अब्दुल हामिद) अध्याय पढ़ते हैं। जब जमील स्कूल में थे, तब उन्होंने भी इसे पढ़ा था और उनका कहना है कि उन्हें बहुत गर्व महसूस हुआ कि शिक्षक उनके दादाजी के बारे में बता रहे थे।
धुलापुर रेलवे स्टेशन वही है जहाँ से हामिद ने 1965 में वाराणसी में अपनी यूनिट में जाने के लिए लोकल ट्रेन पकड़ी थी। उसकी यूनिट खेम करण सेक्टर में तैनात थी। उस शाम कुछ अपशकुन सा आ गया था, जैसा कि रसूलन अक्सर कहती हैं, और उसने अपने पति को जाने से रोकने की पूरी कोशिश की थी। लेकिन उसने हल्की सी मुस्कान के साथ उसकी बात अनसुनी कर दी। उसके लिए सेना हमेशा सर्वोपरि थी।

हामिद अपने घुटने से लिपटे हुए बिस्तर को दबाता है और उसे बांधने वाली मोटी रस्सी में गांठ लगाता है। वह बिस्तर को और कसकर लपेटने के लिए उसे एक और झटका देता है कि अचानक रस्सी टूट जाती है और उसका एक हिस्सा उसके हाथ में रह जाता है। बिस्तर खुल जाता है और उसमें रखी चीजें बिखर जाती हैं।

इनमें एक मफलर भी है जो रसूलन ने अपने पति के लिए पास के एक गांव के मेले से खरीदा था। वह रोने लगती है। वह कहती है, 'यह अपशगुन है, आज मत जाओ।'
हामिद कहता है कि वह रुक नहीं सकता; उसे आदेशों के अनुसार अपनी बटालियन में शामिल होना होगा। उसे चिंता न करने के लिए कहते हुए और यह पूछते हुए कि 'क्या मैं 1962 के युद्ध से सुरक्षित नहीं लौटा था?', वह अपना सामान पैक करने में जुट जाता है।
कुछ देर बाद, वह अपने रिश्तेदारों और दोस्त बाचू सिंह के साथ घर से निकलता है, जो उसका सामान और बैग साइकिल पर लेकर जा रहा होता है; साइकिल की चेन टूट जाती है। गांव वाले इसे एक और बुरा संकेत मानते हैं और उसे रात भर रुकने और अगली सुबह दूसरी ट्रेन पकड़ने के लिए मनाने की कोशिश करते हैं।
लेकिन हामिद नहीं मानता। जब तक वह स्टेशन पहुँचता है, ट्रेन छूट चुकी होती है। फिर भी, हामिद रात की ट्रेन का इंतज़ार करने को कहता है। वह अपने दोस्तों और परिवार को वापस लौटने के लिए कहता है। यही आखिरी बार होगा जब वे उसे देखेंगे।

खेम करण सेक्टर
8 सितंबर 1965, सुबह 9 बजे। खेतों में गन्ने की सरसराहट गूंज रही है और हामिद अपनी जीप की यात्री सीट पर बैठा है, जिस पर रिकॉइललेस (RCL) तोप लगी है, फिर भी उसे हवा की आवाज सुनाई दे रही है। जीप चीमा गांव के आगे एक संकरे कच्चे रास्ते पर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। हामिद जानता है कि पाकिस्तान ने पैटन टैंकों की एक रेजिमेंट के साथ हमला किया है जो अग्रिम पंक्ति में घुस आई है। उसे पहले बख्तरबंद वाहनों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है और फिर कुछ टैंक उसकी बटालियन की ओर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं।
ऊँची फसलों की आड़ में छिपकर, हामिद अपनी बंदूक उनकी ओर तानता है और इंतज़ार करता है। ग्रेनेडियर दुश्मन को आगाह न करने के लिए गोलीबारी रोक देते हैं। जैसे ही टैंक 30 गज की दूरी पर आते हैं, हामिद अपने लोडर को बंदूक लोड करने और गोली चलाने का आदेश देता है। वह गोले को ऊपर उठते और

पहले दुश्मन टैंक की ओर जाते हुए देखता है। जैसे ही वह दूरबीन उठाता है, उसे धमाके की आवाज़ सुनाई देती है। टैंक उसकी आँखों के सामने जल रहा होता है।
हामिद और उसके साथी खुशी से झूम उठे। 'शाबाश!', 'वाह!', उसने कहा और सबने एक-दूसरे के चेहरे पर मुस्कान बिखेर दी। उन्होंने देखा कि पीछे आ रहे दो टैंकों के चालक दल टैंकों से उतरकर भाग रहे हैं। हामिद ने ड्राइवर को पीछे हटने और आगे बढ़ने का आदेश दिया।
सुबह करीब 11:30 बजे बटालियन पर भारी तोपखाने से गोलाबारी शुरू हुई और फिर उन्हें वही जानी-पहचानी गड़गड़ाहट सुनाई दी। हामिद ने दूरबीन निकाली। तीन और टैंक उनकी ओर बढ़ रहे थे। उसने अपनी जीप को खेत के बीचोंबीच छिपा दिया और अपनी तोप को निशाना बनाकर इंतज़ार करने लगा। जैसे ही टैंक गोलीबारी की दूरी पर आया, उसने लोडर को इशारा किया और गोले के प्रक्षेप पथ को देखा। गोला निशाने पर लगा और उसकी आँखों के सामने एक और टैंक जल उठा, जबकि बाकी दो टैंक पाकिस्तानी फिर से छोड़कर भाग गए। दिन के अंत तक, हामिद ने दो टैंक नष्ट कर दिए थे जबकि चार टैंक पाकिस्तानी छोड़कर भाग गए थे।
अब इंजीनियरों से इलाके में टैंक रोधी खदानें बिछाने का आदेश दिया गया है, क्योंकि दुश्मन के टैंक वहीं से आ रहे हैं। वे उपलब्ध समय में यथासंभव सर्वोत्तम प्रयास कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि बटालियन पाकिस्तानी बख्तरबंद बलों के ब्रिगेड-स्तरीय हमले का सामना कर रही है और उनके पास उनसे लड़ने के लिए केवल आरसीएल तोपें ही हैं। लेकिन शुरुआती जीत से उत्साहित सैनिकों को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
अगली सुबह हामिद अपने काम पर लौट आता है और अपनी आरसीएल तोप से दो और टैंक नष्ट कर देता है। बटालियन को पाकिस्तानी सेबर जेट विमानों के हवाई हमले का भी सामना करना पड़ता है, लेकिन इससे ज्यादा नुकसान नहीं होता। दिन के अंत तक, हामिद और उसकी टीम दो और टैंकों को मार गिराती है। यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।
उस रात अब्दुल हामिद चैन से सोए। वे अपनी उपलब्धि से प्रसन्न थे। उनके प्रशस्ति पत्र को परम वीर चक्र (पीवीसी) के लिए भेजा गया था। इसमें चार टैंकों को नष्ट करने का श्रेय उन्हें दिया गया था।
अगले दिन हामिद एक बार फिर युद्ध के मैदान में पहुँच जाता है। वह तीन और टैंक नष्ट कर देगा (जमील के अनुसार, जिसने कुछ साल पहले मारे गए एक जीवित

बचे व्यक्ति से इस लड़ाई के बारे में सुना था)। हालाँकि, यह उसके रिकॉर्ड में दर्ज नहीं होगा क्योंकि उसका प्रशस्ति पत्र पहले ही भेजा जा चुका है। 10 सितंबर 1965
4 ग्रेनेडियर्स पर दुश्मन की भारी गोलाबारी होती है। इसके बाद दुश्मन के टैंकों का एक और हमला होता है। वे तीन-तीन के समूह में आगे बढ़ रहे हैं। हामिद घनी झाड़ियों की आड़ में इंतजार करता है और जैसे ही पहला टैंक पास आता है, वह उसे उड़ा देता है और तुरंत अपने ड्राइवर को वहां से हटने का आदेश देता है। जैसे ही वे हटते हैं, एक टैंक का गोला गिरता है और ठीक उसी जगह फट जाता है जहां वे कुछ मिनट पहले थे।
बहादुर ग्रेनेडियर घनी झाड़ियों के पीछे एक और जगह पर चले गए हैं, जहाँ से वे एक और पैटन जीप पर निशाना साध रहे हैं। वे उसे भी मार गिराते हैं। अब तक गोलाबारी शुरू हो चुकी है। दुश्मन के टैंकों ने जीपों को देख लिया है और उन पर मशीन गन से ताबड़तोड़ फायरिंग कर रहे हैं। हामिद लगातार अपनी स्थिति बदलकर और अपनी जीप को गन्ने की लंबी फसल से छिपाकर उन्हें चकमा दे रहा है। एक और टैंक धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ रहा है, लेकिन उसे हिलने का समय नहीं मिलता क्योंकि दोनों टैंकों ने एक-दूसरे को देख लिया है। दोनों एक-दूसरे को निशाना बनाते हैं और गोली चलाते हैं। दोनों गोले अपने निशाने पर लगते हैं। एक जोरदार धमाका होता है, आग और धुआँ उठता है। टैंक के उड़ जाने के बावजूद, उसका गोला जीप से टकराता है। टक्कर से जीप हवा में उछल जाती है। दर्द भरी चीखें सुनाई देती हैं, एक ज़ोरदार धमाका होता है और फिर चारों ओर सन्नाटा छा जाता है, बस आग की लपटों की चटकने की आवाज़ सुनाई देती है। अब्दुल हामिद की मृत्यु हो गई है। उसने कुल सात दुश्मन टैंकों को नष्ट कर दिया, जो किसी भी बख्तरबंद टुकड़ी के लिए संभव संख्या से कहीं अधिक है। उनकी उल्लेखनीय उपलब्धि, वीरता और साहस के लिए अब्दुल हामिद को मरणोपरांत पीवीसी से सम्मानित किया गया। बटालियन को असल उत्तर युद्ध सम्मान और रंगमंच सम्मान (पंजाब) से नवाजा गया। सैन्य इतिहास में पहली बार, केवल आरसीएल तोपों से लैस एक बटालियन ने एक बख्तरबंद डिवीजन को खदेड़ दिया।

अब्दुल हामिद का जन्म 1 जुलाई 1933 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के धामूपुर गांव में सकीना बेगम और मोहम्मद उस्मान के घर हुआ था। उनके तीन बेटे और दो बेटियां थीं। अब्दुल के पिता पेशे से दर्जी थे और सेना में भर्ती होने का फैसला करने से पहले अब्दुल अक्सर उनके कपड़े सिलने में मदद करते थे।
उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा धमूपुर के बेसिक प्राइमरी स्कूल से शुरू की और देवा के जूनियर हाई स्कूल से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण की। प्रकृति प्रेमी अब्दुल को कुश्ती, तैराकी, शिकार और तलवारबाजी का एक प्रकार, गतका बहुत पसंद था। महज 14 वर्ष की आयु में उनका विवाह रसूलन बीबी से हो गया और उनके पांच बच्चे हुए, एक बेटी और चार बेटे।
अब्दुल एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। उनके पोते जमील एक घटना का वर्णन करते हैं, जिसमें पास के एक गाँव के जमींदार हसीन अहमद, जो एक कुशल निशानेबाज थे, ने उस विशेष पक्षी को मार गिराने वाले को बड़ी राशि का इनाम देने की घोषणा की थी, जिसे अहमद स्वयं नहीं मार पाए थे।
अब्दुल ने अपने मित्र बाचू से बंदूक उधार ली और चिड़िया को मार गिराया, लेकिन इनाम की रकम लेने के लिए जमींदार के पास जाने से इनकार कर दिया। इसके बजाय बाचू वहां गया और जब जमींदार ने अब्दुल को इनाम लेने के लिए बुलाया, तो अब्दुल ने यह कहते हुए मना कर दिया, 'मैं गरीब हो सकता हूं, लेकिन मैं लोगों के घरों में भीख नहीं मांगता।' बाद में जमींदार ने इनाम की रकम उसके घर भिजवा दी।
जब हामिद की वाराणसी में सेना में भर्ती हुई तब उनकी उम्र 20 वर्ष थी। नासिराबाद स्थित ग्रेनेडियर्स रेजिमेंटल सेंटर में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, 1955 में उन्हें 4 ग्रेनेडियर्स में तैनात किया गया। शुरुआत में उन्होंने एक राइफल कंपनी में सेवा की और बाद में उन्हें रिकॉइललेस प्लाटून में तैनात कर दिया गया। उन्होंने 1962 के युद्ध में उत्तर-पूर्वी सीमांत प्रांत के थांग ला में 7 माउंटेन ब्रिगेड, 4 माउंटेन डिवीजन के हिस्से के रूप में लड़ाई लड़ी और युद्ध से निराश होकर लौटे। युद्धविराम की घोषणा के बाद उनकी यूनिट अंबाला चली गई जहाँ अब्दुल को एक प्रशासनिक कंपनी का कंपनी क्वार्टर मास्टर हवलदार (सीक्यूएमएच) नियुक्त किया गया। अप्रैल 1965 में जब पाकिस्तान ने कच्छ के रण क्षेत्र में हमला किया, तो 4 ग्रेनेडियर्स को आगे बढ़ने और निकटतम आयुध डिपो से अपनी 106 आरसीएल तोपें

लाने का आदेश दिया गया। हामिद गैर-कमीशन प्राप्त प्रशिक्षकों में से एक थे। टैंक रोधी टुकड़ी के कमांडरों की अनुपस्थिति के कारण, उन्हें एक टैंक रोधी टुकड़ी का कार्यभार संभालने के लिए कहा गया। एक कुशल निशानेबाज और टैंक रोधी तोप चलाने में माहिर, उनके पास एक नई टैंक रोधी तोप थी, जिससे युद्ध के परिणाम में महत्वपूर्ण बदलाव आया।
हामिद की मृत्यु 10 सितंबर 1965 को हुई। हालाँकि उनके प्रशस्ति पत्र में उन्हें चार शत्रु टैंक नष्ट करने का श्रेय दिया गया है, लेकिन उस समय यूनिट में सेवारत अधिकारियों के अनुसार, उन्होंने वास्तव में तीन और टैंक नष्ट किए थे। चूंकि उनका प्रशस्ति पत्र 9 सितंबर को भेजा गया था, इसलिए उसमें अगले दिन नष्ट किए गए तीन टैंकों को शामिल नहीं किया गया था; सातवें टैंक के साथ अंतिम लड़ाई के दौरान वे शहीद हो गए थे।
टिप्पणी
हामिद ने कितने टैंक नष्ट किए, इस बारे में अस्पष्टता है। लेफ्टिनेंट जनरल हरबख्श सिंह द्वारा लिखित 'वॉर डिस्पैचेस: इंडो-पाक कॉन्फ्लिक्ट 1965' के अनुसार, हामिद ने गन्ने के खेत में अपनी कंपनी की ओर बढ़ते हुए चार टैंक देखे। अपनी जीप को एक टीले के पीछे छिपाकर, उन्होंने उनमें से तीन पर बेहद करीब से गोलीबारी की। उन्होंने चौथे टैंक को भी निशाना बनाया, लेकिन 90 मिमी के गोले से उनकी जीप के टुकड़े-टुकड़े हो गए।
1965 के युद्ध का एक दिलचस्प पहलू यह है कि असल उत्तर की लड़ाई के बाद, यानी
मुंहतोड़ जवाब देते हुए, पाकिस्तानी टैंक डिवीजन को पूरी तरह से परास्त कर दिया गया और क्षतिग्रस्त पाकिस्तानी पैटन टैंकों को युद्ध ट्राफियों के रूप में इकट्ठा कर लिया गया। इनमें से लगभग 70 टैंक भिक्कीविंड नामक स्थान पर लावारिस पड़े थे, जिसे स्थानीय लोग पैटन नगर कहने लगे! जनरल हरबख्श की किताब के अनुसार, युद्ध के तीन दिनों में 75 पाकिस्तानी टैंक नष्ट या लावारिस छोड़ दिए गए, जिनमें 4 कैवलरी का पूरा टैंक बेड़ा भी शामिल था, जिसके कमांडिंग ऑफिसर, 12 अधिकारी और कई अन्य सैनिक 11 सितंबर की सुबह आत्मसमर्पण कर गए थे।
युद्धविराम के बाद भिक्कीविंड में टैंकों का एक कब्रिस्तान बन गया, जहाँ कुछ

निकासी से पहले 70 पाकिस्तानी टैंकों को इकट्ठा करके खड़ा किया गया था। स्थानीय लोगों द्वारा इसे पैटन नगर नाम दिया गया था, जो असल उत्तर में लड़ने और शहीद होने वाले या उस युद्धक्षेत्र की कठिनाइयों से बचकर अगले दिन लड़ने के लिए तैयार रहने वाले सभी लोगों की याद में एक अनूठा स्मारक था। पैटन टैंकों को कुछ समय के लिए प्रदर्शित किया गया, जिसके बाद उन्हें युद्ध ट्राफियों के रूप में प्रदर्शित करने के लिए देश भर के विभिन्न सेना छावनियों में ले जाया गया।

अब्दुल हामिद के पोते जमील ने अपनी दादी श्रीमती रसूलन अब्दुल हामिद के साथ हुई बातचीत सुनाकर इस कहानी की कुछ अधूरी जानकारियों को पूरा करने में मदद की। श्रीमती हामिद अब ठीक से सुन नहीं सकतीं।

Ardeshir Burzorji Tarapore

जब पहली बार लेफ्टिनेंट कर्नल आदि तारापोर की बेटी ज़रीन के पिता घर नहीं लौटे और पूरा परिवार बहुत चिंतित हो गया, तब वह महज 15 साल की थी। वह घर में इधर-उधर टहलती अपनी माँ की बेचैनी को महसूस कर सकती थी। और वह तब तक ऐसा करती रही जब तक कि उसके पिता वापस नहीं आ गए।
दूसरी बार जब लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर घर नहीं लौटे, तो वे कभी लौटे ही नहीं। चिंता करने, प्रार्थना करने या बेचैनी से इधर-उधर घूमने से भी वे इस बार वापस नहीं आए क्योंकि 1965 के युद्ध ने उन्हें छीन लिया था।
ज़रीन माहिर बॉयस अब 60 वर्ष की हो चुकी हैं और उनके पिता परम वीर चक्र (पीवीसी) लेफ्टिनेंट कर्नल अर्देशिर बुरज़ोरजी तारापोर के निधन को लगभग पचास वर्ष हो चुके हैं, लेकिन उनकी यादें आज भी उनके मन में ताज़ा हैं। पुणे स्थित अपने घर में बैठी वह अपने प्यारे पिता और बहादुर सैनिक को याद करती हैं। कभी-कभी उनके चेहरे पर मुस्कान आ जाती है, तो कभी-कभी उनकी आवाज़ में उदासी झलकती है। वह कहती हैं, इतने साल बीत गए हैं, लेकिन ऐसा लगता है जैसे यह सब कल ही हुआ हो।

जनवरी 1964, बबीना
शाम के 7:45 बज रहे थे। सूरज डूब चुका था और छावनी में रहने वाले तारापोर परिवार के आलीशान घर में बत्तियाँ जल चुकी थीं। आदि पूना हॉर्स के कमांडिंग ऑफिसर (सीओ) थे और अभी तक घर नहीं लौटे थे। श्रीमती पेरिन तारापोर को चिंता होने लगी थी क्योंकि उन्होंने उनसे वादा किया था कि वे बहुत जल्दी घर आ जाएँगे। तारापोर परिवार के यहाँ ठहरी एक नागरिक मेहमान का जन्मदिन था और आदि ने उनसे वादा किया था कि वे शाम 6 बजे तक वापस आ जाएँगे ताकि वे केक काट सकें। केक खाने की मेज पर रखा था, बच्चे - ज़ेरक्स और ज़रीन
- बेचैन हो रहे थे, लेकिन आदि का कोई अता-पता नहीं था।
पौने आठ बजे श्रीमती तारापोर को ड्राइववे में एक वाहन की आवाज सुनकर राहत मिली। यह उनके पति की जीप थी। जब जीप बरामदे पर रुकी और आदि उतरे, तो

उन्हें कीचड़ से सनी वर्दी पहने हुए देखकर वे दंग रह गईं। उनके ड्राइवर और वायरलेस ऑपरेटर भी इसी तरह कीचड़ से सने हुए थे। तब तक बच्चे और मेहमान भी उनके आसपास जमा हो चुके थे और आदि ने माफी मांगते हुए बताया कि उनकी जीप गुरारी नाले में फंस गई थी, जो उस समय बबीना के बाहर बहता था। उनकी वर्दी गंदी इसलिए थी क्योंकि उन्होंने अपने साथियों को कीचड़ से निकालने में मदद की थी। आदि के पद और रुतबे से प्रभावित एक मेहमान ने हैरानी जताई कि रेजिमेंट के कमांडिंग ऑफिसर होने के बावजूद आदि को जीप को धकेलने के लिए पानी में उतरना पड़ा। आमतौर पर शांत और विनम्र रहने वाले आदि यह सुनकर एकदम सख्त हो गए और बोले: 'मैं चीनी-नमक का बना हुआ नहीं हूँ कि बह जाऊँ। मेरे आदमी जो भी करते हैं, मैं उनके साथ करता हूँ।'
ज़रीन अपने पिता की बातें सुन रही थी। वह उनके शब्दों और अपने सैनिकों के प्रति उनके प्रेम को कभी नहीं भूल पाएगी। आदि को अपने परिवार के साथ बस एक और साल बिताना था। सितंबर 1965 में, सियालकोट सेक्टर के फिलोरा में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए सबसे बड़े टैंक युद्ध के दौरान, दुश्मन का एक गोला उनके टैंक पर लगा। आदि टैंक के गुंबद में खड़े थे जब टैंक आग की लपटों में घिर गया और उन्हें तथा उनके खुफिया अधिकारी को भस्म कर दिया। उन्होंने वहीं युद्ध के मैदान में एक वीर की मृत्यु प्राप्त की, उन सैनिकों के लिए जो उन्हें बहुत प्रिय थे। उस समय उनका बायां हाथ पहले से लगी चोट के कारण पट्टी में बंधा हुआ था, जिसके लिए उन्होंने अस्पताल से निकाले जाने से हठपूर्वक इनकार कर दिया था। इससे पहले, उन्होंने अपने सैनिकों का नेतृत्व करते हुए पाकिस्तान में प्रवेश किया और उनकी यूनिट ने जस्सोरान और बुट्टर डोगरांडी पर सफलतापूर्वक कब्जा कर लिया। छह दिनों तक चले इस युद्ध में उनके द्वारा प्रदर्शित शौर्य के लिए, लेफ्टिनेंट कर्नल अर्देशिर बुरज़ोरजी तारापोर को मरणोपरांत सर्वोच्च युद्धकालीन वीरता पदक (पीवीसी) से सम्मानित किया गया।

जन्मजात योद्धा अर्देशिर बुरज़ोरजी तारापोर, जिन्हें उनके मित्र प्यार से आदि कहते थे, का जन्म 18 अगस्त 1923 को मुंबई में हुआ था। ऐसा माना जाता

है कि तारापोर उपनाम तारापोर गाँव से आया है, जो शिवाजी द्वारा उनके पूर्वज को दी गई 100 जागीरों में से एक था। उनके पूर्वज आठ पीढ़ियों पहले मराठा शासक थे। यह जागीर उनकी बहादुरी और वफादारी के सम्मान में दी गई थी और संयोग से ये गुण आदि में भी बचपन से ही स्पष्ट थे।
उनके बचपन से जुड़ी एक दिलचस्प कहानी है। आदि की एक बड़ी बहन और एक छोटा भाई था। जब वह छह साल के थे, तब एक बार वह अपनी दस साल की बहन यादगार के साथ अपने घर के पिछवाड़े में खेल रहे थे। तभी घर की गाय भाग निकली और यादगार पर झपटी। यादगार डर के मारे चीखने लगी, लेकिन नन्हे आदि ने तुरंत प्रतिक्रिया दी। उन्होंने एक छड़ी उठाई और गाय के सामने खड़े होकर उसकी नाक पर ज़ोर से मारा। घबराई हुई गाय पीछे हट गई और दोनों बच्चे फिर से खेलने लगे।
आदि का यह निडर स्वभाव उम्र बढ़ने के साथ भी बना रहा। उन दिनों हैदराबाद एक अलग राज्य था और यद्यपि आदि स्कूल छोड़ने के बाद बख्तरबंद रेजिमेंट में शामिल होने का सपना देखता था, लेकिन जनवरी 1942 में उसे 7 वीं हैदराबाद इन्फैंट्री में सेकंड लेफ्टिनेंट के रूप में कमीशन मिला। उसे लांसर्स और फिर पूना हॉर्स में शामिल होने की कहानी भी रोचक है।
यह सब बिल्कुल संयोग से हुआ। एक बार जब हैदराबाद राज्य बलों के कमांडर-इन-चीफ मेजर जनरल एल एड्रूस नियमित ग्रेनेड फेंकने के प्रशिक्षण के दौरान उनकी बटालियन का निरीक्षण कर रहे थे, तभी एक युवा सिपाही घबरा गया और गलती से अपना ग्रेनेड फेंकने वाले स्थान पर फेंक दिया। अपनी जान की परवाह किए बिना, आदि तुरंत कूद पड़े और ग्रेनेड उठाकर दूर फेंक दिया। ग्रेनेड उनके हाथ से निकलते ही फट गया और उसके छर्रे उनकी छाती में जा लगे, लेकिन कोई और हताहत नहीं हुआ। मेजर जनरल एल एड्रूस उस युवा अधिकारी से बहुत प्रभावित हुए और जब आदि अपनी चोटों से उबर गए, तो उन्होंने उन्हें बधाई देने के लिए अपने कार्यालय में बुलाया। आदि ने उनसे एक बख्तरबंद रेजिमेंट में तबादला करने का अनुरोध किया और जनरल ने उन्हें प्रथम हैदराबाद इंपीरियल सर्विस लांसर्स में तैनात कर दिया। इस प्रकार आदि का सपना पूरा हुआ।
हालांकि, आदि का विवादों से पीछा नहीं छूटा। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, प्रथम हैदराबाद लांसर्स ने मध्य पूर्व में सेवा दी और इसकी कमान एक ब्रिटिश अधिकारी के हाथ में थी, जो असभ्य था और अक्सर अपने अधीन 'स्थानीय' सैनिकों की युद्ध क्षमताओं की आलोचना करता था। एक बार उसने निज़ाम का अपमान किया। वहाँ मौजूद तारापोर ने इस पर कड़ी आपत्ति जताई और अपने

कमांडिंग ऑफिसर से साहसपूर्वक कहा, 'आपने मेरे देश और मेरे राजा का अपमान किया है, और मेरा मतलब जॉर्ज षष्ठम से नहीं है।'
इस घटना से भारी हंगामा मच गया। रेजिमेंट को अलग-थलग कर दिया गया और उसका सारा गोला-बारूद वापस ले लिया गया। अंततः मेजर जनरल एल एड्रूस द्वारा जनरल मोंटगोमरी से मुलाकात के बाद मामला सुलझा और आदि का करियर बच गया।

आदि पूना हॉर्स में शामिल हो गए हैं। हैदराबाद राज्य के भारत संघ में विलय के बाद, तारापोर को पूना हॉर्स या 17 हॉर्स रेजिमेंट में तैनात किया गया। वहाँ उन्होंने ए स्क्वाड्रन (जो एक राजपूत स्क्वाड्रन था) में शामिल होकर, गैर-राजपूत होने के बावजूद, सैनिकों के साथ इतना घनिष्ठ संबंध विकसित कर लिया कि उन्हें मजाक में अनौपचारिक रूप से 'ए स्क्वाड्रन का कर्नल' का पदनाम दे दिया गया। लेफ्टिनेंट कर्नल शिवराज सिंह, जो जम्मू के चथा कैंप में नव नियुक्त सबाल्टर्न थे, जब तारापोर ने पहली बार रेजिमेंट में कार्यभार संभाला था, ने तारापोर के शामिल होने के दिन के बारे में लिखा है। ‘1951 के अंत में, खबर मिली कि हैदराबाद लांसर्स के एक पूर्व अधिकारी को रेजिमेंट में तैनात किया जा रहा है; वे दो साल की परिवीक्षा पर रहेंगे और यदि वे सेवा में बने रहने के योग्य पाए जाते हैं, तभी उन्हें सेना में स्थायी कमीशन दिया जाएगा। एक दिन, जब सभी अधिकारी मेस हटमेंट के पास एक आम के पेड़ की छांव में बीयर पी रहे थे, तभी मध्यम कद का एक सुगठित युवा अधिकारी सेकंड-इन-कमांड (2-IC) के साथ अंदर आया और उसका परिचय कैप्टन अर्देशिर बी. तारापोर के रूप में कराया गया। अधिकारी ने जैतून के हरे रंग की वर्दी बहुत ही साफ-सुथरी और सही ढंग से पहनी हुई थी। वे कुछ शर्मीले और कम बोलने वाले प्रतीत हुए, लेकिन आत्मविश्वासी थे, और उनका व्यवहार और आचरण बहुत ही विनम्र और सुसंस्कृत था।’
ये थे तारापोर, और जल्द ही वे रेजिमेंट के चहेते बन गए। दरअसल, 17 हॉर्स के प्रति उनकी वफादारी इतनी प्रबल थी कि उन्होंने वरिष्ठ स्क्वाड्रन एनसीओ (गैर-कमीशन अधिकारी) बहादुर सिंह की मूंछों से प्रेरित होकर एक खौफनाक

घुड़सवार जैसी मूंछें भी बढ़ा लीं और अन्य अधिकारियों को गर्व से बताते थे कि वे बस 'ए स्क्वाड्रन की सच्ची परंपरा' का पालन कर रहे हैं। कई वर्षों बाद जब उन्होंने रेजिमेंट की कमान संभाली, तब भी तारापोर ने अपनी इस प्रभावशाली मूंछ को बरकरार रखा। वे अक्सर कहते थे कि 17 हॉर्स के कमांडेंट तभी कमांडेंट लगते हैं जब वे एक घुड़सवार जैसी मूंछें रखते हैं। लेफ्टिनेंट कर्नल शिवराज याद करते हैं कि तारापोर नेपोलियन को अपना आदर्श मानते थे। वे नेपोलियन के बारे में बहुत पढ़ते थे, अक्सर उनके उद्धरण देते थे और यहाँ तक कि अपनी डेस्क पर उनकी एक प्रतिमा भी रखते थे। दरअसल, जब वे बहुत खुश होते थे, तो तारापोर अक्सर नेपोलियन की नकल करने की कोशिश करते थे, जिससे दूसरे अधिकारी बहुत खुश होते थे। एक बार, मेस में कई बार 'हर हर महादेव' का जाप करने के बाद, सभी का उत्साह चरम पर था, और कुछ व्हिस्की पीने के बाद तारापोर ने अचानक घोषणा कर दी कि वे नेपोलियन का पुनर्जन्म हैं। इसे साबित करने के लिए उन्होंने एक वीर की तरह मुद्रा बनाई, लेकिन उन्हें लगा कि सही टोपी के बिना यह नकल अधूरी है। उनकी नज़र तुरंत पानी से भरे और तैरते गुलाब की पंखुड़ियों वाले बड़े चांदी के कटोरे पर पड़ी। तारापोर ने झट से उसे उठाया और नेपोलियन की टोपी का रूप धारण करने के लिए उसे अपने गंजे सिर पर उल्टा रख दिया। फिर उन्होंने अपना दाहिना हाथ अपनी मेस ड्रेस की जैकेट में डाला और नेपोलियन की तरह खड़े हो गए। वे पूरी तरह भीग गए थे, लेकिन उनका उत्साह जरा भी कम नहीं हुआ। उनके साथी अधिकारियों के लिए यह एक मजेदार मनोरंजन था।
तारापोर को उनके सभी जवान और अधिकारी उनकी निडरता और एक कुशल कमांडर के रूप में याद करते हैं। उनके लिए कोई भी काम छोटा नहीं था। वे अक्सर सैनिकों को टैंकों में गोला-बारूद लादने में स्वयं सहायता करके आश्चर्यचकित कर देते थे, ऐसा काम जो अधिकांश अन्य अधिकारी नहीं करते थे। सवार नत्थू सिंह को वह समय याद है जब रेजिमेंट में सेंटूरियन टैंक नए-नए आए थे और जिस टैंक को वे चला रहे थे, उससे बहुत शोर होने लगा था, जिससे उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या गड़बड़ है। अचानक उन्होंने तारापोर साहब को देखा, जो दूर से देख रहे थे, और उनकी ओर दौड़ते हुए आ रहे थे। टैंक के पास पहुँचकर, तारापोर गुंबद पर कूद गए और नत्थू से धीरे से कहा, 'बच्चा, इंजन की आवाज़ कम करो'। तारापोर विदेश गए थे, प्रशिक्षण लिया था और सेंटूरियन टैंकों को यूनिट में वापस लाए थे, और उनसे बेहतर उन्हें कोई नहीं जानता था।

जब तारापोर मेस में लड़कों के साथ मौज-मस्ती नहीं कर रहे होते थे, तब वे एक अच्छे, स्थिर और कुशल रेजिमेंटल अधिकारी थे। उनकी खासियत यह थी कि वे न केवल त्वरित निर्णय ले सकते थे, बल्कि जरूरत पड़ने पर अपरंपरागत समाधान भी अपना सकते थे। 1962 में, तारापोर कमांडेंट के रूप में कार्यभार संभाल रहे थे, जब रेजिमेंट को 24 घंटे के भीतर अपने ऑपरेशनल लोकेशन पर पहुंचने का आदेश मिला। यदि सामान्य प्रक्रियाओं का पालन किया जाता, तो रेजिमेंट के लिए समय पर तैयार होना असंभव था, इसलिए तारापोर ने क्वार्टर गार्ड, रेजिमेंटल स्टोर्स और गोला-बारूद डिपो के चारों ओर लगी सुरक्षा बाड़ को तोड़ने का आदेश दिया। वाहनों को स्टोर्स तक ले जाया गया और उनमें गोला- बारूद भरा गया, और टैंकों को सीधे गोला-बारूद डिपो तक ले जाकर गोला-बारूद से भर दिया गया। पूरी रेजिमेंट ने रात भर काम किया और निर्धारित समय पर आगे बढ़ने में सफल रही। सैन्य इंजीनियरिंग सेवाएं नुकसान की रिपोर्ट तैयार करती रहीं, जिन्हें बाद में सुलझाया जा सकता था! तारापोर ने इसी सहज आत्मविश्वास के साथ अपनी रेजिमेंट का नेतृत्व किया, यहां तक कि तीन साल बाद जब वे 17 हॉर्स रेजिमेंट की कमान संभालने और पाकिस्तान की ताकत का सामना करने के लिए वापस आए।
चाविंदा की लड़ाई 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में सियालकोट अभियान का हिस्सा थी। द्वितीय विश्व युद्ध में कुर्स्क की लड़ाई के बाद यह इतिहास की सबसे बड़ी टैंक लड़ाइयों में से एक थी। हमले का उद्देश्य वज़ीराबाद और जस्सोरान के आसपास के महत्वपूर्ण ग्रैंड ट्रंक रोड पर कब्ज़ा करना था, जिससे सियालकोट-पसरूर रेलवे पर प्रभुत्व स्थापित किया जा सके और इस प्रकार पाकिस्तानी आपूर्ति लाइन को पूरी तरह से काट दिया जा सके। भारतीय प्रथम कोर की मुख्य आक्रमण शक्ति 1 थी।
14 वीं इन्फैंट्री और 6 वीं माउंटेन डिवीजनों के समर्थन से बख्तरबंद डिवीजन और भारतीय पैदल सेना ने 7 सितंबर को सीमावर्ती क्षेत्र पर कब्जा कर लिया।

सीमा पार करना

27 अगस्त 1965 को युद्ध की घोषणा हुई। 17 हॉर्स रेजिमेंट के मेजर अजय सिंह, जो अपने बेटे के जन्म के लिए छुट्टी पर घर आए हुए थे, को इसकी जानकारी तब मिली जब उनके ससुर ने उन्हें बताया कि प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री रेडियो पर राष्ट्र को संबोधित कर रहे हैं।
जब युद्ध की घोषणा हुई, तब 17 हॉर्स रेजिमेंट कपूरथला में थी। मेजर अजय सिंह जैसे छुट्टी पर आए अधिकारियों ने स्थानीय लोगों से टैंकों की आवाजाही के बारे में सुनी जानकारी के आधार पर अपनी रेजिमेंट का पता लगाया। जब मेजर अजय सिंह को आखिरकार अपनी यूनिट और कमांडिंग ऑफिसर मिले, तब तक वे सांबा से आगे एक गाँव पहुँच चुके थे। वे याद करते हुए कहते हैं, “उस युद्ध की सच्चाई यह थी कि कोई नक्शा नहीं था, किसी को नहीं पता था कि कहाँ जाना है; हमें बस इतना कहा गया था कि जब भी आदेश आए, हम जाने के लिए तैयार रहें।” आखिरकार एक रात उन्हें आदेश मिल गया।
रात भर बारिश हुई थी और खेत कीचड़ से भरे हुए थे। यह एक सर्द सर्दी की सुबह थी जब पाकिस्तान के सीमावर्ती गाँव बरखानिया में पानी भरने जा रहे स्कूली बच्चे और महिलाएं हरे रंग के युद्ध टैंकों को सरपट दौड़ते हुए देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वे विस्मय से खड़े होकर खुले गुंबदों में सीधे खड़े सैनिकों को देखकर हाथ हिलाने लगे। कुछ ने सैनिकों को पुकारा, जिन्होंने मुस्कुराकर जवाब दिया, जबकि अन्य लोग 45 विशालकाय मशीनों को एक के पीछे एक धीरे-धीरे गुजरते हुए देखते रह गए।
पाकिस्तानी ग्रामीणों को यह नहीं पता था कि ये 17 हॉर्स रेजिमेंट के खूंखार सेंटूरियन टैंक थे। उन्हें रात में आदेश मिला था कि वे सुबह होते ही भारत-पाकिस्तान सीमा पार कर लें और वे ठीक वैसा ही कर रहे थे। लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर ने सख्त निर्देश दिए थे कि नागरिकों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाना चाहिए। उन्होंने वायरलेस पर कांपती हुई आवाज़ में कहा था, 'हमारी लड़ाई सेना से है। हम किसी भी निर्दोष पुरुष, महिला या बच्चे को नहीं छुएंगे।' सभी सैनिक उनकी बात सुन सकते थे। और इसीलिए ग्रामीणों ने उन्हें अपने ही पाकिस्तानी सैनिक समझ लिया था।
पिछली रात तक, 17 हॉर्स रेजिमेंट के जवान सीमा के 8 किलोमीटर अंदर स्थित अपने तंबुओं में धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। रात में वे न केवल दोनों सेनाओं के बीच गोलीबारी की आवाज सुन सकते थे, बल्कि उसे देख भी सकते थे। जाहिर है, वे युद्ध में शामिल होने के लिए बेताब थे। जब अंततः आदेश

[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

चाविंदा का युद्ध
चाविंदा की लड़ाई का पहला दिन था। रेजिमेंट पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के सियालकोट जिले में तैनात थी। जब लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर ने अपने सेकंड-इन-कमांड मेजर एन. एस. चीमा (अब लेफ्टिनेंट जनरल [सेवानिवृत्त]) को एक तरफ बुलाया, तो चीमा को लगा कि कमांडर उन्हें युद्ध के बारे में नियमित जानकारी दे रहे हैं। हालांकि, ऐसा लगता है कि कर्नल को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था।
मेजर चीमा उस समय आश्चर्यचकित रह गए जब लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर ने उन्हें युद्ध में मारे जाने की स्थिति में क्या करना है, इसके बारे में विस्तृत निर्देश दिए। कर्नल तारापोर ने (तत्कालीन) मेजर चीमा से कहा, “मुझे युद्धक्षेत्र में ही जलाया जाना चाहिए। मेरी प्रार्थना पुस्तक मेरी माँ को, मेरी सोने की चेन मेरी पत्नी को, मेरी अंगूठी मेरी बेटी को, मेरा कंगन और कलम मेरे बेटे को दे दी जानी चाहिए।” मेजर चीमा ने बाद में सकल टाइम्स को दिए एक साक्षात्कार में यह बात बताई। “उन्होंने थोड़ा रुककर कहा, ‘और, निरंजन, कृपया मेरे बेटे ज़ेरक्स को सेना में भर्ती होने के लिए कह देना।’” पाँच दिन बाद, 16 सितंबर 1965 को, तारापोर दुश्मन के तोप के गोले की चपेट में आने से गंभीर रूप से घायल हो गए।
1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध की सबसे बड़ी टैंक लड़ाई सियालकोट सेक्टर के फिलोरा में हुई थी। कालोई-फिलोरा अक्ष पर भारतीय सेना के दक्षिणी आक्रमण के दौरान, लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर के नेतृत्व में 17 हॉर्स रेजिमेंट ने दाहिने हिस्से से आगे बढ़कर हमला किया।
फिलोरा की लड़ाई 10 सितंबर को भारतीय सेना के एक बड़े हमले के साथ शुरू हुई। 11 सितंबर को रेजिमेंट को फिलोरा पर कब्ज़ा करने के लिए मुख्य बख्तरबंद हमले का जिम्मा सौंपा गया। रेजिमेंट ने फिलोरा पर पीछे से अचानक हमला करने का फैसला किया। चार बख्तरबंद रेजिमेंटों से लैस प्रथम बख्तरबंद डिवीजन उस क्षेत्र में आक्रामक स्थिति में थी। दुश्मन द्वारा बेरोकटोक आगे बढ़ते हुए टैंक पाकिस्तान की ओर बढ़ते रहे। सुबह करीब 11 बजे पहला हवाई हमला हुआ। जनरल अजय सिंह, जो 17 हॉर्स रेजिमेंट की सी स्क्वाड्रन में एक युवा मेजर थे और नेतृत्व कर रहे थे, हंसते हुए याद करते हैं, "तब तक उन बदमाशों को पता ही नहीं था कि हम उनके देश में इतनी गहराई तक आ चुके हैं।"

पाकिस्तान ने अचानक हवाई हमलों से आगे बढ़ रही सेना को चौंका दिया, हालांकि हवाई हमलों से ट्रकों और पैदल सेना के काफिलों को ज़्यादा नुकसान हुआ और टैंकों को कम। फिर भी, जनरल अजय सिंह याद करते हैं कि नुकसान बहुत हुआ; 16 कैवलरी और हॉडसन हॉर्स रेजिमेंटों का सफाया हो गया। चारों ओर अफरा-तफरी मची हुई थी। अपने बुर्जों में खड़े कई सैनिक गोले की चपेट में आ गए और या तो गिर पड़े या बुरी तरह घायल हो गए। जनरल अजई सिंह को याद है कि जब वे अपने बुर्ज पर खड़े थे, तभी एक गोला उनके औजारों के डिब्बे पर लगा और उनके कंबल में आग लग गई। आग को तुरंत बुझा दिया गया और कोई नुकसान नहीं हुआ।
पाकिस्तान के पैटन टैंक 16 वीं कैवलरी और हॉडसन हॉर्स की बख्तरबंद इकाइयों का सामना कर रहे थे। हवाई हमले में उन्हें इतना भारी नुकसान हुआ था कि वे पीछे हट रहे थे। सैनिकों का मनोबल बहुत गिरा हुआ था। इसी समय, तारापोर की पहल पर, 17 वीं हॉर्स ने स्थिति को संभालने के लिए मोर्चा संभाला। अपनी विशिष्ट शैली में, उन्होंने निर्देशों का इंतजार नहीं किया और बिना किसी चेतावनी के सीधे पाकिस्तानियों पर हमला कर दिया। उस धुएं से भरी सुबह को याद करते हुए, अनुभवी जनरल गर्व से कहते हैं, 'और वह कितना भयंकर हमला था! हमने पहले ही हमले में 13 टैंक नष्ट कर दिए।' दो दिनों तक भीषण लड़ाई जारी रही और पाकिस्तानी सेना को चाविंदा की ओर पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा। 11 सितंबर को दोपहर 3:30 बजे फिलोरा पर भारतीयों ने कब्जा कर लिया। पाकिस्तान की 11 वीं कैवलरी ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी, लेकिन इतने टैंक खो दिए कि उस दिन से वह एक पूर्ण टैंक रेजिमेंट के रूप में काम करना बंद कर दिया। इस अभियान में तारापोर घायल हो गए। एक छर्रा उनकी बांह में घुस गया जिससे एक गहरा घाव हो गया। क्योंकि वह अपना हाथ हिलाने में असमर्थ था, इसलिए उसे स्लिंग में रखना पड़ा।
फिलोरा पर कब्ज़ा करने के बाद, ब्रिगेड कमांडर और जनरल ऑफिसर कमांडिंग ने 17 हॉर्स रेजिमेंट की प्रशंसा की। तत्काल पुरस्कारों पर चर्चा हुई, लेकिन लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर ने यह कहते हुए उन्हें ठुकरा दिया कि उनकी रेजिमेंट तो बस अपना कर्तव्य निभा रही थी। उन्होंने यह कहते हुए अस्पताल से निकाले जाने से इनकार कर दिया कि उनका घाव 'मामूली खरोंच' था। इसके अलावा, उन्हें चाविंदा पर हमले की निगरानी भी करनी थी। इसी बीच पाकिस्तानी

सेना पीछे हट गई और फिर से संगठित हो गई। वे चाविंदा में अंतिम लड़ाई लड़ेंगे।

बुत्तर दोगरांडी पर कब्ज़ा: योजना यह थी कि 13-14 सितंबर की दोपहर को पैदल सेना चाविंदा पर हमला करेगी और 17 हॉर्स बटालियन उसे घेर लेगी। यह कार्य सी स्क्वाड्रन को सौंपा गया था। जनरल अजई सिंह को याद है कि कैसे उनकी स्क्वाड्रन के टैंक 9 गढ़वाल बटालियन के समर्थन से आगे बढ़ने लगे। भारतीय सेना को इस बात का एहसास नहीं था कि पाकिस्तानी टैंक पहले से ही बुत्तर दोगरांडी में छुपकर हमले की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब सी स्क्वाड्रन के टैंकों ने गांव पर हमला करने के लिए छुपना छोड़ा, तो पाकिस्तानी पैटन टैंकों ने दस में से छह टैंकों को मौके पर ही मार गिराया। चूंकि दुश्मन छिपा हुआ था और 17 हॉर्स बटालियन के टैंकों को गन्ने के खेतों से बाहर निकलकर हमले के लिए खुद को जोखिम में डालना पड़ा, इसलिए स्थिति तेजी से बिगड़ गई। मेजर अजई सिंह ने तुरंत वायरलेस पर अपने कमांडिंग ऑफिसर को फोन किया और उन्हें स्थिति की जानकारी दी। ‘मैंने उनसे तुरंत अतिरिक्त सैनिक भेजने को कहा, नहीं तो बुट्टर डोग्रांडी हाथ से निकल जाता।’ वे याद करते हैं कि कैसे तारापोर तुरंत अपने टैंक के साथ आगे बढ़े और ए स्क्वाड्रन को भी युद्ध में शामिल होने का निर्देश दिया। ‘मुझे नहीं पता कि युद्ध की पूरी अफरा-तफरी में संदेश ठीक से पहुंचा या नहीं, लेकिन जब बाकी सैनिकों ने कमांडिंग ऑफिसर के टैंक को बुट्टर डोग्रांडी की ओर बढ़ते देखा, तो कुछ सैनिक भी उनके पीछे चलने लगे। नतीजा यह हुआ कि मुझे अतिरिक्त सैनिक मिल गए।’ जनरल अजई सिंह कहते हैं।
एक किलोमीटर दूर स्थित गाँव में पाकिस्तानी पैटन टैंक घनी झाड़ियों में छिपे हुए थे, जबकि भारतीय टैंक गन्ने के खेतों से निकलकर हमले के लिए आगे बढ़े। यह एक साहसिक हमला था, लेकिन नौ सेंटूरियन टैंकों (जिनमें मेजर अजय सिंह के पाँच, ए स्क्वाड्रन के तीन और कमांडिंग ऑफिसर तारापोर का एक टैंक शामिल था) ने पैटन टैंकों पर हमला किया और उन सभी छह को नष्ट कर दिया। बुट्टर डोग्रंडी को बंदी बना लिया गया।

17 हॉर्स रेजिमेंट और उसके कमांडिंग ऑफिसर के लिए यह मौन उत्सव का क्षण था। लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर ने न केवल दुश्मन के आक्रमण का डटकर सामना किया, बल्कि अपनी जगह पर डटे रहकर वीरतापूर्वक फिलोरा पर हमला किया। दुश्मन के टैंकों और तोपखाने की निरंतर गोलाबारी के बावजूद, वे पूरी कार्रवाई के दौरान अविचलित रहे। घायल होने पर भी उन्होंने अस्पताल से निकाले जाने से इनकार कर दिया।
14 सितंबर को उन्होंने एक बार फिर अपनी रेजिमेंट का नेतृत्व करते हुए वज़ीरवाली पर कब्ज़ा कर लिया। अपनी चोट की परवाह न करते हुए, उन्होंने 16 सितंबर को जस्सोरान और बुत्तर डोग्रांडी पर भी कब्ज़ा कर लिया। इस लड़ाई में उनके अपने टैंक को कई बार नुकसान पहुंचा। लेकिन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, उन्होंने दोनों स्थानों पर अपनी मोर्चाबंदी बनाए रखी और इस तरह सहायक पैदल सेना को चाविंदा पर पीछे से हमला करने में मदद की। उनके नेतृत्व से प्रेरित होकर, रेजिमेंट ने जोरदार हमला किया और लगभग 60 दुश्मन टैंकों को नष्ट कर दिया, जबकि उसे केवल नौ टैंकों का नुकसान हुआ। छह दिनों तक चले इस युद्ध में उनके द्वारा प्रदर्शित शौर्य भारतीय सेना की सर्वोच्च परंपराओं के अनुरूप था। लेकिन जल्द ही, उनका अंत पीड़ादायक और गौरवशाली होगा।

अंतिम दिन
तारापोर काफी शांत हैं। उन्होंने आराम से अपनी प्रार्थनाएं पूरी कर ली हैं, बुट्टर डोग्रांडी पर विजय की साहसिक घटना उनके मन में ताजा है और उन्हें अपने नेतृत्व में आए सैनिकों पर गर्व है। लड़ाई अभी जारी है, लेकिन वे जानते हैं कि पाकिस्तान के आत्मसमर्पण में बस कुछ ही समय बाकी है। अपने टैंक के हैच पर खड़े होकर वे युद्धक्षेत्र का अवलोकन कर रहे हैं, उनके दाहिने हाथ में चाय का प्याला है और बायां हाथ अभी भी स्लिंग में है। वे अपने खुफिया अधिकारी से स्थिति पर चर्चा कर रहे हैं, जो टैंक पर ही उनके दाहिनी ओर खड़े हैं। खुले में, निहत्थे खड़े होकर निर्देश देना या क्षेत्र का जायजा लेना उनकी आदत है। उसी दुर्भाग्यपूर्ण क्षण में, एक गोला तेजी से

आता है और उनके टैंक से टकराता है, जिससे टैंक में तुरंत आग लग जाती है। तारापोर और उनके खुफिया अधिकारी दोनों आग की लपटों में घिर जाते हैं। उन पर सीधा हमला हुआ है।
मेजर अजई सिंह अपने टैंक से गिरे एक गनर को सुरक्षित निकाल रहे थे, तभी उन्हें अपने ऑपरेटर से पता चला कि कमांडिंग ऑफिसर को गोली लग गई है। सदमे में आकर वे घटनास्थल की ओर दौड़े और देखा कि लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर का बेजान शरीर जमीन पर पड़ा है, जिस पर डूबते सूरज की नारंगी किरणें पड़ रही हैं।
शाम के 6 बज रहे हैं। लेफ्टिनेंट कर्नल तारापोर के पार्थिव शरीर को नम आंखों से वापस लाया जा रहा है, लेकिन उनके क्षतिग्रस्त टैंक खुशब को, जिसका नाम एक प्रसिद्ध युद्ध सम्मान के नाम पर रखा गया है जिसमें 17 हॉर्स रेजिमेंट को दो विक्टोरिया क्रॉस मिले थे, वहीं छोड़ना पड़ता है। बाद में इसे पाकिस्तान ने अपने कब्जे में ले लिया।
भारतीय सेना की सर्वोच्च परंपराओं के अनुरूप छह दिनों तक चले इस अभियान में उनके द्वारा प्रदर्शित शौर्य के लिए, लेफ्टिनेंट कर्नल अर्देशिर बुरजोरजी तारापोर को मरणोपरांत सर्वोच्च युद्धकालीन वीरता पदक, परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया है।

[redacted]

[redacted]

[redacted]

[redacted]

1971 का भारत -पाकिस्तान युद्ध

बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम के कारण ही 1971 का भारत-पाकिस्तान युद्ध छिड़ा था।
1970 में पाकिस्तान में चुनाव हुए। अवामी लीग ने पूर्वी पाकिस्तान की 169 सीटों में से 167 सीटें जीतीं और पाकिस्तान की संसद के 313 सीटों वाले निचले सदन में साधारण बहुमत हासिल किया। हालांकि, जब शेख मुजीबुर रहमान ने सरकार बनाने का दावा किया, तो तत्कालीन पश्चिमी पाकिस्तान की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पीपीपी) के नेता जुल्फिकार अली भुट्टो ने उन्हें प्रधानमंत्री पद सौंपने से इनकार कर दिया और राष्ट्रपति याह्या खान ने पूर्वी पाकिस्तान में हुए विरोध प्रदर्शनों को कुचलने के लिए सेना को बुलाया।
अप्रैल में, निर्वासित अवामी लीग के नेताओं ने निर्वासित सरकार का गठन किया। बांग्लादेश के कसाई के नाम से कुख्यात लेफ्टिनेंट जनरल टिक्का खान ने आतंक का राज फैलाया, जिसमें सशस्त्र बलों ने निहत्थे नागरिकों और बंगाली अर्धसैनिक बलों के खिलाफ मशीनगन, टैंक और तोपखाने का इस्तेमाल किया। इसके परिणामस्वरूप डरे हुए नागरिकों का बड़े पैमाने पर पलायन हुआ, जिन्होंने सीमा पार करना शुरू कर दिया और अपनी जान के डर से भारत में शरणार्थी बन गए। ऐसा माना जाता है कि राजनीतिक रूप से युद्ध अप्रैल में शुरू हुआ, जब पाकिस्तान ने आतंक, बलात्कार और हत्या की लहर फैलाई, जिसके कारण लगभग नौ मिलियन शरणार्थी भारत में आ गए।
भारतीय सरकार ने संकट के समाधान के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय से बार-बार हस्तक्षेप करने की गुहार लगाई, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हजारों शरणार्थियों ने भारत की अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव डाला और कानून-व्यवस्था की समस्या भी पैदा कर दी। इस संकट को दुनिया के बाकी हिस्सों ने पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया और अंततः प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने फैसला किया कि पाकिस्तान के खिलाफ सशस्त्र कार्रवाई करनी होगी।
भारत सर्दियों का इंतजार कर रहा था जब हिमपात से हिमालयी दर्रे बंद हो जाएंगे, जिससे चीनी हस्तक्षेप मुश्किल हो जाएगा। 3 दिसंबर की शाम को, पाकिस्तानी वायु सेना ने आगरा सहित भारत के ग्यारह हवाई अड्डों पर पूर्व-नियोजित हमला किया। उसे उम्मीद थी कि संकट को बढ़ाकर वह चीन और अमेरिका को इसमें शामिल होने के लिए मजबूर करेगा और फिर संयुक्त राष्ट्र का

हस्तक्षेप होगा। लेकिन उसने भारतीय सेना की त्वरित प्रतिक्रिया को नजरअंदाज कर दिया।
उस शाम इंदिरा गांधी ने रेडियो पर घोषणा की कि हवाई हमले पाकिस्तान द्वारा युद्ध की घोषणा हैं और भारतीय सेना इसका जवाब देगी। इस युद्ध की योजना और संचालन अनुकरणीय था। भारतीय वायु सेना ने 48 घंटों के भीतर पूर्वी मोर्चे पर पूर्णतः प्रभुत्व स्थापित करके सराहनीय सफलता प्राप्त की। इससे आगे बढ़ रही सैन्य टुकड़ियों को दिन के उजाले में भी बिना किसी आशंका के आगे बढ़ने में सहायता मिली।
कुशल योजनाकारों और प्रेरित सैनिकों के दम पर, जवाबी कार्रवाई त्वरित और निर्णायक साबित हुई। 15 दिनों के भीतर युद्ध समाप्त हो गया, 90,000 से अधिक युद्धबंदियों को पकड़ा गया, पाकिस्तान को करारी हार का सामना करना पड़ा और बांग्लादेश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। पूर्वी पाकिस्तान में तैनात पाकिस्तानी सेनाओं के आत्मसमर्पण पत्र पर 16 दिसंबर 1971 को ढाका में हस्ताक्षर किए गए।
सेना के कई प्रतिष्ठानों में लगी हुई सुप्रसिद्ध तस्वीर में भारतीय सेना की पूर्वी कमान के जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोरा और पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सेना के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल ए. ए. के. नियाजी दिखाई दे रहे हैं।
यह युद्ध पूर्वी और पश्चिमी, दो मोर्चों में लड़ा गया था। इस युद्ध से वीरता की कई कहानियाँ सामने आईं। चार वीर योद्धाओं को परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया: 14 गार्ड्स के लांस नायक एल्बर्ट एक्का, 3 ग्रेनेडियर्स के मेजर होशियार सिंह, 17 हॉर्स के सेकंड लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल और वायुसेना के फ्लाइंग ऑफिसर निर्मल जीत सिंह सेखों। सेखों वायुसेना के एकमात्र अधिकारी हैं जिन्हें परमवीर चक्र प्राप्त हुआ है। केवल एक ही प्राप्तकर्ता—मेजर होशियार सिंह—जीवित बचे और उन्होंने अपनी कहानी सुनाई।

अल्बर्ट एक्का

एक आदमी ज़मीन पर बेसुध पड़ा है; उसके चारों ओर दलदल के गंदे बुलबुले हैं। उसके जूते सूखी मिट्टी से सने हैं, और उसे अपनी बाईं टांग पर एक चींटी रेंगती हुई महसूस हो रही है। वह एक इंच भी नहीं हिलता; चींटियाँ उसकी सबसे छोटी चिंता हैं। उसकी गर्दन से कुछ टपक रहा है और वह सहज ही उसे छूता है। यह पसीने से कहीं ज़्यादा चिपचिपा है। लांस नायक अल्बर्ट एक्का अपना हाथ आगे बढ़ाता है। अंधेरा होने के कारण कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन उसे खून की गंध से कोई हैरानी नहीं होती। अपनी हथेली को अपनी पैंट पर पोंछकर, वह फिर से अपनी बंदूक पकड़ लेता है।
जल्द ही सुबह होने वाली है। एक्का को यह बात पूर्व दिशा में रात के बैंगनी धुंध में से छनकर आती हल्की नारंगी रोशनी को देखने से पहले ही पता चल जाती है। वह आदिवासी है और अधिकांश आदिवासियों की तरह इन चीजों को सहज रूप से जानता है। तारे अभी भी आकाश में हैं जब वह घुटनों के बल बैठ जाता है और अपने हाथों में 7.62 राइफल लिए रेंगने लगता है।
उसकी बांह में फंसी गोली से उसकी बांह में तेज दर्द हो रहा है। एक और गोली उसकी गर्दन में लगी है, जिससे वह लड़खड़ाकर गिर पड़ता है, लेकिन दांत पीसकर खुद को संभाल लेता है। खुले घाव से खून की एक पतली धार रिस रही है जो उसके कॉलर से होते हुए गर्दन तक बह रही है। यह घाव अभी गर्म है और अभी दर्द नहीं कर रहा है, लेकिन वह जानता है कि खून बहने और दर्द से उसकी जान निकल जाएगी। फिलहाल दर्द को नजरअंदाज करते हुए, वह कोहनियों के बल आगे की ओर झुकता है और अंधेरे में रेंगते हुए उस पुराने दो मंजिला रेलवे सिग्नल भवन की ओर बढ़ता है, जहां से दुश्मन की मध्यम मशीन गन (एमएमजी) से गोलीबारी हो रही है।

जब लांस नायक अल्बर्ट एक्का उस इमारत तक पहुँचते हैं जहाँ दुश्मन सैनिकों ने बंकर बना रखा है, तो उनके कानों में मशीनगन की घातक गड़गड़ाहट गूंजती है। हर बार जब बंदूक चलती है, तो उनके पैरों तले ज़मीन काँप उठती है, और रात

उनके अपने सैनिकों की चीखों से भर जाती है, जो उसकी जानलेवा सटीकता और मारक क्षमता के सामने बेबस हैं। उनके अपने सैनिकों के पास जो बंदूकें हैं, वे शक्तिशाली मशीनगन की गोलीबारी का मुकाबला नहीं कर सकतीं। इस अभियान को सफल बनाने के लिए दुश्मन की मशीनगन को खामोश करना होगा।
अपनी राइफल को पीठ पर टांगकर, एक्का ने अपनी बेल्ट पर टंगी ग्रेनेड की ओर हाथ बढ़ाया। उसने दांतों से पिन निकालकर उसे एक झटके में थूक दिया और पुरानी ईंटों की इमारत के अंदर एक दरार से फेंक दिया। फिर वह ग्रेनेड की हल्की फुफकार के थमने का इंतजार करने लगा।
अंदर मौजूद दोनों सैनिकों को कुछ समझ आने से पहले ही ग्रेनेड फट गया, जिससे एक्का अचानक तेज रोशनी में आंखें सिकोड़ने लगा और पेट में लगे छर्रों से वह पीछे हट गया। ग्रेनेड के जोरदार विस्फोट से एक सैनिक दीवार से जा टकराया और खून के ढेर में तब्दील हो गया। दूसरा सैनिक सुरक्षित था और अभी भी एमएमजी पर झुका हुआ था।
एक्का इमारत से सटी जंग लगी पुरानी लोहे की सीढ़ी पर चढ़ता है और खिड़की से अंदर कूद जाता है। वह अपने कंधे से राइफल उतारता है और संगीन की चमकती धार से मशीन गन चला रहे सिपाही पर हमला कर देता है। घोंप-निकल, घोंप-निकल: उसे उस्ताद के निर्देश स्पष्ट रूप से याद हैं। उसके प्रशिक्षण को अभी मुश्किल से चार साल ही हुए हैं और वह हमेशा से एक शांत, लेकिन अच्छा विद्यार्थी रहा है, जो चुपचाप सबक सीखता रहता है।
अब सीखी हुई बातों को परखने का समय आ गया है। ठंडे गुस्से से चीखते हुए, एक्का मशीन गन ऑपरेटर पर टूट पड़ता है और जैसे ही वह मुड़ता है, एक्का अपनी संगीन उसके पेट में घुसा देता है। पूरी ताकत से संगीन बाहर निकालते हुए, वह अपनी राइफल उठाता है और फिर से संगीन को उस आदमी की छाती में घोंप देता है। बार-बार।
एमएमजी से अभी भी धुआं निकल रहा था जब उसका संचालक खून से लथपथ होकर नीचे गिर पड़ा। एक्का ने मृत व्यक्ति के चेहरे से खून पोंछा और खून से सनी संगीन को हाथों में लिए वहीं खड़ा रहा। उसकी आँखों में शांत संतुष्टि और अत्यधिक थकावट का भाव था।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] 1968

32 [illegible] ([illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 14 [illegible] [illegible] [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible]

शारीरिक दक्षता परीक्षा (बीपीईटी) उत्तीर्ण कर ली थी और अब वह लेफ्टिनेंट कोहली के सामने भावहीन खड़ा था, उनकी आंखों में देखने से इनकार कर रहा था। लेफ्टिनेंट कोहली ने नए सैनिक को सिर हिलाकर अभिवादन किया और उसे सैनिकों की सूची में शामिल करने का अनुरोध किया। 13 जनवरी 1968 को नई बटालियन के गठन के बाद से, इसमें सिख लाइट इन्फैंट्री, बिहार, कुमाऊं और गार्ड्स रेजिमेंट के जवान भर्ती हो रहे थे। अल्बर्ट बिहार रेजिमेंट से आया था। 'सच कहूँ तो, मैं उस सीधे-सादे, विनम्र और शांत स्वभाव के युवक से कुछ खास प्रभावित नहीं हुआ था। लेकिन वह आदिवासी था, इसलिए मुझे पता था कि वह शारीरिक रूप से फिट होगा और हमें बस यही चाहिए था,' सेना पदक से सम्मानित कर्नल कोहली, जो अब सेवानिवृत्त हैं और एक एटीएम सुरक्षा एजेंसी के दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय के प्रमुख हैं, याद करते हैं। अपने कॉन्फ्रेंस रूम में चाय का कप हाथ में लिए बैठे, वे धीरे से मुस्कुराते हुए अपने मन में उमड़ रही यादों को बयां करते हैं। 'हम युद्ध में साथ थे। मैं उसका कंपनी कमांडर था। लेकिन सच में, उस समय उसे देखकर कोई अंदाजा नहीं लगा सकता था कि अल्बर्ट हमें कितनी प्रसिद्धि दिलाएगा।'
मई 1968 में, 32 गार्ड्स (I) को मिजोरम में स्थानांतरित कर दिया गया। एक्का अब सेक्शन कमांडर थे, हालांकि वे अभी भी लांस नायक थे (सामान्यतः नायक ही सेक्शन कमांडर होता है)। वे धीरे-धीरे अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रहे थे। उन्होंने आतंकवाद विरोधी अभियानों में भाग लिया और असाधारण नवाचार दिखाया। वे अपने अधीनस्थों के साथ अच्छा व्यवहार करते थे और उनमें सम्मान की भावना पैदा करते थे। कर्नल कोहली याद करते हैं, 'उनका नेतृत्व और नियंत्रण बहुत अच्छा था, खासकर इसलिए क्योंकि वे बहुत ही शांत स्वभाव के थे और दूसरों से ज्यादा घुलते-मिलते या बोलते नहीं थे। उनका चेहरा हमेशा भावहीन रहता था और वे केवल जरूरत पड़ने पर ही बात करते थे। उनके चेहरे से यह कभी पता नहीं चलता था कि वे खुश हैं या दुखी, और वे क्या सोच रहे हैं।' उन्हें यह भी याद है कि अल्बर्ट को अपनी वेशभूषा या वर्दी की बिल्कुल परवाह नहीं थी। उन्हें जो भी वर्दी मिलती, वे उसे पहन लेते थे, दर्जी से सिलवाने की जहमत भी नहीं उठाते थे। नतीजा यह हुआ कि उनके दुबले-पतले शरीर पर कपड़े ढीले-ढाले लगते थे और इससे उनके कंपनी कमांडर को गुस्सा आता था, जो साफ-सुथरे पहनावे के मामले में काफी सख्त थे। कर्नल कोहली मुस्कुराते हुए कहते हैं, 'मैं अक्सर उनकी कमर पर लटकी बेल्ट खींचता था और उन्हें कहता

था कि वे अपना पहनावा ठीक करें।' हालांकि, इक्का ने जंगल में अपने शिकारी स्वभाव से अपनी दिखावट के प्रति उदासीनता की भरपाई कर दी। जब कंपनी गश्त पर होती, तो वह नाले से केकड़े पकड़कर, उन्हें आग पर भूनकर और नमक-मिर्च पाउडर छिड़ककर सैनिकों को परोसकर खाने को स्वादिष्ट बना देते थे। वे निशानेबाजी में माहिर थे और पक्षियों और जंगली सूअरों के लिए जाल बिछाने में भी निपुण थे। अक्सर वे अपनी बंदूक और गोलियों का जत्था लेकर जंगल से शिकार लेकर लौटते थे। और फिर जब युद्ध का समय आता, तो वे वहां भी शानदार ढंग से अपनी प्रतिभा साबित करते थे।
समस्या मार्च 1971 में शुरू हुई, जब 32 गार्ड्स बटालियन दिमागिरी में तैनात थी, और शरणार्थी बड़ी संख्या में भारत में प्रवेश करने लगे। हर कोई समझ गया था कि युद्ध की घोषणा होना तय है। नौ महीने बीत गए और अंततः दिसंबर में आदेश आ गए।

गंगासागर, पूर्वी मोर्चा, बांग्लादेश मुक्ति युद्ध
3 दिसंबर 1971 की रात
अल्फा और ब्रावो कंपनियों को गंगासागर रेलवे स्टेशन पर हमला करने का आदेश दिया गया था, जिसे दुश्मन ने चारों ओर बंकर बनाकर एक तरह से किले में बदल दिया था। सी कंपनी को ध्यान भटकाने के लिए भेजा गया, जबकि डी कंपनी बटालियन मुख्यालय में ही रही। तोपखाने को तैयार रखा गया था, लेकिन उसका इस्तेमाल नहीं किया गया, क्योंकि लक्ष्य चुपचाप दुश्मन के बचाव क्षेत्र में घुसकर उसे चौंकाना था और बड़ी तोपों से दुश्मन सतर्क हो जाते।
रात के 2 बजे अल्फा और ब्रावो कंपनियों के जवान दुश्मन के इलाके में आगे बढ़ने लगे। चूंकि इलाका दलदली था और वहां चलने वाला सैनिक आसानी से घुटनों तक कीचड़ में धंस सकता था, इसलिए जवानों को 8-10 फीट ऊंचे और उतने ही चौड़े तटबंध पर बिछाई गई रेलवे पटरी के साथ एक-एक करके चलने के लिए कहा गया। दुश्मन सैनिकों को पहले भी पटरी पर चलते देखा गया था, इसलिए पहरेदारों को पता था कि इलाके में बारूदी सुरंगें नहीं बिछी हैं।

योजना के अनुसार, अल्फा कंपनी पटरी के दाहिनी ओर और ब्रावो कंपनी बाईं ओर चलने लगी। जवान रात के अंधेरे में चुपचाप, एक के पीछे एक, आगे बढ़ रहे थे। दोनों कंपनियों के बीच तालमेल बनाए रखने के लिए, लांस नायक गुलाब सिंह और लांस नायक एक्का को तटबंध के ऊपर मार्गदर्शक नियुक्त किया गया था। दोनों सैनिक अपनी-अपनी कंपनियों को ऊपर से रास्ता दिखाते हुए, पटरी के दोनों ओर से मार्गदर्शन कर रहे थे। आदेश था कि जवान पटरी के साथ-साथ आगे बढ़ेंगे और दुश्मन को देखते ही हमला कर देंगे। बी कंपनी के कमांडर मेजर कोहली (उनका पदोन्नति हो चुका था) सैनिकों के साथ पटरी के किनारे नीचे चल रहे थे। उन्हें ठीक ऊपर एक्का दिखाई दे रहा था, जिसका पतला शरीर रात के अंधेरे में एक काली परछाई की तरह चुपचाप आगे बढ़ रहा था। इसी तरह दोनों कंपनियां पटरी के दोनों ओर, दोनों मार्गदर्शकों के साथ, दुश्मन की स्थिति तक पहुँचने तक आगे बढ़ती रहीं।
सब कुछ ठीक चल रहा था, तभी एक गाइड दुश्मन सैनिकों द्वारा रेलवे लाइन पर बिछाए गए तार पर चढ़ गया। जैसे ही तार फटा, उससे आसमान में आतिशबाजी की तरह रोशनी फैल गई, जिससे पूरा इलाका दिन के उजाले की तरह जगमगा उठा। ऊपर खड़े दोनों लोग खतरे में आ गए। एक्का जहां खड़ा था, उससे महज 40 गज की दूरी पर दुश्मन का एक बंकर था, जिसके बाहर एक संतरी तैनात था।
शोर और रोशनी से चौंककर, पहरे पर तैनात सिपाही चिल्लाया: 'कौन है वहां?' (वहां कौन है?) रात के 2:30 बज रहे थे और वह अभी भी यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि ट्रिप वायर किसी इंसान ने चालू किया था या किसी जानवर ने। एक्का ने जवाब दिया, 'तेरा बाप' और अपनी बंदूक से भयंकर हमला करते हुए उसने दुश्मन सैनिक को संगीन से मार डाला।
जिस पहले बंकर का उन्हें सामना करना पड़ा, उसमें चार आदमी, एक हल्की मशीनगन (LMG) और एक रिकॉइललेस (RCL) बंदूक थी। एक्का को हाथ में गोली लगी, लेकिन बंकर पर जल्द ही कब्जा कर लिया गया।
इसके बाद अफरा-तफरी मच गई। पाकिस्तानी सैनिकों ने रोशनी करने वाले गोले दागकर इलाके को रोशन कर दिया। दोनों हमलावर कंपनियों पर एलएमजी और एमएमजी से गोलियां चलाई गईं। रात गोलियों की आवाज और एक-दूसरे पर हमला करते सैनिकों की चीखों से गूंज उठी। रेलवे स्टेशन के पीछे एक तालाब था जिसके चारों ओर बांध बना हुआ था और दुश्मन सैनिकों ने कई बंकर बनाकर पूरे इलाके को किलेबंद कर रखा था। ए और बी कंपनियां, जिनमें से प्रत्येक में 120

सैनिक थे, यहीं पर अलग हो गईं। ए कंपनी सीधे आगे बढ़ी, जबकि बी कंपनी तालाब के चारों ओर घूमते हुए एक दुश्मन बंकर से दूसरे बंकर की ओर बढ़ी। मोलोटोव कॉकटेल तैयार करके सक्रिय किए गए। उन्हें दुश्मन सैनिकों पर फेंकते हुए दोनों कंपनियां अपनी जान की परवाह किए बिना आगे बढ़ीं। वे एक बंकर से दूसरे बंकर में गईं, सशस्त्र सैनिकों पर हमला किया और दुश्मन के ठिकानों पर कब्जा कर लिया। उनका एकमात्र लक्ष्य दुश्मन सैनिकों को मारना और बंकरों को खाली कराना था।
हाथ में गोली लगने के बावजूद एक्का शेर की तरह आगे बढ़ रहा था। वह मेजर कोहली के साथ चल रहा था तभी एक और गोली उसकी गर्दन में जा लगी।
कोहली ने उसे लड़खड़ाते और गिरते हुए देखा। 'लेकिन फिर, वह जल्दी से उठा, सीधा खड़ा हुआ और चलता रहा,' वह बताते हैं।
तब तक सैनिक रेलवे सिग्नल भवन तक पहुँच चुके थे, जहाँ से एमएमजी लगातार गोलीबारी कर रही थी। यह सैनिकों के लिए एक बड़ी बाधा थी। इस घातक मशीन गन को खामोश करना आवश्यक था। ठीक यहीं पर एक्का ने अपनी वीरता का सर्वोच्च कार्य किया।

गंगासागर की लड़ाई में 11 सैनिक शहीद हो गए, जबकि एक अधिकारी, तीन कनिष्ठ कमीशंड अधिकारी (जेसीओ) और 55 अन्य सैनिक गंभीर रूप से घायल हो गए। 25 शत्रु सैनिक मारे गए, जबकि छह को युद्धबंदी बना लिया गया। बटालियन को अपने जवानों की वीरता के लिए तीन सेना पदक, एक वीर चक्र और एक परमवीर चक्र (पीवीसी) से सम्मानित किया गया।
एक्का के वीरतापूर्ण कार्य के अलावा, जिसके लिए उन्हें मरणोपरांत पीवीसी पदक से सम्मानित किया गया, गंगासागर की लड़ाई में कई व्यक्तिगत बलिदान और साहस के उदाहरण देखने को मिले। आरसीएल प्लाटून के तिलक राम ने दुश्मन की आरसीएल तोप की सटीक स्थिति का पता लगाया और अपनी जान की परवाह न करते हुए दुश्मन पर हमला कर दिया, जिससे मौके पर ही दो सैनिक मारे गए। उनकी इस वीरता के लिए तिलक राम को सेना पदक से सम्मानित किया गया। युवा तोपखाना अधिकारी कैप्टन के. महादेवन, जो अपनी ही टुकड़ियों को गोलाबारी में सहायता प्रदान

कर रहे थे, बार-बार दुश्मन की गोलीबारी की चपेट में आए, लेकिन उन्होंने हिलने से इनकार कर दिया और भारतीय सैनिकों की सहायता के लिए तोपखाने से गोलाबारी करते रहे। उन्हें भी सेना पदक से सम्मानित किया गया।
रेलवे लाइन के साथ आगे बढ़ते हुए भी भारी गोलाबारी का सामना करना पड़ा। दाहिनी अग्रिम पंक्ति के कमांडर मेजर तारा ने बिना सोचे-समझे दुश्मन की एमएमजी (मैरीमेल गन) की ओर दौड़ लगाई और बंकर पर मोलोटोव कॉकटेल और ग्रेनेड फेंककर तोप को बाहर निकाल लिया। इस साहसी कार्रवाई के लिए उन्हें वीर चक्र से सम्मानित किया गया।
एक्का को दिया गया पीवीसी (पुलिस बैज) इस कार्रवाई से जुड़े सभी लोगों के लिए और भी खास था क्योंकि यह बिहार में आने वाला पहला पीवीसी था और गार्ड्स ब्रिगेड द्वारा जीता गया पहला पीवीसी भी था। पूर्वी मोर्चे पर दिया गया यह एकमात्र पीवीसी था।

लांस नायक अल्बर्ट एक्का, जूलियस और मरियम एक्का के पुत्र थे। बिहार के एक गाँव में जन्मे और पले-बढ़े अल्बर्ट रांची के एक आदिवासी समुदाय से थे और एक धर्मनिष्ठ ईसाई थे। बचपन से ही अल्बर्ट को शिकार का शौक था और सभी आदिवासियों की तरह वे जानवरों का पता लगाने और उनका शिकार करने में माहिर थे, अक्सर वे धनुष-बाण का इस्तेमाल करते थे। वे खेलों में भी निपुण थे। रोमांच के प्रति उनके प्रेम और शिकार करने के कौशल ने उन्हें एक उत्कृष्ट सैनिक बनाया। जब अल्बर्ट बड़े हुए, तो वे सेना में शामिल होने के लिए बहुत उत्सुक थे क्योंकि यह उनके रोमांच और कर्मठता के भाव को आकर्षित करता था।

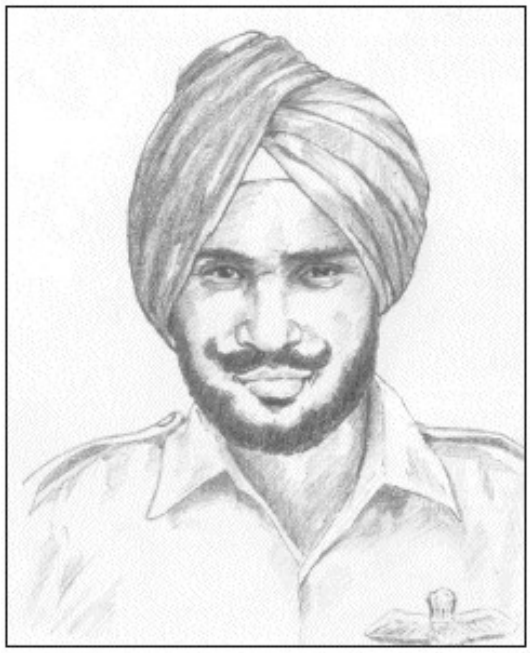

Nirmal Jit Singh Sekhon

Srinagar
14 दिसंबर 1971
श्रीनगर वायुसेना अड्डे पर आज फिर कड़ाके की ठंड पड़ रही है। और इस कड़ाके की ठंड को 26 वर्षीय लंबे-पतले फ्लाइंग ऑफिसर निर्मल जीत सिंह सेखों (जिनकी मूंछें करीने से सजी हुई हैं) और फ्लाइट लेफ्टिनेंट बलधीर सिंह घुमन से बेहतर कौन समझ सकता है? ये दोनों सुबह 4:30 बजे ही एक ऐसी बस में वहाँ पहुँच गए हैं जिसकी ज़्यादातर खिड़कियाँ टूटी हुई हैं। बादामी बाग़ स्थित ऑफिसर्स मेस से, जहाँ वे कम रोशनी वाले कमरों में रहते हैं, वायुसेना तक की 45 मिनट की यात्रा ने उनके दाँत किटकिटा दिए हैं और उनके जोड़ों को लगभग जमा दिया है, लेकिन 18 स्क्वाड्रन (फ्लाइंग बुलेट्स) के पायलटों के लिए यह रोज़ का काम है। सुबह की शिफ्ट में तैनात पायलटों को सुबह होने से कम से कम आधा घंटा पहले अड्डे पर पहुँचकर युद्ध के लिए तैयार रहना होता है। दो मिनट के स्टैंडबाय पर तैनात पायलटों को अपने खड़े विमानों के कॉकपिट में अपनी सीटों पर बंधे रहना पड़ता है, लेकिन अत्यधिक ठंड के कारण उन्हें हर तीन घंटे बाद छुट्टी दे दी जाती है।
दोनों युवा अधिकारी छोटे, तंग एयरक्रू कक्ष में बैठे हैं, जो उस जगह से 30 मीटर दूर है जहाँ उनके ग्नेट विमान खुले में, लेकिन बड़े करीने से छिपाए गए, बाड़ों में खड़े हैं। चूंकि आज सुबह बहुत घना कोहरा है और उड़ान के लिए दृश्यता बहुत कम है, इसलिए उन्हें दो मिनट की स्टैंडबाय ड्यूटी से हटा दिया गया है, लेकिन वे अभी भी हवाई रक्षा अलर्ट और पांच मिनट की स्टैंडबाय ड्यूटी पर हैं, जिसका मतलब है कि वे पांच मिनट में उड़ान भरने में सक्षम होंगे।
दोनों 18 स्क्वाड्रन के हैं, जो पहले अंबाला में तैनात थी, लेकिन भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बढ़ने के बाद मार्च 1971 से श्रीनगर में तैनात है। अब तक, भारतीय वायु सेना जम्मू और कश्मीर में लड़ाकू विमानों की तैनाती पर संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंधों का पालन कर रही है। सेखों और घुमन दोनों कश्मीर के भूभाग और मौसम से अच्छी तरह वाकिफ हैं और दोनों को अपने विमान 'ग्नेट' पर पूरा भरोसा है। इन छोटे विमानों को 'सैबर स्लेयर' कहा जाता है,

क्योंकि 1965 के युद्ध में इन्होंने पाकिस्तानी सैबर जेट विमानों का डटकर मुकाबला किया था और उनमें से सात को मार गिराया था।
अचानक, अवंतीपुर एयरबेस से अलार्म बजता है। पाकिस्तानी सेबर जेट श्रीनगर की ओर बढ़ रहे हैं। चूंकि बेस पर वायु रक्षा रडार नहीं है और दृश्यता भी कम है, इसलिए दुश्मन के विमानों को बहुत करीब आने तक पहचानना बेहद मुश्किल है। पश्चिम में पहाड़ी की चोटी पर निगरानी चौकियों की एक श्रृंखला स्थापित की गई है, जहां स्थानीय रेजिमेंट के एक सैनिक को ड्यूटी पर लगाया गया है। उसके पास बैटरी से चलने वाला रेडियो सेट है और उसका काम हवा में दुश्मन के विमान को देखते ही तुरंत सूचना देना है।
दोनों लड़ाकू पायलटों को स्टैंडबाय 2 पर रहने का आदेश दिया जाता है। वे एयरक्रू रूम से बाहर निकलते हैं और अपने भरोसेमंद गनेट्स (विमान) के बाड़े की ओर दौड़ पड़ते हैं। हेलमेट पहनकर, सेखों, जिसे उसके दोस्त भाई कहते हैं, अपने गनेट में चढ़ जाता है। घुमन, जिसे लोकप्रिय रूप से जी'मैन कहा जाता है, अपने विमान की ओर दौड़ पड़ता है। दोनों बेहद उत्साहित हैं। हर पायलट की ख्वाहिश होती है कि उसे युद्ध में हिस्सा लेने का मौका मिले और ऐसा लगता है कि आज इन दोनों का सपना सच होने वाला है।

उस दिन पहले, पाकिस्तान में पाकिस्तान वायु सेना के 26 स्क्वाड्रन (ब्लैक स्पाइडर्स) के चार और दो एफ 86 सेबर विमानों का एक दस्ता पेशावर वायुसेना अड्डे से उड़ान भरता है और कश्मीर की ओर बढ़ता है। उन्हें कश्मीर घाटी में घुसकर श्रीनगर पर बमबारी करने, वापस मुड़ने और पाकिस्तान लौटने का आदेश दिया गया है। प्रत्येक विमान में दो 500 पाउंड के बम हैं और वे हमले के लिए तैयार हैं। सभी छह सेबर विमानों में अतिरिक्त ईंधन के लिए 760 लीटर के बाहरी टैंक भी लगे हैं। इनमें से चार बमबारी मिशन पर हैं, जबकि अन्य दो हमले में सहायता के लिए उनका साथ दे रहे हैं। दोनों विमानों में छह पूरी तरह से भरी हुई एम 3 ब्राउनिंग मशीनगनें हैं।

14 दिसंबर को श्रीनगर वायुसेना पर हुआ हमला पहली बार नहीं था जब इस खूबसूरत शहर पर पाकिस्तानी वायुसेना के विमानों ने बमबारी की थी। 1971 के युद्ध में, श्रीनगर वायुसेना पर दिनदहाड़े 14 बार ऐसे हमले हुए थे। एयर कमोडोर (रिटायर्ड) रमेश वी. फडके, जो सेखों के सहपाठी थे और युद्ध के दौरान श्रीनगर में उसी स्क्वाड्रन में तैनात थे, के अनुसार, इसका कारण सिर्फ घाटी तक पाकिस्तान की आसान पहुँच ही नहीं थी, बल्कि यह भी था कि उन्होंने श्रीनगर में एक खुफिया एजेंट तैनात कर रखा था, जो घातक 'गैनट' मिसाइलों के हवा में होने की सूचना उन्हें देता था। वे कहते हैं कि दो से अधिक मौकों पर दुश्मन के विमान पीर पंजाल दर्रे से पीछे हट गए थे क्योंकि उन्हें सूचना मिली थी कि खूंखार 'सैबर स्लेयर' मिसाइलें हवा में हैं।

आज सुबह, सैबरे विमान पाकिस्तान की सीमा पार करते हुए 10,000 फीट की ऊंचाई पर पीर पंजाल पर्वतमाला के ऊपर से उड़ते हुए भारत में प्रवेश कर गए। अवंतीपुर वायुसेना अड्डे के ऊपर से गुजरते समय उन्हें देख लिया गया और तुरंत अलर्ट जारी कर दिया गया। श्रीनगर वायुसेना अड्डे पर, सेखों और घुमन ने अपने ग्नेट विमानों को उड़ाना शुरू कर दिया था। वायुसेना अड्डे पर 3,500 गज का रनवे, एक समानांतर टैक्सी ट्रैक और रनवे के बिल्कुल अंत में कंक्रीट से बने कुछ विमान आश्रय स्थल हैं, जिन्हें ब्लास्ट पेन कहा जाता है, जहां आमतौर पर एक समय में चार ग्नेट विमान तैनात रहते हैं। दोनों लड़ाकू पायलट रनवे के पूर्वी किनारे पर बने एक गड्ढे में स्थित वायु यातायात नियंत्रण केंद्र से उड़ान भरने की अनुमति का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। पास आते विमानों का शोर हर पल बढ़ता जा रहा था और अब उनके कानों में गूंज रहा था। घुमन ने और इंतजार न करने का फैसला किया और उड़ान भर ली। तब तक सैबरे विमान उनके सिर के ऊपर थे और उनमें से दो नीचे उतरकर हवाई पट्टी पर गोलाबारी कर रहे थे।
अपनी जान के खतरे की परवाह न करते हुए, सेखोन, जो रनवे के खाली होने का इंतजार कर रहा था, अगले 20 सेकंड में उड़ान भर लेता है। जैसे ही दो सेबर विमानों ने हवाई पट्टी पर बम गिराए, उसका ग्नेट विमान बड़ी शान से हवा में

ऊपर उठ गया। उसके नीचे हवाई पट्टी पर धुंए निकलते गड्ढे दिखाई दे रहे थे। उसके ऊपर, कहीं कोहरे में, घुमन थी। आदर्श रूप से, दुश्मन के विमान ऊपर थे और रनवे पर बमबारी शुरू कर चुके थे, इसलिए उड़ान भरने का आदेश रद्द कर दिया जाना चाहिए था, लेकिन सेखोन को इसकी कोई परवाह नहीं थी, वह मन ही मन मुस्कुराया और जॉयस्टिक खींच ली। उसे तब पता नहीं था कि यह आखिरी बार होगा जब वह और घुमन एक साथ उड़ान भरेंगे।

हवा में पहुँचते ही, सेखोन बमबारी के बाद फिर से संगठित हो रहे दो सेबर विमानों के ठीक पीछे आ जाता है और उनका पीछा करना शुरू कर देता है। घुमन कोहरे में खो जाता है। वे एक-दूसरे से बिछड़ चुके हैं और अब दोबारा नहीं मिल पाएंगे। हवाई लड़ाई खत्म होने के आधे घंटे बाद घुमन बमबारी से तबाह हवाई पट्टी पर वापस उतरेगा। पेड़ों की ऊँचाई पर भयंकर और साहसी लड़ाई के बाद, संख्या में बहुत कम होने के कारण सेखोन तब तक घाटी में दुर्घटनाग्रस्त हो चुका होगा, उसका पैराशूट केवल आधा ही खुला होगा।
जैसे ही सैबर विमानों को एहसास हुआ कि उनका पीछा नन्हा लेकिन घातक गनैट कर रहा है, उन्होंने तेज़ी से बाएँ मोड़ लिया। जोश से भरे सेखों ने भी उनके साथ मुड़कर निडरता से उनका पीछा किया। रेडियो पर उनकी आवाज़ गूंजी: 'मैं दो सैबर विमानों के पीछे हूँ। मैं इन कमीनों को भागने नहीं दूँगा।' इसी बीच, सैबर नंबर 3 और 4 ने भी अपने बम गिरा दिए और ऊपर उठने लगे। सैबर नंबर 3 ने हवाई लड़ाई को देखा और सेखों द्वारा पीछा किए जा रहे दो सैबर विमानों के साथ मिल गया, जबकि सैबर नंबर 4, शायद कोहरे के कारण रास्ता भटक गया, पाकिस्तान की ओर वापस मुड़ गया। सेखों ने सैबर नंबर 2 के पीछे मोर्चा संभाला और अपनी 30-मिमी बंदूक से गोलीबारी शुरू कर दी। हवाई अड्डे पर परिचित गोलीबारी की आवाज़ सुनाई दी। सैबर से आग और धुएँ का गुबार उठता दिखाई दिया। 18 स्क्वाड्रन के फ्लाइट लेफ्टिनेंट बोपाया और नालियान ने बाद में पुष्टि की कि उन्होंने सैबर विमान के दाहिने पंख में आग लगी हुई देखी थी। पाकिस्तान ने किसी भी हमले से इनकार किया।

सेखोन ने अपने इंजन की रफ्तार बढ़ा दी और अब उसने सैबर नंबर 1 का पीछा करने का फैसला किया। हालांकि, सैबर नंबर 3 ने दूरी कम कर ली थी और सेखोन दोनों बड़े विमानों के बीच फंस गया था, जबकि पीछे वाला विमान उस पर गोलीबारी कर रहा था। तीनों के बीच भयंकर हवाई लड़ाई शुरू हो गई। रेडियो पर सेखोन की आवाज सुनाई दी, 'मैं खुशी के घेरे में हूं, लेकिन दो सैबर विमानों के बीच। मैं एक के पीछे आ रहा हूं, लेकिन दूसरा मुझ पर हावी हो रहा है।'
हवाई अड्डे से देखने वालों को कोई भी कार्रवाई दिखाई नहीं देती। सेखोन के पीछे वाला सैबर विमान लगातार 0.5 इंच की गोलियों की बौछार कर रहा है, लेकिन सेखोन कुशलता से उनसे बचते हुए आगे वाले सैबर का पीछा करते रहते हैं। तीसरे सैबर विमान की सारी गोलियां खाली हो जाती हैं और वह निशाना नहीं लगा पाता। पाकिस्तानी तब चौंक जाते हैं जब रेडियो पर पायलट की आवाज कर्कश होकर सुनाई देती है: 'थ्री इज़ विनचेस्टर', जिसका मतलब है कि उसने 1,800 राउंड फायर कर दिए हैं और अब उसकी बंदूकें और फायर नहीं कर सकतीं।
गोला-बारूद खत्म होने पर, सेखोन लड़ाई से बाहर हो जाता है और अब खतरे से मुक्त हो जाता है। वह इस क्षणिक राहत का फायदा उठाकर अपने बाहरी ईंधन टैंकों को सीधा करके नीचे गिरा देता है, जिससे वह हल्का और अधिक फुर्तीला हो जाता है। वह नए जोश के साथ सेबर नंबर 1 का पीछा करता है। पहले से कहीं अधिक फुर्तीला होकर, वह और भी तेज़ी से मुड़ने लगता है। सेबर अपने पीछे लगे ग्नेट से बचने की पूरी कोशिश करता है, लेकिन सेखोन उसके करीब पहुँच जाता है और सेबर को अपनी मारक क्षमता में लाते ही, अपनी 30-मिमी तोप से उस पर गोलीबारी शुरू कर देता है। सेबर हार मान लेता है और मदद के लिए SOS कॉल करता है।
सेखोन को इस बात का बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि हमलावर सैबर विमानों के समूह में वास्तव में चार नहीं बल्कि छह विमान हैं और दोनों एस्कॉर्ट विमान दूर से लड़ाई देख रहे हैं, और ग्नेट की फुर्ती से विशाल सैबर को बंदी बनाए रखने को देखकर चकित हैं। आपातकालीन संदेश (SOS) सुनकर वे नीचे की ओर गोता लगाते हैं। गोता लगाने से गति का लाभ उठाते हुए, एक सैबर सेखोन के करीब आ जाता है। सेखोन ने दोनों नए आने वालों को देखा और महसूस किया कि वह संख्या में कम है। पीछे वाला सैबर अपनी मशीन गन से ग्नेट पर निशाना साधता है और लगातार हमला करता है। ग्नेट को गोलियां लगती हैं।

मुझे लगता है मुझ पर हमला हुआ है, जी मैन आकर उन्हें ले जाओ,’ यह सेखोन का आखिरी संदेश था। धुआं और आग छोड़ते हुए, छोटा सा गनैट खुद को संभालने की कोशिश करता है, लेकिन लगातार नीचे गिरता जाता है और पीछे की ओर पलट जाता है। वह नीचे की ओर गोता लगाता है और बडगाम के पास एक खाई में जा गिरता है। सेखोन इजेक्ट करके खुद को बचाने की कोशिश करता है, लेकिन वह बहुत नीचे होता है और उसका पैराशूट ठीक से नहीं खुलता। वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। घुमन आधे घंटे बाद बुरी तरह से बमबारी से क्षतिग्रस्त रनवे पर उतरता है। जब दुर्घटनाग्रस्त गनाट अंततः मिली, तो उसके पिछले धड़, टेल प्लेन और फिन के आसपास 37 गोलियों के छेद थे। हालांकि, इसने अकेले ही छह सैबर विमानों के हमले को नाकाम कर दिया, जो एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।
1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में उनके अनुकरणीय साहस और वीरता के लिए, फ्लाइंग ऑफिसर सेखों को मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया है। वे देश के सर्वोच्च वीरता पुरस्कार से सम्मानित होने वाले एकमात्र वायुसेना कर्मी हैं।

निर्मल जीत सिंह सेखों का जन्म 17 जुलाई 1945 को पंजाब के लुधियाना के रुरकाइसवाल गांव में हुआ था। वे वारंट ऑफिसर त्रिलोक सिंह सेखों के पुत्र थे, जिससे वे भारतीय वायु सेना के दूसरी पीढ़ी के अधिकारी बने।
सेखों को 4 जून को वायु सेना में कमीशन मिला। वे 97 जीडी (पी) पायलट कोर्स के छात्र थे और अक्टूबर में उन्हें नंबर 18 स्क्वाड्रन (फ्लाइंग बुलेट्स) में तैनात किया गया था। वे एक बहादुर लेकिन विनम्र व्यक्ति थे, जिन्हें ग्नेट विमान उड़ाने का व्यापक अनुभव था। छह फीट से अधिक लंबे सेखों का कद दुबला-पतला था और उनकी चाल थोड़ी अटपटी थी, जिससे लोग अक्सर हैरान रह जाते थे कि वे छोटे से ग्नेट विमान के कॉकपिट में कैसे समा पाते हैं। वे एक साधारण ग्रामीण पृष्ठभूमि से थे और उनके सहपाठी और मित्र उन्हें प्यार से 'भाई' कहकर पुकारते थे, क्योंकि उनकी हर बातचीत की शुरुआत 'भाई' शब्द से होती थी, जो शायद उनके गांव में इस्तेमाल होने वाले शब्द 'भाई' का शाब्दिक अनुवाद था।

उनकी मृत्यु छब्बीस वर्ष की आयु में हुई और उनकी शादी को कुछ ही महीने हुए थे, जिनमें से अधिकांश समय उन्होंने श्रीनगर में ड्यूटी पर बिताया था। उन्हें पाकिस्तान द्वारा श्रीनगर वायुसेना पर बमबारी के दौरान वीरतापूर्ण कार्य के लिए परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया था। युवा और नाजुक श्रीमती सेखों की सफेद शॉल ओढ़े राष्ट्रपति वी.वी. गिरि से परमवीर चक्र प्राप्त करते हुए की यह मार्मिक छवि भारतीय वायु सेना के अभिलेखों में अमर हो गई है। श्रीमती सेखों ने बाद में पुनर्विवाह किया।
स्वतंत्र शोधकर्ता और सेवानिवृत्त एयर कमोडोर रमेश वी. फडके, जो निर्मल जीत सिंह सेखों के सहपाठी थे, ने अपनी यादें और शोध साझा करके श्रीनगर हवाई अड्डे के माहौल को फिर से जीवंत करने में मदद की है। यह शोध उनकी अप्रकाशित पुस्तक 'एयर पावर एंड नेशनल सिक्योरिटी' के लिए किया जा रहा है।

अरुण खेतरपाल

बसंतर की लड़ाई, शकरगढ़ सेक्टर 16 दिसंबर 1971
साइप्रस के एक बंदरगाह के नाम पर रखे गए अपने तंग सेंचुरियन युद्धक टैंक, फामागुस्टा में बैठे, द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल अपनी तिरछी निगाहों से अपने सामने दुश्मन के टैंकों को देख रहे हैं। उनमें से अधिकांश क्षतिग्रस्त और जल रहे हैं, जिनकी लपटें आसमान को घने भूरे धुएं से भर रही हैं। वह अपने गनर द्वारा दागे गए गोले के प्रक्षेप पथ का अनुमान लगाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्हें पता चल जाएगा कि गोला निशाने पर लगा है या नहीं, क्योंकि जैसे ही किसी टैंक पर गोला लगता है, पाकिस्तानी सैनिक अपनी तोपें उठाकर भाग जाते हैं। उनका धर्म उन्हें जलकर मरने की अनुमति नहीं देता। खेतरपाल की गर्दन की नसें बेतहाशा फड़क रही हैं। अगर वह इसे भी मार गिराने में कामयाब हो गया, तो उसकी कुल संख्या पाँच हो जाएगी। वह जानता है कि उसका टैंक पहले ही आग की चपेट में आ चुका है और खुला पड़ा है। उसने रेडियो बंद कर दिया है क्योंकि उसे पीछे हटने का आदेश दिया जा रहा है। उसकी तोप अभी भी चल रही है और वह उन दुश्मनों को मार गिराना चाहता है। वह जानता है कि अपनी स्थिति बदलने से दुश्मन को मौका मिल जाएगा। वह ऐसा होने नहीं देगा। खेतरपाल के टैंक के गुंबद से एक गोला अंदर घुसता है और एक भयानक सीटी जैसी आवाज़ आती है। उस पल भर में, उसे एहसास नहीं होता कि गोले ने उसका पेट चीर दिया है—वह तब चौंक उठता है जब टैंक के भीतरी हिस्से में जलते हुए मांस की तीखी दुर्गंध फैल जाती है। फिर गोला आगे बढ़ता है और उसकी जांघ से टकराता है। यह हड्डी को चकनाचूर कर देता है और उसे इस तरह मोड़ देता है कि वह टैंक की सीट के नीचे फंस जाती है।
अत्यधिक रक्तस्राव से लथपथ, वह अपने गनर सवार नत्थू सिंह से, जो उससे टैंक से बाहर निकलने की गुहार लगा रहा था, धीमी और कर्कश आवाज़ में बस इतना ही कह पाता है: 'मैं ऐसा नहीं कर पाऊंगा।' इतना कहते ही खेतरपाल गिर पड़ता है, उसके पेट में लगे खून से लथपथ घाव से आंतें बाहर निकल आती हैं। सुबह के लगभग 10:15 बज रहे थे। तारीख: 16 दिसंबर 1971। खेतरपाल अपनी अंतिम सांसें ले रहा था, उसकी उम्र 21 वर्ष थी।

अक्टूबर 2013
घिटोरनी मेट्रो स्टेशन से यू-टर्न लेने के कुछ ही देर बाद एक छोटा सा इंडियन ऑयल पेट्रोल पंप है, जिसके बाईं ओर 'फॉरेस्ट लेन' नाम का एक संकरा रास्ता है। उस रास्ते पर चलते हुए आप एक विशाल लोहे के गेट पर पहुँचेंगे जिस पर 'खेतरपाल' का नामपट्ट लगा है। अंदर एक खूबसूरत पुराना फार्महाउस है, जो दिल्ली की ढलती मानसूनी बारिश में धीरे-धीरे भीग रहा है। वहाँ मुझे परमवीर चक्र से सम्मानित द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल की 87 वर्षीय माताजी मिलीं। उनके आसपास एक युवा गोल्डन रिट्रीवर कुत्ता अपनी पूंछ हिलाता हुआ दौड़ रहा था और अपनी गीली नाक मेरी हथेली में रगड़ रहा था, फिर एक रबर की हड्डी चबाने के लिए बैठ गया। व्हीलचेयर पर बैठी महिला के बहुत छोटे सफेद बाल हैं, झुर्रीदार, बूढ़े हाथ हैं और थकी हुई आँखें मुझे उदास निगाहों से देख रही हैं। वह 42 साल पहले खोए अपने बेटे की धुंधली यादों को जोड़ने की कोशिश कर रही हैं।
न तो श्रीमती खेतरपाल और न ही मैं आज बसंतर के उस खूनी युद्धक्षेत्र को याद करना चाहते हैं, जहाँ से अरुण दिसंबर की एक ठंडी सुबह कभी वापस नहीं लौटा। हम तो बस यही बात करना चाहते हैं कि वह बचपन में कैसा था। क्या वह शांत था या मुखर, सौम्य था या चंचल? क्या वह अपने कमरे की बत्ती बंद होने पर अपने माता-पिता के साथ सोने की ज़िद करता था? क्या वह बारिश के पानी के रुके हुए तालाबों में मेंढक के बच्चे पकड़ता था या बगीचे में तितलियों का पीछा करता था? क्या वह अपने बालों को दाईं ओर से कंघी करता था या बाईं ओर से? क्या वह अपने जूते बिना फीते खोले ही उतार देता था?
मैं उस नायक के बारे में ये छोटी-छोटी बातें जानना चाहता हूँ जिन्हें मैं नहीं जानता। उन पलों के बारे में जब वह अपने सेना अधिकारी पिता के घर में काम कर रहे सैनिकों के पीछे-पीछे चलता और उनकी युद्ध कहानियाँ बड़े चाव से सुनता। जब वह उनके साथ लंगर में खाना खाने की ज़िद करता और फिर वापस आकर अपने पिता से कहता कि एक दिन वह भी सेना में भर्ती होगा। मैं उन पलों के बारे में जानना चाहता हूँ जब वह अपने दादाजी की गोद में सिर रखकर और अपनी छोटी उंगलियों को उनकी सूखी, खुरदरी उंगलियों में फंसाकर उनसे विभाजन की कहानियाँ सुनाने के लिए मनाता था।

महेश्वरी खेतरपाल मुझे ये सब बताना चाहती हैं। करीब एक घंटे तक वो कोशिश करती हैं। वो प्यार से उनका नाम अपने होंठों पर घुमाती हैं, अपने विचारों को समेटने की कोशिश करती हैं, उन्हें शब्दों में पिरोने की कोशिश करती हैं। लेकिन वो बस लंबे-लंबे, घुमावदार वाक्य ही बोल पाती हैं, जिनमें कुछ खास नहीं कहा गया। सच तो ये है कि उनकी याददाश्त कमजोर पड़ गई है। आखिरकार, वो हार मान लेती हैं। ‘अरुण हमारा बेटा था। पर अब हमें कुछ याद नहीं।’ उनकी आवाज़ में बेबसी और निराशा झलकती है। उनके पीछे, कमर पर हाथ रखे, युवा और सुंदर दिखने वाले द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल की एक काली-सफेद तस्वीर लगी है। वो अपनी मां के शयनकक्ष की दीवार से हम दोनों को देखकर मुस्कुरा रहे हैं।
मैं अपना डिक्टाफोन बंद कर देती हूँ और उसे उस बेटे के बारे में बताने लगती हूँ जिसे वह याद नहीं कर पा रही है—दिल्ली के सेंट कोलंबस स्कूल का आठ साल का लड़का, जो एक दोपहर अपने छोटे भाई का स्कूल बैग पीठ पर लादकर, उसका हाथ पकड़कर, गोल डाक खाना से सांगली मेस तक ढाई मील पैदल चलकर घर गया था, जब गाड़ी उन्हें लेने नहीं आई थी। मैं उसे बताती हूँ कि वह कितना बहादुर था, उसने अपने छोटे भाई को पल भर के लिए भी अपना डर महसूस नहीं होने दिया और जब वह अपनी माँ की बाहों में सुरक्षित घर पहुँच गया, तभी फूट-फूटकर रोया। मैं उसे शिलांग की उस दोपहर के बारे में बताती हूँ जब वह स्कूल से बिना अपने कार्डिगन के लौटा था। उसने उसे एक गरीब बच्चे को दे दिया था और झूठ बोला था कि वह खो गया है। तब वह छह साल का था। मैं उसे उस दिन के बारे में बताती हूँ जब उसे पहली तनख्वाह मिली थी और कैसे उसने उसमें से कुछ पैसे अपने दादाजी को यह संदेश लिखकर भेजे थे: ‘दादाजी, मेरी यह छोटी सी भेंट स्वीकार कीजिए।’ मैं उसे उस समय के बारे में बताती हूँ जब वह लॉरेंस स्कूल, सनावर से लौटा था और एक पार्टी में उसे सेना अधिकारी समझ लिया गया था, जिससे वह बहुत खुश हुआ था क्योंकि वह बहुत आत्मविश्वासी और शालीन था। मैं उसे उस किशोर के बारे में बताती हूँ जिसने राष्ट्रीय रक्षा अकादमी में दाखिला लिया, तैराकी में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और आरामदायक बैठक कक्षों में पार्टियों में अपने क्लैरिनेट पर ‘ऑल्ड लैंग साइन’ बजाता था और उसके लिए रॉबर्ट बर्न्स की कविता का अनुवाद करती हूँ; वह ऐसे सुनती है जैसे पहली बार सुन रही हो।

बहुत छोटे सफेद बालों वाली वह बूढ़ी महिला अक्सर अपनी व्हीलचेयर पर बैठी रहती है और हाथ में ठंडी हो चुकी चाय की चुस्कियां लेती रहती है। कांपती उंगलियों से वह धीरे-धीरे चम्मच भर नमकीन मुंह में डालती है। जब भी उसकी गोद में रखा कप और तश्तरी झुकती है, मैं उसे संभाल लेती हूं, कहीं चाय उसकी सूती नाइटड्रेस पर न गिर जाए।
मेरा उससे बस एक और सवाल है। क्या उसने अपने बड़े बेटे को, जो उस समय केवल 21 वर्ष का था, युद्ध में यह कहते हुए भेजा था: 'तुम्हारा दादा एक बहादुर सैनिक था, तुम्हारा पिता भी। शेर की तरह लड़ो और कायर बनकर मत लौटना।'
वह चाय गिराए बिना प्याला होठों तक उठाने के लिए अपनी पूरी इच्छाशक्ति लगा रही है। वह प्याले को हवा में ही रोक देती है और मेरी तरफ देखती है।
‘Kya aapne aisa kaha tha?’ (Did you say that?) I ask again.
‘हां, मैंने कहा था,’ वह दृढ़ता से कहती है। उसके झुर्रीदार चेहरे पर गर्व की एक झलक दिखाई देती है।

शीत ऋतु, 1971
ट्रेन की सीटी ज़ोर से बजी, एक ज़ोरदार कंपन हुआ, एक झटका लगा और फिर लोग जल्दी-जल्दी ट्रेन में चढ़ने लगे। पंजाब मेल नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से चलने लगी थी। अरुण दरवाजे से लटककर हाथ हिला रहा था। उसका भाई मुकेश, जो दिल्ली के IIT में पढ़ रहा था, चलती ट्रेन के साथ-साथ चल रहा था और उसे ईर्ष्या और चिंता से देख रहा था। अरुण ने अपनी नज़रें अपने माता-पिता, ब्रिगेडियर और श्रीमती खेतरपाल पर उठाईं, जो प्लेटफार्म पर खड़े थे और ट्रेन की रफ़्तार बढ़ने के साथ-साथ उससे दूर होते जा रहे थे। उसके पिता का हाथ उसकी माँ के कंधे पर था, उनके चेहरों पर बनावटी मुस्कान थी। वह जानता था कि वे सब हिम्मत दिखाने की कोशिश कर रहे थे। उसने भी उन्हें देखकर मुस्कुराया और फिर अपना दाहिना हाथ उठाकर अभिवादन किया। तब तक ट्रेन इतनी दूर जा चुकी थी कि वह अपनी माँ की आँखों में आँसुओं की चमक नहीं देख पाया। जब पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ा, तो अहमदनगर में चल रहे युवा अधिकारी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से कई युवा अधिकारियों को वापस बुला लिया गया था।

द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल भी उनमें से एक थे। वह और उनके यूनिट अधिकारी द्वितीय लेफ्टिनेंट बृजेंद्र सिंह बिना आरक्षण के दिल्ली जाने वाली ट्रेन में चढ़ गए। उनके लिए कोई सीट नहीं थी और उन्होंने किसी तरह पैंट्री कार में जगह बना ली। दिल्ली में, जब उन्हें ट्रेन बदलने के लिए कुछ घंटे मिले, तो अरुण ने अपनी मोटरसाइकिल उतारी और उसे नारायणा स्थित अपने माता-पिता के घर ले जाकर वहीं छोड़ दिया। वह पंजाब मेल के लिए समय पर लौट आए, खुशी-खुशी अपनी नीली गश्ती वर्दी और गोल्फ क्लब लिए हुए। जब सिंह ने उनसे पूछा कि युद्ध लड़ने जाते समय उन्हें गोल्फ क्लब और औपचारिक वर्दी की क्या ज़रूरत है, तो अरुण मुस्कुराए और बोले: 'मैं लाहौर में गोल्फ खेलने की योजना बना रहा हूँ। और मुझे यकीन है कि युद्ध जीतने के बाद एक डिनर पार्टी होगी, इसलिए मुझे नीली गश्ती वर्दी की ज़रूरत पड़ेगी।'
खेतरपाल परिवार के लिए युद्ध कोई नई बात नहीं थी। अरुण एक सैनिक परिवार से आते थे। उनके परदादा सिख सेना में थे और उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। उनके दादा ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सेना में सेवा की थी और अरुण के पिता, ब्रिगेडियर एम. एल. खेतरपाल, एक सैपर थे। सनावर में पढ़ाई पूरी करने के बाद, अरुण ने सेना अधिकारी बनने का फैसला किया और 1967 में राष्ट्रीय रक्षा अकादमी में दाखिला लिया। उन्हें 13 जून 1971 को भारतीय सेना की बख्तरबंद या टैंक इकाई, 17 पूना हॉर्स में कमीशन मिला। सेना में शामिल हुए उन्हें छह महीने ही हुए थे कि युद्ध छिड़ गया।

15 दिसंबर, रात 11 बजे।
सर्दी की रात घोर अंधेरी है। खेतों में उगी नन्ही गेहूँ की फसल हल्की हवा में धीरे-धीरे सरसरा रही है। दिन में यह चमकीले हरे रंग की दिखती थी। रात में यह एक नरम कालीन की तरह लगती है जिस पर से गुज़रे टैंकों के निशान दिखाई देते हैं, मानो रात के भूतों की तरह, जिन्होंने अपने भार से ताज़ी पत्तियों को कुचल दिया हो।
पूना हॉर्स के विशालकाय सेंटूरियन टैंक एक कतार में आगे बढ़ रहे हैं। प्रत्येक टैंक जलती हुई सिगरेट की नोक जितनी छोटी लाल टेल लाइट की हल्की

रोशनी से अपने आगे वाले टैंक का पता लगा रहा है। यह लाइट ज़मीन की ओर इस तरह से लगी है कि दुश्मन के टैंक या विमान इसे देख नहीं सकते, केवल पीछे वाला टैंक ही इसे देख सकता है। उनके निर्देश स्पष्ट हैं। उन्हें 1500 वर्ग गज के उस बारूदी सुरंग क्षेत्र को पार करना है जो टैंक-रोधी और सैनिक-रोधी बारूदी सुरंगों से भरा है, ताकि वे पुल के शीर्ष पर तैनात पैदल सेना तक पहुँच सकें। उन्हें यह काम तेज़ी से करना होगा।
उसी सुबह, 16 मद्रास रेजिमेंट के कमांडिंग ऑफिसर ने सूचना दी कि दुश्मन के टैंक एक बड़े जवाबी हमले के लिए इकट्ठा हो रहे हैं और अगर भारतीय टैंक जल्दी नहीं पहुँचे तो वे ज़्यादा देर तक टिक नहीं पाएंगे। पीछे हट रही पाकिस्तानी सेना अपने पीछे टैंक-रोधी और सैनिक-रोधी बारूदी सुरंगें छोड़ गई थी। इंजीनियरों का काम था कि वे इन बारूदी सुरंगों को पार करके टैंकों के लिए सुरक्षित रास्ता बनाएँ। जैसे ही इंजीनियर ट्रॉल मशीनों से बारूदी सुरंगों को साफ़ कर रहे थे, रेजिमेंट के टैंक उनके पीछे चलने लगे ताकि वे ब्रिजहेड में तेज़ी से प्रवेश कर सकें।

जब कर्नल (सेवानिवृत्त) एस. एस. चीमा, जिन्हें सेना पदक से सम्मानित किया गया है, युद्ध के बारे में बात करते हैं, तो वे कहते हैं कि हर एक घटना उनकी आंखों के सामने ऐसे कौतूहल कर जाती है मानो कल ही घटी हो। वे 3 ग्रेनेडियर्स में एक कंपनी कमांडर थे और उन्होंने जरपाल पर साहसी हमले के साथ-साथ दुश्मन के जवाबी हमलों के खिलाफ ब्रिजहेड पर डटे रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह 17 हॉर्स, 4 हॉर्स (दो बख्तरबंद रेजिमेंट) और 16 मद्रास का संयुक्त अभियान था। वे याद करते हैं कि कैसे 17 हॉर्स के कमांडिंग ऑफिसर लेफ्टिनेंट कर्नल हनुत सिंह ने फैसला किया कि जब सैपर्स द्वारा बारूदी सुरंगों को साफ करने का काम चल रहा था, तो उनके टैंक भी साथ-साथ चलेंगे, ताकि कीमती समय बचाया जा सके। वे जानते थे कि ब्रिजहेड पर पैदल सेना पर दुश्मन का दबाव कितना बढ़ रहा था और उन्हें एहसास था कि अगर उन्हें यह युद्ध जीतना है तो टैंकों को वहां तेजी से पहुंचना होगा। कर्नल चीमा कहते हैं, 'यह रेजिमेंट और इंजीनियरों का सबसे बेहतरीन समन्वित प्रयास

था।' 'इस अभियान को अभी भी सैन्य इतिहास में चमत्कारिक माना जाता है क्योंकि इसमें एक भी टैंक बारूदी सुरंग से नहीं उड़ा।'
16 दिसंबर
17 हॉर्स बटालियन की बी स्क्वाड्रन के कमांडर ने अतिरिक्त सैनिकों की मांग की क्योंकि पाकिस्तानी टैंकों ने शकरगढ़ सेक्टर के जरपाल में जवाबी हमला शुरू कर दिया था। यह वही इलाका है जिसे पहले 3 ग्रेनेडियर्स ने एक ऑपरेशन में अपने कब्जे में लिया था, जिसमें मेजर होशियार सिंह को पीवीसी और मेजर चीमा को सेना मेडल मिला था। कैप्टन मल्होत्रा, लेफ्टिनेंट अहलावत और सेकंड लेफ्टिनेंट खेतरपाल को बी स्क्वाड्रन की सहायता के लिए भेजा गया। लड़ाई इतनी भीषण थी कि कुछ ही मिनटों में उन्होंने दुश्मन के सात टैंकों को नष्ट कर दिया। हालांकि, अहलावत के टैंक पर हमला हुआ और उसमें आग लग गई। तभी खेतरपाल के टैंक पर भी हमला हुआ। कैप्टन मल्होत्रा ने उन्हें पीछे हटने और पैराशूट से कूदने का आदेश दिया। लेकिन खेतरपाल रुकने वाले नहीं थे। उन्होंने पीछे हट रहे दुश्मन के टैंकों का पीछा करना शुरू कर दिया और एक टैंक को मार गिराने में कामयाब भी हो गए। दुश्मन ने और टैंक भेज दिए।
इस लड़ाई के दौरान खेतरपाल बुरी तरह घायल हो जाते हैं। उन्हें अपना टैंक छोड़ने के लिए कहा जाता है, लेकिन उन्हें एहसास होता है कि दुश्मन उनके क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है और अगर वे अपना टैंक छोड़ देते हैं तो वे घुसपैठ कर लेंगे। पीछे हटने के लिए कहे जाने पर उन्होंने रेडियो पर मशहूर जवाब दिया, 'नहीं महोदय, मैं अपना टैंक नहीं छोड़ूंगा। मेरी तोप अभी भी काम कर रही है और मैं इन कमीनों को मार गिराऊंगा।' मल्होत्रा उन्हें एक बार फिर कहते हैं, 'मूर्ख मत बनो। टैंक से बाहर निकलो, वरना तुम और तुम्हारा दल मारे जाओगे।' खेतरपाल फिर कभी रेडियो पर नहीं आते। उन्होंने जानबूझकर अपना रेडियो सेट बंद कर दिया था। मल्होत्रा की तोप भी काम करना बंद कर चुकी थी, जिससे खेतरपाल को हमले को रोकने की ज़िम्मेदारी और भी ज़्यादा महसूस हुई। जब चार दुश्मन टैंक आगे बढ़ रहे थे, तभी उसने शांत भाव से एक-एक करके उन पर गोलियां बरसाना शुरू कर दिया। आखिरी टैंक जिस पर उसने गोली चलाई, वह उससे मात्र 75 गज की दूरी पर था। यह दुश्मन स्क्वाड्रन कमांडर का टैंक था। ('यह सचमुच एक-दूसरे के खिलाफ लड़ाई थी,' चीमा ने कहा, जो जारपाल के पश्चिम में

तैनात था और इस कार्रवाई का प्रत्यक्षदर्शी था।) खेतरपाल ने दुश्मन टैंक पर गोली चलाई और दुश्मन टैंक ने भी उस पर जवाबी गोलीबारी की।
अरुण खेतरपाल शहीद हो गए, लेकिन उन्होंने अपने अदम्य शौर्य से युद्ध में अपनी जान बचाई। दुश्मन को वह रास्ता नहीं मिल पाया जिसकी उसे सख्त ज़रूरत थी। एक भी दुश्मन टैंक खेतरपाल को पार नहीं कर सका। द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल को सर्वोच्च वीरता, नेतृत्व और दृढ़ संकल्प के लिए परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया है। 21 वर्षीय इस युवक ने कर्तव्य की सीमा से परे साहस और आत्म-बलिदान का ऐसा कार्य किया है।

ब्रिगेडियर खेतरपाल शेविंग कर रहे थे तभी घंटी बजी। वे एक पल के लिए रुके और अपनी पत्नी के कदमों की आहट दरवाजे की ओर आते हुए सुनी। मुकेश कॉलेज जाने के लिए तैयार हो रहा था। इन दिनों वे लगातार डर में जी रहे थे, रेडियो से कान चिपकाए युद्ध की खबरें सुनते और यह विश्लेषण करते कि कार्रवाई कहाँ हो रही है। उन्हें पता था कि 16 दिसंबर को बसंतर में एक भयंकर टैंक युद्ध हुआ था। उस रात ब्रिगेडियर मुश्किल से ही खाना खा पाए थे। उन्हें पता था कि यही वह इलाका है जहाँ अरुण की रेजिमेंट तैनात की जाएगी। लेकिन अब सब कुछ बीत चुका था, युद्ध समाप्त हो गया था और खेतरपाल परिवार अरुण के लौटने का इंतजार कर रहा था। उन्होंने अरुण की मोटरसाइकिल की सर्विस भी करवा दी थी और उसका कमरा भी साफ करवा दिया था।
सामने का दरवाज़ा खुला। कुछ बातचीत हुई और फिर एक ऐसी आवाज़ आई जिससे उसका हाथ शेविंग करते-करते रुक गया और खून जम गया; एक लिफाफे के हाथ बदलने की सूखी सरसराहट। चीख सुनने से पहले ही उसे उसका आभास हो गया था। वह दौड़कर सामने के दरवाज़े तक गया। वहाँ एक डाकिया खड़ा था; उसकी पत्नी ज़मीन पर पड़ी थी। उसके बेजान हाथ में एक टेलीग्राम था जिसमें लिखा था: 'यह सूचित करते हुए हमें गहरा खेद है कि आपके बेटे आईसी 25067, सेकंड लेफ्टिनेंट खेतरपाल, 16 दिसंबर को कार्रवाई में शहीद हो गए हैं। कृपया हमारी हार्दिक संवेदनाएँ स्वीकार करें।'

राजस्थान के नागौर जिले के हुसैनपुर गांव में, सेवानिवृत्त रिसालदार मेजर मानद कप्तान नत्थू सिंह आज भी कभी-कभी अंधेरे में जाग जाते हैं। ये वो रातें होती हैं जब उनकी यादें उनके सपनों में समा जाती हैं।
वह एक बार फिर 24 वर्ष का हो चुका है, पूना हॉर्स का सवार, बारा पिंड के युद्धक्षेत्र में, पाकिस्तान से 40 किलोमीटर अंदर। अपने तंग सेंचुरियन टैंक, फामागुस्ता के भीतर दुबका हुआ, वह अपने सामने नष्ट हुए टैंकों से उठती लपटों को देख रहा है। गोले की चीख और हवाई हमले की गड़गड़ाहट में मृत, मरणासन्न और घायल लोग गुम हो गए हैं। दस पाकिस्तानी टैंक नष्ट हो चुके हैं, जिनमें से फामागुस्ता ने चार को चकनाचूर कर दिया है। हालांकि, फामागुस्ता पर भी हमला हुआ है और अब उसमें आग लगी हुई है।
टैंक चालक प्रयाग सिंह द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल से विनती कर रहे हैं: ‘साहब, चलिए पीछे हटते हैं और आग बुझाते हैं।’ खेतरपाल का चेहरा युद्धक्षेत्र में भयंकर रूप से जल रहे पाकिस्तानी पैटन टैंकों के मलबे से उठते धूसर धुएं की तरह काला पड़ गया है। ‘नहीं!’ वह ठंडी और दृढ़ आवाज में कहते हैं। ‘क्या आपने कमांडिंग ऑफिसर साहब की बात वायरलेस पर नहीं सुनी? उन्होंने कहा था कि कोई एक इंच भी पीछे नहीं हटेगा।’
नीली डंगरी पहने नत्थू सिंह एक बार फिर तोपची की जगह पर तैनात हो जाते हैं। उनके सामने हवा धुएं से काली हो जाती है। जलते हुए टैंकों की गर्मी के साथ जलते हुए मांस की दुर्गंध भी फैली हुई है। ठीक उनके पीछे उनका लंबा और आकर्षक युवा कमांडर खड़ा है, जिसकी थकी हुई शक्ल पर घनी दाढ़ी है। वह चिल्ला रहा है: 'टैंक पर हमला करो।' नत्थू सिंह अपनी तोप का निशाना साधते हैं और गोली चलाते हैं। जिस पाकिस्तानी पैटन टैंक को उन्होंने निशाना बनाया था, वह पलटवार करता है। विशाल सेंटूरियन टैंक कांप उठता है और उनके पीछे एक दिल दहला देने वाली चीख सुनाई देती है। गोला टैंक के गुंबद से अंदर घुस गया है। चारों ओर धुआं और मांस बिखरा पड़ा है। लोडर का सिर धड़ से अलग हो गया है।
बहादुर नौजवान खेतरपाल बेहोश हो गया है। उसका बायां पैर अजीबोगरीब कोण पर मुड़ा हुआ है। नाथू नीचे देखता है तो उसे हाथ पर गीला धब्बा महसूस होता है और खून से सना हुआ है। लकड़ी के टुकड़े उसके पैरों में गहरे धंस गए हैं।
वह अचानक चौंककर जाग जाता है।

सत्तर वर्षीय नत्थू सिंह चाय की एक घूंट लेते हैं और मुस्कुराते हैं। अधिकांश दिनों में वे धोती और कुर्ता पहनते हैं। कभी-कभी वे अपनी जीप में गाँव का चक्कर लगाते हैं। दशकों से उन्होंने टैंक नहीं चलाया है। वर्दी में बिताए उनके दिन अब बीत चुके हैं। उनका वजन बढ़ गया है और वे लड़खड़ाते हुए चलते हैं। चालीस से अधिक वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन उन्हें आज भी बसंतर की लड़ाई के बुरे सपने आते हैं। इन रातों में वे ठंडे पसीने से भीगकर जागते हैं और फिर तकिये पर लेटकर सुबह होने तक अंधेरे में घूरते रहते हैं। “दूसरे लोग शायद उन्हें भूल गए हों, लेकिन मुझे आज भी खेतरपाल साहब के सपने आते हैं। मुझे अपने चारों ओर जलते हुए टैंक दिखाई देते हैं। साहब मुझे गोली चलाने के लिए कह रहे हैं। वे मेरे पीछे खड़े हैं, उनके होठों पर हल्की सी मुस्कान है। “टैंक पर निशाना लगाओ, नत्थू। गोली चलाओ!” वे कह रहे हैं। और फिर मैं गोली चला देता हूँ। बहुत बहादुर आदमी थे साहब,” वे दूध वाली चाय का गिलास ज़मीन पर रखते हुए कहते हैं। “दूसरे लोग शायद उन्हें भूल गए हों, लेकिन वे मेरे सपनों में हमेशा आते रहेंगे, जब तक मैं ज़िंदा हूँ। मेरे लिए वे कभी नहीं मरेंगे।”

यह कहानी मुख्य रूप से अरुण के भाई श्री मुकेश खेतरपाल और सेवानिवृत्त मेजर नाथू सिंह के साथ हुए साक्षात्कारों पर आधारित है। श्रीमती माहेश्वरी खेतरपाल का निधन इस लेख के लिखे जाने के कुछ समय बाद ही हो गया था।

होशियार सिंह

बसंतर नाला, शकरगढ़ सेक्टर, पाकिस्तान 15-16 दिसंबर 1971
यह एक सर्द सर्दी की रात है। छायादार गन्ने और गेहूँ के खेतों के पार, जिन्हें 3 ग्रेनेडियर्स के सैनिक पहले ही पार कर चुके हैं, बसंतर नाला बह रहा है। पानी उफान पर नहीं है और चाँदनी में हल्की सफेद चमक बिखेर रहा है। इसकी शांत स्थिरता को देखकर कोई अंदाजा नहीं लगा सकता कि यह कितना ठंडा है। जब कोई पैर पानी में डालता है और गीलापन चमड़े के जूतों और मोजों में समा जाता है, और तलवों को सैकड़ों नुकीली सुइयों की तरह चुभता है, तभी उसे इस बात का एहसास होता है।
चार्ली कंपनी (मेजर होशियार सिंह के नेतृत्व में) और ब्रावो कंपनी (मेजर एस.एस. चीमा के नेतृत्व में) के 120 से अधिक जवान नदी पार कर रहे हैं। वे नदी की सुंदरता और कुछ हद तक उसकी ठंडक से भी बेखबर हैं। उन्हें सबसे ज्यादा चिंता लगातार हो रही गोलाबारी और दूसरी तरफ बिछाई गई बारूदी सुरंगों की है, जिन्हें पार करके ही वे अपने लक्ष्य - जरपाल गांव - तक पहुंच पाएंगे। दोनों कंपनियों को आदेश है कि वे आधी रात के आसपास हमला करें और जरपाल गांव पर पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ से कब्जा कर लें।
अपने जैकेट, हेलमेट और टखने तक के बूट पहने, पीठ पर छोटे-छोटे थैले लिए, सैनिक खामोशी से बर्फीले नाले को पार कर रहे हैं। हर बार जब बर्फीला ठंडा पानी त्वचा पर पड़ता है, तो ऐसा लगता है जैसे कोई चाकू मांस को काट रहा हो। कुछ देर बाद उनके खुले शरीर सुन्न हो जाते हैं और सैनिक घुटनों तक पानी में भीगे हुए, हथियारों को सिर के ऊपर उठाए, खुद को गीला होने से बचाते हुए आगे बढ़ते रहते हैं। उनके पास 7.62 मिमी राइफलें और स्टेन गन हैं, जबकि रेडियो ऑपरेटरों के पास पिस्तौलें हैं। उनमें से प्रत्येक के पास कम से कम दो ग्रेनेड हैं, शायद इससे भी अधिक। आगे होने वाली भीषण लड़ाई में इनकी आवश्यकता पड़ेगी। गोलाबारी के कारण उनके चेहरे कीचड़ और बारूद से सने हुए हैं।
गंभीर चेहरे वाले मेजर होशियार सिंह अपने सैनिकों को एक-एक करके आगे बढ़ते देख खड़े हैं—उनकी पतलून पूरी तरह भीगी हुई है, हाथों में स्टेन गन है और

सिर पर नकाब है। वे हेलमेट न पहनने के लिए जाने जाते हैं। जरपाल का नक्शा उनके दिमाग में छपा हुआ है, वे जानते हैं कि उन्हें अंधेरे में ही हमला करना होगा; दुश्मन को अचानक चौंकाना होगा।
यह एक लंबी रात होने वाली है। उसे यह नहीं पता कि उसकी कंपनी भारतीय सेना द्वारा लड़ी गई सबसे भीषण लड़ाइयों में से एक का सामना करने जा रही है, न केवल आक्रमण के लिहाज से बल्कि दुश्मन के भयंकर जवाबी हमलों की संख्या के लिहाज से भी।

सेना पदक से सम्मानित सेवानिवृत्त कर्नल चीमा, जिन्होंने बाद में 3 ग्रेनेडियर्स की कमान संभाली, अब जालंधर में रहते हैं। वे 1971 के युद्ध पर सेना की टुकड़ियों को व्याख्यान देने की तैयारी कर रहे हैं। उनके पास नक्शे, नोट्स और स्लाइड तैयार हैं और वे अपनी याददाश्त को ताज़ा कर रहे हैं।
वह और मेजर होशियार सिंह 1971 में एक साथ युवा कंपनी कमांडर थे और उन्हें याद करके हंसी आती है कि कैसे दोनों उस fateful दिन कार्रवाई का सामना करने के लिए इतने उत्सुक थे जब उनके कमांडिंग ऑफिसर कर्नल वी. पी. ऐरी यह घोषणा करने वाले थे कि कौन सी कंपनियां जरपाल क्षेत्र पर हमला करेंगी। वे कहते हैं, 'होशियार और मैं एक-दूसरे के बगल में बैठे थे। उसने मेरी ओर मुड़कर कहा कि अगर उसकी कंपनी को हमले में शामिल नहीं किया गया तो वह बहुत नाराज होगा। मैंने उससे कहा कि अगर मेरी कंपनी को नहीं चुना गया तो मैं जाकर कमांडिंग ऑफिसर से बात करूंगा!'
जब आखिरकार घोषणा हुई, तो दोनों अधिकारियों ने एक-दूसरे को देखा और मुस्कुराए। दोनों कंपनियां हमले के पहले चरण में भाग लेंगी। होशियार सिंह की सी कंपनी को जरपाल पर पूर्व से हमला करने का आदेश दिया गया था और चीमा की बी कंपनी को पश्चिम से हमला करना था। उनकी इच्छा पूरी हो गई थी। अब अपनी काबिलियत साबित करने का समय आ गया था।
ये दोनों अधिकारी 1965 के युद्ध से ही अच्छे दोस्त थे, जब होशियार सिंह लेफ्टिनेंट थे और चीमा बटालियन के एडजुटेंट थे। उस समय उनकी बटालियन को

बीकानेर सेक्टर के एक गाँव पर हमला करने और वहाँ छिपे दुश्मन को खदेड़ने का काम सौंपा गया था। लेफ्टिनेंट होशियार सिंह को एक टोही मिशन पर भेजा गया, जहाँ उन्होंने अपनी पहल पर एक स्थानीय व्यक्ति का वेश धारण करके ऊँट पर सवार होकर गए। वे पाकिस्तानी सैनिकों के बीच घुलमिल गए और बहादुरी से दुश्मन की सीमा के पीछे चले गए, जहाँ से वे दुश्मन की स्थिति और ठिकाने के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी लेकर लौटे। 5 अक्टूबर 1965 को किए गए इस साहसिक अभियान के आधार पर, उन्होंने कमांडिंग ऑफिसर को विस्तृत जानकारी दी और दुश्मन की सटीक स्थिति का खुलासा किया, जिसके लिए उन्हें प्रशस्ति पत्र में उल्लेख मिला। होशियार सिंह ने 1965 में अच्छा नाम कमाया था, लेकिन उनकी असली क्षमता 1971 की कार्रवाई में सामने आई।

जरपाल की गिरफ्तारी
3 ग्रेनेडियर्स के जवानों द्वारा अंतरराष्ट्रीय सीमा पार करने के बाद, उनका पहला उद्देश्य भैरवनाथ मंदिर पर कब्जा करना था, जो एक हिंदू मंदिर है जहां दुश्मन ने सैनिकों की एक प्लाटून और तीन शेरमैन टैंक तैनात कर रखे थे।
जब भारतीय सेना गाँव पहुँची, तब तक वह गाँव सभी नागरिकों द्वारा खाली किया जा चुका था, जो हमले के डर से भाग गए थे। हमले के तुरंत बाद, पाकिस्तानी सैनिक भी अपने टैंक छोड़कर भाग गए, जिन्हें भारतीय सेना ने कब्ज़ा कर लिया। बटालियन फिर भगोर खुर्द की ओर बढ़ी और फिर पहले बारूदी सुरंग क्षेत्र को पार करते हुए फतेहपुर और डिंगा नारायणपुर पहुँची। यह तय किया गया कि वे बसंतर नाला पार करके एक ब्रिजहेड स्थापित करेंगे। योजना यह थी कि ब्रिगेड के हमले के पहले चरण में 16 मद्रास बटालियन सरज चक पर कब्ज़ा करेगी, जबकि दूसरे चरण में 3 ग्रेनेडियर्स बटालियन जरपाल और लोहाल पर कब्ज़ा करेगी।
जिस रात चीमा की बी कंपनी और होशियार सिंह की सी कंपनी के जवान बर्फीले बसंतर नाले को पार कर रहे थे, वही निर्णायक दिन था। उन्हें 16 दिसंबर की रात 12:30 बजे तक जरपाल गांव को पश्चिम और पूर्व दोनों तरफ से कब्जा करने

का कार्य सौंपा गया था। यह एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य था। जरपाल गांव के आसपास का इलाका न केवल भारी मात्रा में बारूदी सुरंगों से भरा था, बल्कि वहां दुश्मन की एक कंपनी भी तैनात थी, जो अपनी घातक मशीनगनों के साथ कार्रवाई के लिए तैयार बैठी थी।
जैसे ही हमलावर कंपनियों ने नाला पार किया और भीगे हुए कपड़ों में बाहर निकलीं, उनका सामना लगभग 1500 गज के बारूदी सुरंग क्षेत्र से हुआ। हालांकि बारूदी सुरंगें मिट्टी में धंसी हुई थीं, लेकिन उन्हें पहचानना आसान था क्योंकि पाकिस्तानी सेना ने दोनों ओर बारूदी सुरंग क्षेत्र में तार बिछा रखे थे ताकि अपने टैंकों और सैनिकों को चेतावनी दी जा सके और मवेशियों को दूर रखा जा सके। पैदल सेना के लिए सौभाग्य की बात यह थी कि इनमें से अधिकांश टैंक रोधी बारूदी सुरंगें थीं जो किसी व्यक्ति के वजन से नहीं फटती थीं और सैनिक रात में इन क्षेत्रों को पार कर सकते थे। वह स्थान (FUP) जहाँ सैनिकों को इकट्ठा होना था और फिर अपने कंपनी मिशन पर आगे बढ़ना था, जरपाल से 1500 गज की दूरी पर था। अंधेरे और दुश्मन की गोलीबारी के कारण रात में लक्ष्य की पहचान करना बहुत मुश्किल था। कर्नल चीमा याद करते हैं, 'हमें कमांडिंग ऑफिसर ने कहा था, "नाक की सीधी में चलते रहो।"' और सैनिकों ने ठीक वैसा ही किया, अपने तोपखाने और मोर्टार हमले के समर्थन से, जिसका उद्देश्य दुश्मन को दबाए रखना था।
कर्नल (रिटायर्ड) एस. एस. पुनिया उस ऑपरेशन के दौरान मोर्टार प्लाटून कमांडर थे। वे अब गुड़गांव में रहते हैं और जब बटालियन जरपाल दिवस मनाती है, तो वे अपने उन पुराने साथियों के साथ बैठकर ड्रिंक करते हैं जिन्होंने उनके साथ युद्ध लड़ा था। उन्हें याद है कि कैसे बारूदी सुरंगों को साफ करने के बाद उन्हें अपने मोर्टार तैनात करने के लिए कहा गया था। वे याद करते हैं, “हमारे मोर्टार 6 किलोमीटर तक फायर कर सकते थे और हमने उनका इस्तेमाल उस रात दुश्मन को निष्क्रिय करने के लिए किया जब बी और सी कंपनियों ने जरपाल पर हमला किया। यह एक भयंकर लड़ाई थी। हमने उस रात और जवाबी हमलों के दौरान रिकॉर्ड संख्या में 800 बम दागे। पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ दिया गया और जो बंकरों में छिपे थे उन्हें युद्धबंदी बना लिया गया।”
16 दिसंबर को लगभग रात 12:30 बजे, कंपनी कमांडरों ने अपने कमांडिंग ऑफिसर को संकेत भेजा कि जरपाल के पूर्व और पश्चिम के क्षेत्र पर कब्जा कर लिया

गया है। इसके बाद सैनिकों ने खाइयाँ खोदीं और अपने जीते हुए क्षेत्र की रक्षा के लिए मोर्चा संभाला। पहले से ही खबरें आनी शुरू हो गई थीं कि दुश्मन अपने क्षेत्र को वापस लेने के लिए एक बड़ा आक्रमण करेगा। मेजर होशियार सिंह और मेजर चीमा दोनों जानते थे कि उनके कार्य का सबसे कठिन हिस्सा अभी शुरू होना बाकी था।
16-17 दिसंबर
जरपाल पर दोबारा कब्ज़ा करने के लिए पाकिस्तानी सेना ने रिकॉर्ड छह जवाबी हमले किए, लेकिन बी और सी कंपनियों के जवानों ने उन सभी को नाकाम कर दिया। 16 दिसंबर की सुबह 3:30 बजे से दुश्मन सैनिक लगातार हमले करते हुए आने लगे; एक दल के खदेड़ते ही दूसरा दल आ खड़ा हुआ। हालांकि हर हमले को जवानों ने नाकाम कर दिया, लेकिन लगातार लड़ाई लड़ने और आराम करने का बहुत कम या बिल्कुल भी समय न मिलने से वे बुरी तरह थक गए थे।
यहीं पर मेजर होशियार सिंह और मेजर चीमा उनके साथ खड़े होकर अपने शब्दों और कार्यों से उनका हौसला बढ़ाते हैं। हमलों के बीच वे अपने साथ लाए हुए राशन खाते हैं और चाय पीते हैं, जिसे वे जल्दी से खाइयों में तैयार करते हैं और कैंटीन के ढक्कन, टिफिन बॉक्स और जो कुछ भी उन्हें मिलता है, उससे घूंट-घूंट करके पीते हैं।
फिर मेजर होशियार सिंह द्वारा जरपाल के दक्षिण में, गाजीपुर आरक्षित वन के पास स्थापित एक निगरानी चौकी से चौंकाने वाली सूचना आती है। यह चौकी सैनिकों द्वारा खोदी गई खाइयों से लगभग 400 मीटर दूर स्थित है। सैनिक रेडियो पर मेजर होशियार सिंह को सूचित करते हैं कि उन्होंने जंगल में हलचल देखी है और उन्हें पूरा विश्वास है कि दुश्मन उस तरफ से हमला करने की योजना बना रहा है। मेजर होशियार सिंह उन्हें चुप रहने और गोलीबारी न करने का आदेश देते हैं, क्योंकि इससे दुश्मन को उनकी उपस्थिति का पता चल जाएगा। इसके बजाय, वे उन्हें पीछे हटने और कंपनी के बाकी सैनिकों से मिलने का आदेश देते हैं।
इसी बीच, वह रेडियो पर अपने कमांडिंग ऑफिसर को दुश्मन के बड़े हमले की सूचना देता है और बताता है कि उसे रोकने के लिए तोपखाने की सहायता की आवश्यकता होगी। वह यह भी सुनिश्चित करता है कि उसके सैनिक सतर्क रहें और दिन के समय खोदी गई खाइयों में सुरक्षित रहें। सैनिकों को सख्त हिदायत दी जाती है कि वे चुप रहें, हिलें-डुलें नहीं, खांसें नहीं, छींकें नहीं, आदि।

घंटों तक वे पूरी खामोशी से इंतजार करते हैं, उनके हाथ राइफलों पर मजबूती से जकड़े होते हैं और थकान से उनके चेहरे काले पड़ जाते हैं।
सुबह करीब 4 बजे, जैसा कि उम्मीद थी, अंतिम हमला हुआ। पाकिस्तानी सेना ने जरपाल पर 35 फ्रंटियर फोर्स राइफल्स की दो कंपनियों के साथ हमला किया, जिनका नेतृत्व कर्नल मोहम्मद अकरम राजा कर रहे थे। मेजर होशियार सिंह ने दुश्मन सैनिकों को करीब आने दिया, जबकि उनके जवान राइफलें तैयार करके बेसब्री से देख रहे थे। उन्होंने अपने जवानों को आदेश दिया कि जब तक वह न कहें, तब तक गोली न चलाएं। दुश्मन सैनिक जब 100-50 गज की दूरी पर आ गए, तभी उन्होंने जोर से कहा: 'गोली चलाओ।'
चारों ओर अफरा-तफरी मच जाती है जब उसके सैनिक अपनी पूरी ताकत से हमला करते हैं— मध्यम मशीनगन (एमएमजी), हल्की मशीनगन (एलएमजी), राइफलें, मोर्टार, तोपखाना आगे बढ़ते दुश्मन सैनिकों पर गोलाबारी शुरू कर देते हैं, जो पूरी तरह से अचंभित रह जाते हैं। यह एक खूनी मंजर होता है, जिसमें गोलियां और गोले शरीर में घुसते ही सैनिक दर्द से चीखने लगते हैं। दोनों तरफ से हर सैनिक अपनी पूरी ताकत झोंक देता है। युद्ध के नारों, फटते गोलों, मोर्टार के धमाकों, गोलियों की बौछार और गालियों के बीच, लड़ाई सुबह तक जारी रहती है।
मेजर होशियार सिंह तोप के गोले के छर्रों से घायल हो जाते हैं और उनका पैर बुरी तरह से चोटिल हो जाता है। अपने कमांडिंग ऑफिसर के मना करने के बावजूद, वे वहां से निकलने से इनकार कर देते हैं। एक सैनिक के सहारे, वे एक खाई से दूसरी खाई में जाते रहते हैं, अपने थके हुए साथियों का हौसला बढ़ाते हैं और उन्हें अपनी ताकत और साहस बनाए रखने के लिए प्रेरित करते हैं। जब एक एमएमजी बंदूक जाम हो जाती है, तो वे खाई में चढ़ जाते हैं और उसे खुद ठीक करके फायरिंग जारी रखते हैं।
दुश्मन की सभी गतिविधियां बंद होने के बाद ही गोलीबारी रोकी गई। 42 पाकिस्तानी सैनिकों को बंदी बना लिया गया। दिन के उजाले में अंतिम गिनती होने पर, सी कंपनी की खाइयों के सामने 89 दुश्मन सैनिक मृत पड़े थे। कर्नल चीमा को याद है कि पाकिस्तान की 35 वीं बटालियन के सहायक कैप्टन भट्ट ने उनसे कहा था: 'हमारे साथ 350 सैनिक मृत और घायल पड़े हैं, और अब हमें 35 वीं बटालियन को फिर से गठित करना होगा।'

मृतकों में पांच अधिकारी शामिल हैं, जिनमें कर्नल राजा भी हैं, जो हमले का नेतृत्व कर रहे थे। उनके चेहरे पर एमएमजी की गोली लगी और उन्होंने वीरगति प्राप्त की। उनके हाथ उसी स्थिति में जमे हुए हैं जिसमें उन्होंने अपनी स्टेन गन पकड़ी हुई थी। कर्नल वी. पी. ऐरी ने बाद में कर्नल राजा को श्रद्धांजलि अर्पित की, जिसके आधार पर उन्हें पाकिस्तान का दूसरा सर्वोच्च वीरता पुरस्कार - हिलाल-ए-जुर्रत - प्रदान किया गया।
मेजर होशियार सिंह ने विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्तिगत वीरता और अदम्य साहस का परिचय देते हुए अपनी जान की परवाह न की, जिसके लिए उन्हें परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया है। वे जीवित रहते हुए यह पदक प्राप्त करने वाले कुछ गिने-चुने लोगों में से एक हैं।

कर्नल होशियार सिंह का जन्म 5 मई 1936 को हरियाणा के सोनीपत जिले के सिसाना नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। उन्होंने स्थानीय विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की और बाद में जाट उच्च माध्यमिक विद्यालय में दाखिला लिया। वे एक मेधावी विद्यार्थी और उत्कृष्ट खिलाड़ी थे; एक बेहतरीन वॉलीबॉल खिलाड़ी के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर पंजाब का प्रतिनिधित्व किया। जाट रेजिमेंटल सेंटर के एक वरिष्ठ अधिकारी ने एक मैच में उनके शानदार खेल को देखा और उनसे जाट रेजिमेंट में शामिल होने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्हें 2 जाट रेजिमेंट में भर्ती किया गया और बाद में 3 ग्रेनेडियर्स में कमीशन प्राप्त हुआ। जो लोग उन्हें जानते थे, वे उन्हें एक सरल, सहज व्यक्ति के रूप में याद करते हैं, जिन्हें हलवा-चूर्मा बहुत पसंद था, लेकिन युद्ध की रणनीति की बात आती तो वे लोमड़ी की तरह चतुर माने जाते थे। जरपाल पर कब्ज़ा करने के बाद जब उनसे अपनी कंपनी की स्थिति बताने को कहा गया, तो उन्होंने कंपनी की तैनाती वाली जगह से नहीं बताया। इसके बजाय, वे 2 इंच के मोर्टार से दागने से पहले दुश्मन की ओर 200 मीटर आगे बढ़े ताकि अगर दुश्मन देख रहा हो तो वह भ्रमित हो जाए। उन्होंने रेडियो पर अपने कमांडिंग ऑफिसर को निर्देशांक बताए। वे एक जमीनी सैनिक थे और उनकी फील्ड स्किल्स और दुश्मन के व्यवहार की समझ

जारपाल में मिली सफलता के प्रमुख कारणों में से एक थी। कहा जाता था कि वे दुश्मन के मन को किताब की तरह पढ़ सकते थे।
युद्ध के बाद होशियार के साथ सेवा करने वाले सेवानिवृत्त ब्रिगेडियर रणधीर कहते हैं कि होशियार जन्मजात नेता थे, साथ ही वे अपनी बटालियन के सभी जवानों के चहेते और अपने जवानों एवं जूनियर कमांडिंग ऑफिसर्स के प्रिय थे। वे हमेशा उनके साथ रहते, उनकी गतिविधियों पर निरंतर नज़र रखते और उनका मार्गदर्शन करते रहते थे। उन्हें अपने जवानों को दंडित करना पसंद नहीं था; वे उन्हें स्नेहपूर्वक सुधारना अधिक पसंद करते थे। वे अपने सैनिकों को भली-भांति जानते थे और बता सकते थे कि प्रत्येक जवान किसी विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। वे कर्नल के पद तक पहुंचे और 6 दिसंबर 1998 को हृदयाघात से उनका निधन हो गया। उनके तीन पुत्रों में से दो सेना में सेवारत हैं और उनकी पत्नी धन्नो अपने पुत्रों के परिवार के साथ दिल्ली में रहती हैं।
ब्रिगेडियर रणधीर को याद है कि कैसे एक युवा अधिकारी के रूप में वे 1972 की शुरुआत में पहली बार बटालियन में शामिल होने गए थे। उस समय युद्धविराम लागू था, शत्रुता समाप्त हो चुकी थी और हालांकि जरपाल अभी भी भीषण गोलाबारी से उबर नहीं पाया था, खेतों में गन्ना और गेहूँ उग रहे थे। वे बताते हैं कि मेजर होशियार सिंह और मेजर चीमा दुश्मन का पीछा करते हुए बारपिंड तक पहुँचने के बाद भी जरपाल में मोर्चा संभाले हुए थे। उन्हें आज भी अंतरराष्ट्रीय सीमा के ठीक बाहर 54 वीं डिवीजन द्वारा लगाया गया एक प्रमुख बोर्ड याद है। यह बोर्ड डिवीजन, विशेष रूप से 3 ग्रेनेडियर्स द्वारा पाकिस्तान में रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए किए गए भीषण संघर्ष को श्रद्धांजलि थी। उस पर लिखा था: 'आप अब पाकिस्तान में प्रवेश कर रहे हैं। पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं है। बिना किसी डर के आगे बढ़ें।'

□□□□□□□—1971

सियाचिन ग्लेशियर, जिसका नाम लद्दाख में ग्रीष्म ऋतुओं में खिलने वाले गुलाबी सिया के फूलों के नाम पर रखा गया है, को दुनिया की छत पर स्थित युद्धक्षेत्र कहा जाता है। हालांकि सियाचिन में गुलाब नहीं खिलते, फिर भी इसकी सुंदरता में कोई कमी नहीं आती।
सियाचिन में रहना कठिन है, लेकिन इसकी दृश्यावली बेहद मनमोहक है। यहाँ दुनिया के कुछ सबसे ऊँचे पर्वत स्थित हैं, जिनकी बर्फ से ढकी चोटियाँ सफेद जलधाराओं में तब्दील हो जाती हैं, जो रंगीन चट्टानों पर गिरते हुए सूर्य की रोशनी में चमक उठती हैं। यह विशाल चोटियों, पर्वत श्रृंखलाओं, गहरी दरारों और मखमली घाटियों का एक मंत्रमुग्ध कर देने वाला परिदृश्य है, जिसमें एक मील ऊँची बर्फ की दीवारें बादलों को थामे खड़ी हैं।
लेकिन एक सैनिक के लिए, सियाचिन वह जगह है जहाँ नरक जम जाता है। भारत और पाकिस्तान को 18,000 फीट से अधिक की उन ऊँचाइयों पर युद्ध करते हुए 28 साल से अधिक हो गए हैं, जहाँ तापमान -40 डिग्री से नीचे गिर जाता है और हवाएँ 45 किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक की गति से चलती हैं।
सियाचिन, दुनिया का दूसरा सबसे लंबा ग्लेशियर, बर्फ की एक 75 किलोमीटर लंबी धीमी गति से बहने वाली नदी है जो बर्फ के विशाल टीलों से घिरी हुई है। लोग हेलीकॉप्टर द्वारा संचालित चौकियों में रहते हैं, अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए कई दिनों तक पैदल चलते हैं और अक्सर परिवार, दोस्तों और बाकी दुनिया से कटे रहते हैं। वे सबसे दुर्गम इलाके में अमानवीय एकांत का जीवन जीते हैं। वे इतनी ठंडी और ऑक्सीजन की कमी वाली हवा में सांस लेते हैं कि कभी-कभी शरीर के अंग काम करना बंद कर देते हैं, जिससे दर्दनाक मौत हो जाती है। बेहोशी, भूख न लगना, याददाश्त कमजोर होना, अकेलापन और असहनीय सिरदर्द आम बात है। दस्तानों और मोजों के अंदर पसीना जम जाता है, जो फ्रॉस्टबाइट को उंगलियों और अंगों में धीरे-धीरे फैलने का एक और तरीका है। विशाल बर्फीले मैदान में दरारों और गड्ढों में दुश्मन को ढूंढना ही मुश्किल नहीं है, बल्कि उस पर निशाना लगाना भी कठिन है। राइफलों को बार-बार मिट्टी के तेल के चूल्हे पर पिघलाना पड़ता है, और मशीनगनों को उबलते पानी से तैयार करना पड़ता है। कुछ सैनिक दुश्मन की गोलीबारी में मारे जाते हैं, लेकिन उससे कहीं अधिक सैनिक ठंड, हिमस्खलन और बर्फ से ढकी दरारों में गिरने से मर जाते हैं। कहते हैं, मौसम ही आपका सबसे बड़ा दुश्मन है।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद से ही सियाचिन भारत और पाकिस्तान के बीच विवाद का एक मुख्य कारण रहा है। 1949 के कराची समझौते में, दोनों देशों ने जम्मू और कश्मीर के नक्शों पर दक्षिण में मनवर से उत्तर में खोर तक और फिर उत्तर में NJ 9842 के माध्यम से हिमनदों तक युद्धविराम रेखा खींची। जब वे बर्फ और हिम से ढके निर्जन क्षेत्र में पहुँचे, तो वे ग्रिड बिंदु NJ 9842 पर रुक गए, यह मानते हुए कि दोनों में से कोई भी पक्ष ऐसे क्षेत्र में रुचि नहीं रखेगा जहाँ घास का एक तिनका भी नहीं उगता और जहाँ जीवित रहना और साँस लेना भी एक चुनौती है।
हालांकि, पाकिस्तान ने भारत, चीन और पाकिस्तान की सीमाओं के मिलन बिंदु पर स्थित 5180 वर्ग किलोमीटर भारतीय क्षेत्र चीन को सौंपकर मामले को और जटिल बना दिया। इसके बाद उन्होंने विदेशी पर्वतारोहण और वैज्ञानिक अभियानों को उन क्षेत्रों का पता लगाने की अनुमति देना और सहायता करना शुरू कर दिया जो उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं थे। पाकिस्तान की गतिविधियों से चिंतित और इस क्षेत्र में घुसपैठ करने की उसकी योजनाओं की भनक लगते ही, भारतीय सेना ने 1983 में पूर्वव्यापी कार्रवाई करते हुए ग्लेशियर पर स्थित साल्टोरो रिज क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। 1987 में, पाकिस्तान ने एक कुटिल दुस्साहस किया जब उसने अपने सैनिकों को भारतीय क्षेत्र में एक चौकी स्थापित करने का आदेश दिया। स्पेशल सर्विस ग्रुप (एसएसजी) की एक विशेष टीम ने भारतीय क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण चोटी पर गुप्त रूप से कब्जा करने के लिए छापा मारा, जिसमें वे सफल रहे और बाद में इसका नाम कायद-ए-आजम मोहम्मद अली जिन्ना के नाम पर कायद पोस्ट रखा। कायद पोस्ट समुद्र तल से 21,153 फीट की ऊंचाई पर बिला-फोंडला नामक विशाल बर्फ के टीले पर स्थित था।
यह एक ऐसी चुनौती थी जिसे भारतीय सेना अनदेखा नहीं कर सकती थी। शिखर को वापस लेना और पाकिस्तानियों को खदेड़ना अत्यावश्यक हो गया था, और यहीं पर सूबेदार मेजर (मानद कप्तान) बाना सिंह ने कदम रखा और परमवीर चक्र से सम्मानित हुए। इस चौकी का नाम बदलकर बाना पोस्ट कर दिया गया और यह भारतीय सेना के युद्ध के लिए तत्पर युवा अधिकारियों के लिए एक प्रतिष्ठित पद है। अमेरिकी थिंक टैंक ब्रूकिंग्स इंस्टीट्यूशन में भारतीय उपमहाद्वीप के विशेषज्ञ स्टीफन पी. कोहेन ने सियाचिन विवाद को 'दो गंजे आदमियों की कंघी के लिए लड़ाई' कहा था। सियाचिन पर कब्जे के समय उत्तरी सेना के कमांडर रहे लेफ्टिनेंट जनरल एम. एल. चिब्बर के बयान के अनुसार, 'इस नासूर की रिसती नस

ने बीस वर्षों से अधिक समय में हमें लगभग 20,000 सैनिकों की जान गंवाई है और अनुमानित दैनिक खर्च दो करोड़ रुपये रहा है। 1948 की वसंत ऋतु में भारत द्वारा साल्टोरो दर्रों पर सैन्य कब्जा केवल पाकिस्तानियों को वहां पहले पहुंचने से रोकने के लिए किया गया था। भारतीय सेना की स्थायी कब्जे की कोई योजना नहीं थी। अंततः, सियाचिन संघर्ष एक गलती साबित हुआ।'
पाकिस्तान के पूर्व उप-प्रमुख जनरल खालिद महमूद आरिफ ने कहा है, "सियाचिन एक भयानक जगह है, जहां बर्फ की पतली परत पर कदम रखते ही आप 200 फीट नीचे गिर जाते हैं। लेकिन कोई भी राष्ट्र अपनी जमीन का एक इंच भी खोना नहीं चाहता, इसलिए सियाचिन का मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक महत्व है। इसका मूल्य प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान से जुड़ा है।"
सियाचिन को शांति उद्यान बनाने की बात चल रही है, लेकिन कई रक्षा विश्लेषकों का मानना है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में न तो खर्च मायने रखता है और न ही हताहतों की संख्या।

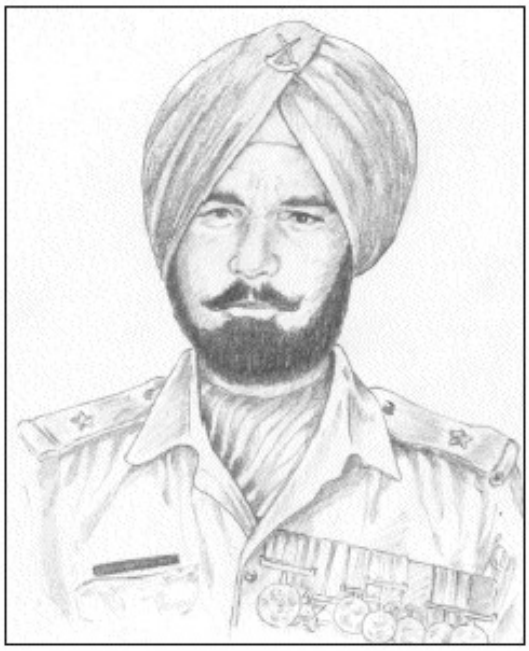

Bana Singh

जम्मू के पास कडियाल नाम के एक छोटे से गांव में, सरसों के खेतों से घिरे एक छोटे से घर में, एक बुजुर्ग सिख हर सुबह 4:30 बजे उठते हैं। वे एक बड़ा गिलास चाय पीते हैं और फिर पड़ोस के गुरुद्वारे में अरदास (प्रार्थना) के लिए जाते हैं, और सुबह 8 बजे ही लौटते हैं।
मक्के की रोटी और सरसों के साग का भरपेट नाश्ता करने के बाद, वह अपना ट्रैक्टर निकालता है और खेतों की ओर चल पड़ता है। साल भर उसकी दिनचर्या एक जैसी ही रहती है— मौसम के साथ केवल फसल बदलती है: सर्दियों में गेहूँ, गर्मियों में गन्ना और मानसून में चावल।
लेकिन जनवरी में, सेवानिवृत्त सूबेदार मेजर (मानद कप्तान) बाना सिंह, परम वीर चक्र (पीवीसी), अपना पुराना काला स्टील का बक्सा खोलते हैं और अपने युद्ध पदक निकालकर उन्हें तब तक चमकाते हैं जब तक वे जगमगा न जाएं। यही वह समय है जब वे गणतंत्र दिवस परेड में भाग लेने के लिए नई दिल्ली जाते हैं। हर बार जब वे पीवीसी को हाथ में लेते हैं, तो उन्हें सियाचिन का वह बेहद ठंडा दिन याद आ जाता है जब हवा 50 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से चल रही थी और उनके हाथों की हथेलियों पर पसीना जम रहा था।

साल्टोरो रिज, सियाचिन
25 जून 1987
दुबले-पतले, 8 जम्मू-कश्मीर लाइट इन्फैंट्री (8 जेएके एलआई) के नायब सूबेदार बाना सिंह कमर तक गहरी बर्फ में चल रहे थे, उनकी एके 47 राइफल उनकी पीठ पर टंगी थी। 19,000 फीट से ऊपर, दिन और रात में कोई फर्क नहीं था और समय का अंदाजा लगाना नामुमकिन था। कुछ देर पहले, 40 किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक की रफ्तार से बर्फीली हवाएं चल रही थीं, जो सैनिकों के खुले चेहरों पर गोलियों की तरह लग रही थीं। हवाएं थमते ही हिमपात शुरू हो गया। दृश्यता लगभग शून्य हो गई थी। बाना सिंह और बर्फ में थके-हारे चल रहे दो सैनिकों के चारों ओर एक घना भूरा कोहरा छा गया था। तापमान -45 डिग्री तक गिर गया था,

जिससे उनकी हथेलियों का पसीना और नाक से निकलने वाली सांस सुई जैसी बर्फ की डंडियों में जम गई थी।
एक पल के लिए बाना सिंह को लगा कि क्या उनके सामने का काम संभव भी है।
लेकिन उन्होंने अपना सिर हिलाया और इसे असंभव मानने से इनकार कर दिया।
इसके बजाय उन्होंने एक-एक करके थके हुए पैर आगे बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया।
शायद यही अच्छा था कि वे आसपास का नज़ारा न देख पा रहे थे, उसने सोचा। पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा बेरहमी से मारे गए अपने साथियों के शवों को देखकर वह अभी भी सदमे से उबर नहीं पाया था। भीषण ठंड के कारण, वे ताज़ा गिरी बर्फ के नीचे आधे दबे हुए पड़े थे, उनके चेहरे बर्फ के भयानक मुखौटे जैसे लग रहे थे, और उनके हथियार गोलियों से छलनी उनके शरीरों के पास पड़े थे। हालाँकि उसने अपनी आँखों को न देखने का आदेश दिया था, लेकिन उन्होंने उसकी आज्ञा को अनसुना कर दिया और बिखरे हुए मृत सैनिकों के चेहरों को देखती रहीं, जो किसी गुड़िया की तरह बिखरे पड़े थे। उसे सहज ही एहसास हो गया था कि उनकी आँखों ने वह चीज़ देख ली है जिसे वह देखना नहीं चाहता था। दूर पड़े एक क्षत-विक्षत शरीर पर द्वितीय लेफ्टिनेंट राजीव पांडे का सुंदर चेहरा था, उनकी आँखें खाली थीं और किसी खालीपन में टकटकी लगाए हुए थीं।
बाना सिंह स्तब्ध रह गया। कुछ ही दिन पहले, युवा और साहसी अधिकारी सोनम पोस्ट के गर्म लंगर में हंसी-मजाक कर रहे थे। अब वे ठंडे और मृत पड़े थे। बाना सिंह ने दांत पीसते हुए आगे बढ़ने की हिम्मत जुटाई।
आगे 21,153 फीट की ऊंचाई पर स्थित कायद पोस्ट की धुंधली सी रूपरेखा दिखाई दे रही थी, जहां दुश्मन सैनिक छिपे हुए थे। उसका काम उस पोस्ट पर कब्जा करना था। 'मुझे परवाह नहीं कि हम अपने सभी सैनिकों को खो दें। हमें वह पोस्ट चाहिए। उन्होंने हमारे सैनिकों को मार डाला। हम इसका बदला लिए बिना नहीं रह सकते। यह यूनिट की इज्जत का सवाल है,' उसके कमांडिंग ऑफिसर के तीखे शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे।
बाना सिंह ने अपने साथियों को रुकने का इशारा किया। उन्हें आदेश था कि वे अतिरिक्त सहायता के लिए भेजे जा रहे तीन और सैनिकों का इंतज़ार करें। उन्होंने बर्फ़ काटने वाले औज़ारों से बर्फ़ की दीवार को काटकर जगह बनाई और एक-दूसरे से सटकर बैठ गए, एक-दूसरे के थके हुए शरीरों से गर्मी लेते

हुए। वहीं वे बाकी सैनिकों के आने का इंतज़ार करने लगे। ठंड से काँपते, थके-हारे और भूखे, उन्हें एक ऐसे युद्ध का सामना करना था, जैसा युद्ध दुनिया में कहीं भी, इतनी खतरनाक ऊँचाई पर पहले कभी नहीं लड़ा गया था! साल्टोरो रिज, जहां बाना सिंह और उनके साथी तैनात थे, जलवायु और भूभाग के लिहाज से एवरेस्ट के काफी करीब है। वे न सिर्फ 19,000 फीट से अधिक ऊंचाई पर थे, जहां ऑक्सीजन की कमी के कारण चलना भी मुश्किल था, बल्कि तापमान -45 डिग्री सेल्सियस से नीचे गिर जाता था, जिससे जीवित रहना ही एक चुनौती बन जाता था। अब उन्हें दुश्मन से लड़ना था और चौकी पर दोबारा कब्जा करना था। चुनौती और भी बढ़ गई थी क्योंकि दुश्मन ऊंचाई पर बैठा था और किसी भी समय उन पर गोलीबारी कर सकता था। हालांकि, यह काम करना जरूरी था क्योंकि पाकिस्तानी सैनिकों ने न सिर्फ चुपके से चौकी पर कब्जा कर लिया था, बल्कि वे हेलीकॉप्टरों पर भी गोलीबारी कर रहे थे और उन्होंने 8 जेएके एलआई गश्ती दल के उन जवानों पर भी गोलीबारी की थी जो पहले वहां गए थे और उन्हें मार डाला था।
सेकंड लेफ्टिनेंट राजीव पांडे, नबी सूबेदार हेमराज और 10 जवान उस पहले गश्ती दल में थे जिसे इलाके की टोह लेने के लिए भेजा गया था। टीम को स्कीइंग और पर्वतीय युद्ध का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त था, फिर भी उनके लिए इतनी पतली बर्फ में रस्सियाँ बाँधना और बर्फ पर चढ़ना एक बेहद मुश्किल काम था। हर कदम एक चुनौती था, लेकिन उन्होंने शून्य से नीचे के तापमान में 48 घंटे से अधिक समय तक डटे रहे। जब चौकी मात्र 500 मीटर दूर थी, तो पांडे ने रेडियो पर अपने कमांडिंग ऑफिसर कर्नल ए.पी. राय से आगे के आदेश मांगे। उन्हें आगे बढ़ने का आदेश दिया गया। गश्ती दल को इस बात का एहसास नहीं था कि पाकिस्तान के एसएसजी कमांडो एक ऊँची पहाड़ी से उन पर नज़र रख रहे थे और उनके गोलीबारी की सीमा में आने का इंतज़ार कर रहे थे। जैसे ही वे अनजान जवान करीब आए, पाकिस्तानियों ने गोलीबारी शुरू कर दी, जिसमें दो सैनिकों को छोड़कर बाकी सभी मारे गए। पांडे और उनके साथी शहीद हो गए, लेकिन उनके द्वारा बाँधी गई रस्सियाँ बाना सिंह और उनकी टीम को रास्ता दिखाएँगी। उनके मृत चेहरे भी सैनिकों को दुख और क्रोध से भर देंगे, जिससे उन्हें आगे बढ़ने की शक्ति मिलेगी।
अगले ही दिन, जवानों की निर्मम हत्या से स्तब्ध भारतीय सेना के वरिष्ठ अधिकारी सोनम पोस्ट पहुंचे। इनमें कोर कमांडर, सेना प्रमुख और रक्षा

[illegible]

[illegible] 400 [illegible]

[illegible] 57 [illegible] 'Ghost Hunters,' [illegible] 22 [illegible] 23 [illegible] 8 [illegible] 4 [illegible] 150 [illegible]

[illegible] “Ghost Hunters,” [illegible] “[illegible] [illegible] [illegible]” [illegible] “Ghost Hunters,” [illegible]

अगले ही दिन (24 जून) रस्सियाँ एक बार फिर बाँधी गईं, इस बार उसी दिशा में जहाँ पाण्डे की दुर्भाग्यपूर्ण गश्ती दल गई थी। रात 8 बजे चढ़ाई फिर शुरू हुई। टास्क फोर्स कमांडर मेजर वीरेंद्र सिंह सबसे पहले आगे बढ़े और बोले कि जो भी पीछे मुड़ेगा, उसे गोली मारने में उन्हें कोई संकोच नहीं होगा। उन्होंने ठंडी हवा से भी ज़्यादा ठंडी आवाज़ में कहा, 'इस बार मिशन पूरा होगा।' इतना कहकर वे मुड़े और बर्फ में लटकती रस्सी को पकड़कर ऊपर चढ़ गए। उनके साथी भी उनके पीछे-पीछे चढ़ गए।
वे ठीक उसी जगह पहुँच गए जहाँ पिछली गश्ती दल का नरसंहार हुआ था। उनके साथियों के शव उनके चारों ओर बर्फ में दबे पड़े थे। एड्रेनालाईन के उफान और बदला लेने की तीव्र इच्छा में सारी असुविधाएँ भुला दी गईं। सैनिकों के ठीक ऊपर वह खतरनाक चट्टानी किनारा था जहाँ से पाकिस्तानियों ने पूरी टीम को मार गिराया था। सौभाग्य से, हिमपात और ठंडी हवाओं ने दृश्यता को बुरी तरह कम कर दिया था, जिससे दुश्मन को यह विश्वास हो गया था कि भारतीय इतने खराब मौसम में हमला करने के बारे में सोचेंगे भी नहीं। उनके चारों ओर छाई भयानक धुंध चढ़ाई कर रहे सैनिकों के लिए जानलेवा थी, क्योंकि इसने खतरनाक दरारों के खुले मुँह को छिपा रखा था। दो सैनिक फिसलकर गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गई। कुछ घायल हो गए और उन्हें पीछे छोड़ना पड़ा। कुछ गिरे, लेकिन वापस चढ़कर हमलावर दल में शामिल हो गए। लेकिन इस बार किसी ने किसी का इंतजार नहीं किया। वे बस आगे बढ़ते रहे। एक-एक करके, और सैनिक घायल हो गए या चोटों, सीने में तकलीफ और फ्रॉस्टबाइट के कारण उन्हें निकाला गया। अंततः, केवल बाना सिंह और दो अन्य लोग ही कायद चौकी तक पहुँचने में सफल रहे। चौकी से लगभग 15 मीटर दूर, उन्होंने बर्फ में खोदी गई अपनी झोपड़ी में एक साथ बैठकर अन्य सैनिकों का इंतजार किया ताकि वे अगले दिन हमला कर सकें।

क्वैड पोस्ट, 26 जून
बाना और उसके साथियों ने पूरी रात बर्फ में बिताई। कड़ाके की ठंड में उन्हें मुश्किल से नींद आई थी। तभी उन्होंने तीन धुंधली आकृतियों को अपनी

ओर आते देखा। सफेद बर्फीले सूट और जूतों में वे भूतों जैसे लग रहे थे। बाना का खून जम गया और उसने अपनी राइफल उठा ली, लेकिन तभी उसे एहसास हुआ कि अतिरिक्त सैनिक उन तक पहुँच चुके हैं। पाँचों ने कुछ देर बर्फ में इंतज़ार किया और फिर तय किया कि वे शाम 4:30 बजे तक दुश्मन की चौकी पर हमला करेंगे। उन्होंने प्रार्थना में अपनी आँखें बंद कर लीं, और फिर बाना ने उन्हें आगे बढ़ने को कहा। भारी और लगातार बर्फबारी रुक नहीं रही थी और वे बर्फ से ढके गड्ढों पर पैनी नज़र रखते हुए आगे बढ़ते रहे, जो दर्दनाक मौत का संकेत दे सकते थे।
एनबी सूबेदार बाना सिंह ने लगभग अंधेरे में ही अत्यंत खतरनाक रास्ते पर अकेले ही अपने जवानों का नेतृत्व किया। उन्होंने अपने अदम्य साहस और नेतृत्व से उनका मनोबल बढ़ाया। खराब मौसम और तेज हवाओं के बावजूद, छह बहादुर जवान चौकी तक पहुँचे और उस पर धावा बोल दिया। दुश्मन के बंकरों में ग्रेनेड फेंकते हुए, जवानों ने दुश्मन सैनिकों पर हमला बोल दिया। बाना सिंह ने एक ग्रेनेड उठाया और उसे एक बंकर के अंदर फेंक दिया, जिसका दरवाजा बाहर से बंद कर दिया गया था। उन्होंने मरते हुए जवानों की चीखों को खुद पर हावी नहीं होने दिया और पूरी ताकत से हमला करते हुए बाहर मौजूद लोगों को संगीनों से मार गिराया, जिससे वे पूरी तरह से चौंक गए। कुछ ढलान से नीचे पाकिस्तानी सीमा की ओर भाग गए, कुछ मारे गए, अन्य घायल हो गए। तब तक मेजर वीरेंद्र सिंह और दो अन्य सैनिक भी बाना के साथ आ चुके थे। अत्यधिक ठंड में कई बार फायरिंग बंद हो जाने के कारण, बाना ने अपनी लाइट मशीन गन को सिंगल-शॉट मोड पर रखकर, वापस चढ़ने की कोशिश कर रहे दुश्मन सैनिकों पर निशाना साधा। सैनिक या तो मारे गए या डरकर भाग गए। हालांकि, यह महसूस करते हुए कि उनकी चौकी पर कब्जा कर लिया गया है, उन्होंने उस पर गोलाबारी शुरू कर दी। मेजर वीरेंद्र को सीने और पेट में चार गोलियां लगीं, लेकिन उन्होंने वहां से निकलने से इनकार कर दिया। उन्होंने बाना सिंह से कहा कि वे दुश्मन को जिंदा पकड़ने की कोशिश करें, जिस पर सिंह ने सिर हिलाकर मशहूर जवाब दिया: 'सर, ये कमीने मेरे चचेरे भाई नहीं हैं!' इस बात ने घायल अधिकारी को मौत के मुंह में भी मुस्कुराने पर मजबूर कर दिया। राइफलमैन ओम राज का हाथ एक गोले से उड़ गया और दर्द से कराहते हुए उसके बगल में लटक गया। बाना सिंह ने अपनी प्राथमिक चिकित्सा किट से पट्टियां लेकर खून बहना रोकने की कोशिश की, लेकिन वे सफल नहीं हो सके। तेजी से खून बह रहे ओम राज और मेजर वीरेंद्र

दोनों को थोड़ा नीचे ले जाया गया, जहां मौसम साफ हो गया था और उन्हें निकालने के लिए एक हेलीकॉप्टर उतर सकता था। मेजर वीरेंद्र बच गए और बाद में ब्रिगेडियर के पद तक पहुंचे, जबकि ओम राज ने ग्लेशियर पर अपने साथियों की बाहों में दम तोड़ दिया। दोनों को उनकी वीरता के लिए वीर चक्र से सम्मानित किया गया।
27 जून 1987 को ब्रिगेड कमांडर ब्रिगेडियर सी. एस. नुग्याल चौकी पर चढ़े। एक दुर्लभ, भावुक क्षण में उन्होंने युद्ध से बुरी तरह क्षतिग्रस्त बाना सिंह और उनके साथियों को गले लगाया। उन्होंने घोषणा की कि इसके बाद इस चौकी का नाम बाना टॉप रखा जाएगा। नब्बे सिपाही बाना सिंह को सबसे प्रतिकूल परिस्थितियों में असाधारण वीरता और नेतृत्व के लिए पीवीसी से सम्मानित किया गया। ऑपरेशन राजीव के परिणामस्वरूप पीवीसी के अलावा एक महावीर चक्र, सात वीर चक्र और एक सेना पदक भी प्राप्त हुए। कमांडिंग ऑफिसर और कमांडर को उत्तम युद्ध सेवा पदक से सम्मानित किया गया।

अब 65 वर्षीय सूबेदार मेजर बाना सिंह, पीवीसी, जिनका जन्म 6 जनवरी 1949 को जम्मू और कश्मीर की रणबीर सिंह पोरा तहसील में एक सिख परिवार में हुआ था, पन्ना जैसे हरे गेहूं के खेतों के बीच अपने छोटे से घर में बैठे हैं। वे एक आह के साथ अपनी कहानी समाप्त करते हैं। “जब मैं 19 वर्ष का था तब मैं जम्मू और कश्मीर लाइट इन्फैंट्री में भर्ती हुआ था। मैं यह नहीं कहूंगा कि मैंने सियाचिन में जो किया वह वीरता का कार्य था। मैंने बस एक सैनिक के रूप में अपने दायित्वों को पूरा किया। हम सफल हुए। यदि हम सफल नहीं होते तो मैं आज आपके सामने जीवित नहीं बैठा होता,” वे कहते हैं।

श्रीनगर, 16 मार्च 2008
रंगरेठ स्थित जेएके एलआई रेजिमेंटल सेंटर के बाना सिंह परेड ग्राउंड में पासिंग-आउट परेड की टुकड़ी के आगे बढ़ते ही, हल्के रंग के सूट और पगड़ी

पहने एक सांवले, थोड़े मोटे सिख सज्जन उत्सुकता से उन्हें देख रहे थे। जब सर्वश्रेष्ठ ड्रिल प्रदर्शन करने वाले रंगरूट को बाना सिंह पदक दिए जाने की घोषणा हुई और एक दुबला-पतला, युवा और फुर्तीला लड़का उसे लेने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ा, तो उनके चेहरे पर मुस्कान आ गई। युवा सैनिकों में राजिंदर सिंह भी थे, जिन्हें उनके पिता बाना सिंह देखने आए थे। सियाचिन की बर्फीली चोटियों पर बाना द्वारा अद्वितीय वीरता का प्रदर्शन करने के दो दशक बाद, उनके 18 वर्षीय बेटे ने 8 जेएके एलआई में भर्ती हुए, वही रेजिमेंट जहाँ से बाना ने अपने करियर की शुरुआत की थी।
परेड समाप्त होने पर, गर्वित पिता मन ही मन मुस्कुराते हैं और चाय के लिए अन्य अभिभावकों के साथ शामिल होने के लिए उठ खड़े होते हैं। वे अपने गाँव लौटेंगे और सेवानिवृत्त जीवन व्यतीत करेंगे। एक ज़िम्मेदारी अगली पीढ़ी को सौंप दी गई है।
यह कहानी सूबेदार मेजर (सेवानिवृत्त) बाना सिंह के साथ हुई बातचीत पर आधारित है।

□□□□□□ □□□ 1987-90

श्रीलंका में बहुसंख्यक सिंहली और जनसंख्या के 20 प्रतिशत से भी कम तमिलों के बीच तनावपूर्ण संबंध ही श्रीलंका संकट का कारण थे।
1970 के दशक में, तमिल राष्ट्रवादी अलगाववादी समूह, तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फोर्स ने तमिलों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के उद्देश्य से एक अलग राज्य, तमिल ईलम की मांग शुरू की। जब सभी शांतिपूर्ण प्रयास विफल हो गए, तो उन्होंने हिंसा का सहारा लिया।
तमिलनाडु में तमिल समुदाय ने इस आंदोलन का समर्थन किया और विद्रोहियों को शरण दी तथा आर्थिक सहायता, हथियार और गोला-बारूद मुहैया कराया। 1986 में श्रीलंका सरकार ने विद्रोहियों के खिलाफ कार्रवाई तेज कर दी। 1987 में श्रीलंकाई सेना ने जाफना शहर को घेर लिया, जिसके परिणामस्वरूप कई नागरिक मारे गए।
भारत को दक्षिण भारत में रहने वाले तमिलों की ओर से संभावित विरोध का डर था, इसलिए उसने हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। 29 जुलाई 1987 को श्रीलंका सरकार और भारत के बीच एक समझौता हुआ, जिसमें तमिल नेताओं की भी भागीदारी थी।
इसी के अनुरूप, अगस्त में श्रीलंका में भारतीय शांति सेना (आईपीकेएफ) तैनात की गई। आतंकवादियों को इस सेना के समक्ष हथियार डालने थे, जिसे एक शांतिपूर्ण प्रक्रिया माना जा रहा था, जिसके बाद चुनाव होने थे और तमिलों को अधिक स्वायत्तता दी जानी थी। आईपीकेएफ की भूमिका शांति की बहाली सुनिश्चित करना थी। हालांकि, यह कदम उल्टा पड़ गया। जहां अन्य आतंकवादी समूहों ने हथियार डाल दिए, वहीं लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (एलटीटीई) ने बहुत कम हथियार सौंपे और उनमें से कुछ ने श्रीलंकाई हिरासत में रहते हुए अपने गले में लटकी साइनाइड की गोलियां निगलकर आत्महत्या कर ली।
इसके बाद एलटीटीई ने आईपीकेपी के खिलाफ हिंसा की लहर चला दी, जिसके बाद आईपीकेपी के पास जवाबी कार्रवाई के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा। 10 अक्टूबर 1987 को भारतीय सेना ने उत्तरी जाफना में कार्रवाई शुरू की। उचित खुफिया सहायता की कमी, अपरिचित भूभाग और एलटीटीई के गुरिल्ला हमलों के कारण उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ा। एलटीटीई ने बच्चों और महिलाओं को सैनिकों के रूप में इस्तेमाल किया, जिनके खिलाफ भारतीय सेना को जवाबी कार्रवाई करना बेहद मुश्किल लगा। हालांकि शुरुआत में केवल 54 डिवीजन ही

कार्रवाई में शामिल हुई थी; जल्द ही तीन और डिवीजन—4, 36 और 57—भी शामिल कर ली गईं।
उचित मानचित्रों या मार्गदर्शन के अभाव में, सैनिकों को प्रतिकूल परिस्थितियों में लड़ना पड़ा। साथ ही, भारत में तमिलों द्वारा एलटीटीई को समर्थन दिए जाने से उनका मनोबल भी गिरा हुआ था।
एक अत्यंत कठिन युद्ध लड़ा गया जिसमें कई वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी। महार की 8 वीं बटालियन के मेजर रामास्वामी परमेश्वरन को उनकी वीरता, नेतृत्व और ऐसे कठिन परिस्थितियों में कर्तव्यनिष्ठा के लिए मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया।

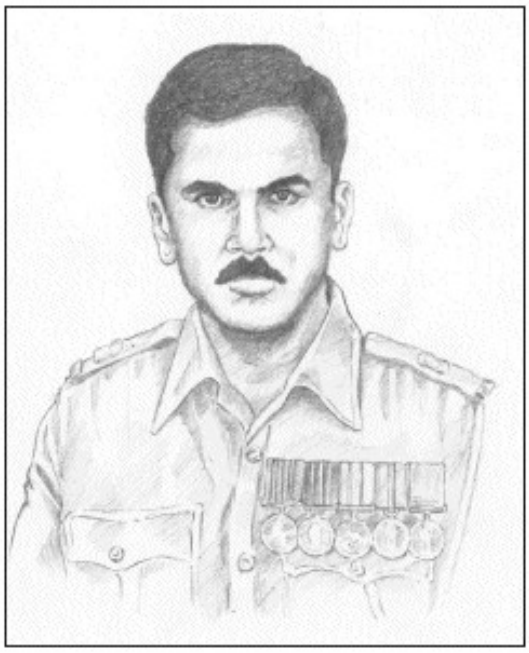

[redacted]

[redacted]

24 [redacted] 1987

[redacted]

[redacted]

[redacted]

ऑफिसर (जेसीओ) संपत साबले की एक और गश्ती टुकड़ी तैयार करते हैं और पहली गश्ती टुकड़ी में शामिल हो जाते हैं।
लगभग आधी रात के समय 30 सैनिकों का संयुक्त गश्ती दल कंथारोडाई की ओर बढ़ना शुरू करता है। बारिश शुरू हो चुकी है और सैनिक अपनी तोपों के मुंह को पॉलीथीन की चादरों से ढक लेते हैं। उनमें से कुछ के पास रेनकोट हैं, लेकिन पहनने में असुविधाजनक होने के कारण अधिकांश धीमी गति से गिरती बारिश में भीगना पसंद करते हैं।
घोर अंधेरे में वे कतार बनाकर सावधानीपूर्वक 4.5 किलोमीटर की दूरी तय करते हैं, इस बात का पूरा ध्यान रखते हुए कि सड़क के आसपास के नारियल के बाग और दलदली इलाके में एलटीटीई के कोई सदस्य न हों। लगभग 1:30 बजे गश्ती दल धर्मलिंगम के घर पहुँचता है। उनका घर एक एकड़ से अधिक के परिसर में बना है, जिसमें एक तालाब, नारियल के पेड़ और एक बगीचा भी है। घर में अंधेरा होने के कारण ऐसा लगता है कि सभी सो रहे हैं। मौसम और भी खराब हो गया है। अब मूसलाधार बारिश हो रही है और रात के आकाश में बिजली की चमक और गरज सुनाई दे रही है। अब तक सभी सैनिक पूरी तरह भीग चुके हैं, उनके भारी लकड़ी के तले वाले डीएमएस बूटों से पानी रिस रहा है, जो नमी से फूल गए हैं।
वे घर को घेर लेते हैं और उससे लगभग 800 मीटर दूर 10-10 के समूहों में बैठ जाते हैं। कोई हलचल नहीं दिखाई देती, लेकिन उन्हें पास ही एक पुराना ट्रक खड़ा दिखाई देता है, जो किसी गैराज के बगल में लगता है। इससे हथियारों की खेप को वहाँ उतारे जाने की खबरों को बल मिलता है। अंधेरे में हमला करने का जोखिम न लेते हुए, वे भोर का इंतजार करते हैं। बारिश के दौरान भी वे घास पर बैठे रहते हैं और उन्हें हिलने-डुलने, खांसने या यहाँ तक कि शौच के लिए भी उठने से मना किया जाता है।
सुबह करीब 5:30 बजे, परिवार के कुत्ते भौंकने लगते हैं और पैरी घर की तलाशी लेने का फैसला करता है। बाकी सैनिक पास आते हैं, जबकि वह, शर्मा और रेडियो ऑपरेटर दिलीप मस्के अंदर जाते हैं और धर्मलिंगम और उसके परिवार को बाहर लाते हैं। लेकिन गहन तलाशी के बाद भी कुछ भी संदिग्ध नहीं मिलता और गश्ती दल को मुख्यालय लौटने का फैसला किया जाता है। अधिकारी एक सुनसान घर में शरण लेते हैं और वापस जाने के रास्ते पर चर्चा करते हैं, और अंत में पक्की कंथारोडाई-उडुविल सड़क से ही जाने का निर्णय लेते हैं क्योंकि वे जलमग्न

दलदली इलाके से बचना चाहते हैं जहाँ एलटीटीई के घात लगाकर हमले की आशंका है।
दुर्भाग्यवश, सड़क एक तालाब के पास से गुजरती है जिसके चारों ओर तीन मंदिर हैं, जहाँ एलटीटीई के उग्रवादियों ने शरण ली हुई है। बाद में, काफी समय बाद, यह अनुमान लगाया गया कि चूंकि मराठा लाइट इन्फैंट्री 8 महार क्षेत्र के पश्चिम में सक्रिय थी, इसलिए पैरी और उसके साथियों का सामना जिन एलटीटीई कार्यकर्ताओं से हुआ, वे शायद गलती से लौट रहे गश्ती दल के रास्ते में आ गए थे। हालांकि, अब सैनिकों को यह सब पता नहीं है, यहाँ तक कि उन्हें यह भी नहीं पता कि एलटीटीई ने उन्हें देख लिया है, जो चुपचाप उन पर नजर रख रहे हैं और हमले के मौके का इंतजार कर रहे हैं।

सुबह के 6:30 बजे, थके-हारे, बारिश में भीगे और नींद से वंचित सैनिक तालाब के पास से गुजर रहे थे। भारी मशीन गन (एचएमजी) की एक बौछार सिपाही जीवन अठावले को लगी। उनके पीछे मौजूद सिपाही जगन लाल ने एक आतंकवादी को गोली मारकर मार गिराया, लेकिन हल्की मशीन गन (एलएमजी) की बौछार की चपेट में आ गए। इसी क्षण, आतंकवादियों ने तीनों तरफ से गोलीबारी शुरू कर दी, जिससे पूरा गश्ती दल तितर-बितर हो गया।
“हम 300 मीटर के दायरे में सड़क पर फैले हुए चल रहे थे। संपत साहब 10 जवानों के साथ आगे चल रहे थे; उनके पीछे कैप्टन शर्मा साहब 10 जवानों के साथ थे और पैरी साहब सबसे पीछे 10 जवानों के साथ थे। तभी अचानक भारी गोलाबारी हुई और हमारे दो जवान घायल हो गए,” सूबेदार (सेवानिवृत्त) दिलीप मस्के बताते हैं, जो जेसीओ के पद से सेवानिवृत्त हुए और अब औरंगाबाद की एक सुरक्षा कंपनी में सहायक प्रबंधक के रूप में काम करते हैं। भारी गोलाबारी के लिए जिम्मेदार दोनों जवान पैरों में बुरी तरह घायल हो गए। वे गिर पड़े और उनकी भारी गोलाबारी सड़क पर गिर गई। आगे चल रहे जवान भी फंस गए क्योंकि चारों ओर से गोलीबारी शुरू हो गई और अचानक हवा घातक गोलियों से भर गई। सैनिक ज़मीन पर लेट जाते हैं और पैरी उन्हें सड़क के दूसरी ओर जंगल में तुरंत पनाह लेने का आदेश देता है। गिरी हुई एलएमजी को उठाकर, सैनिक अपने

सैनिकों पर चारों ओर से भारी गोलीबारी हो रही थी। वे अनजाने में एलटीटीई के एक ठिकाने में घुस गए थे। आतंकवादी छत के नीचे और नारियल के पेड़ों की डालियों पर भी छिपे हुए थे। 'उन दिनों हमें ठिकानों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी और हमें यह एहसास भी नहीं था कि विद्रोही हमारे चारों ओर छिपे हुए हैं। कैप्टन शर्मा और संपत साहब, अपनी टुकड़ियों के साथ, घात लगाकर किए गए हमले में फंस गए। तुरंत ही कई लोग हताहत हुए,' मस्के याद करते हैं। रेडियो ऑपरेटर विद्यासागर डोंगरे और रमेश अठावले गोलीबारी में घायल हो गए; राजन, जो मोर्टार से जवाबी हमला करने की कोशिश कर रहा था, एक धमाके की चपेट में आ गया और उसकी मौके पर ही मौत हो गई। एलएमजी चला रहे गणेश कोहली भी गोली लगने से मारे गए। एलटीटीई एके-47, ग्रेनेड, विस्फोटक और घातक एचएमजी का इस्तेमाल कर रहा था, जिनसे सबसे ज्यादा नुकसान होता था। उन्होंने इलाके में बारूदी सुरंगें भी बिछा रखी थीं, जिससे सैनिकों की आवाजाही पूरी तरह से बाधित हो गई थी और वे पूरी तरह से असुरक्षित थे। पैरी ने अपनी जगह से गोलीबारी देखी और सैनिकों को बचाने के लिए आगे बढ़ने का फैसला किया। मास्के बताते हैं, 'सहब ने हमें बताया कि हमारे सैनिक घात लगाकर किए गए हमले में फंस गए हैं और हम पीछे से जाकर जवाबी हमला करेंगे ताकि हमारे सैनिकों को बचाया जा सके।'
पैरी अपने साथ 10 जवानों को लेकर आगे बढ़ता है। सिपाही राज कुमार शर्मा और नायक पांडुरंग धोबले उसके साथ हैं, लेकिन उन पर हो रही भीषण गोलीबारी के कारण उनका समूह बिखर जाता है। पैरी एक पल भी अपना धैर्य नहीं खोता। वह एलएमजी को ठीक करता है और राज कुमार को आतंकवादियों पर गोली चलाने का आदेश देता है। वह तय करता है कि बाकी लोग गोलीबारी की आड़ में आगे बढ़ेंगे। राज कुमार ने अभी गोली चलाना शुरू ही किया था कि एक पेड़ की चोटी से आई एक एके- 47 की गोली उसे लग जाती है और वह गिर जाता है। सैनिक लगातार गोलीबारी में फंस जाते हैं।
पैरी डरने से इनकार करता है और अपनी सुरक्षा की बिल्कुल परवाह किए बिना, पेट के बल लेटकर नारियल के बाग में रेंगता हुआ आगे बढ़ता है, जहाँ कई पेड़ों को लगभग पाँच फीट तक काट दिया गया है। एक पेड़ के ठूंठ के पीछे छिपकर, पैरी घात लगाकर बैठे आतंकवादियों की दिशा में एलएमजी से गोली चलाता है। इससे एलटीटीई के आतंकवादी चौंक जाते हैं और समझ जाते हैं कि वे घिर गए हैं।

तभी नारियल के पेड़ पर बैठे एक स्नाइपर द्वारा दागी गई एक भारी बंदूक (हेम गन गन) पैरी की बाईं कलाई पर जा लगी, जिससे हड्डी चकनाचूर हो गई और उसका हाथ लगभग कट गया। गोली इतनी ज़ोर से लगी कि उसकी घड़ी भी निकलकर कुछ दूर जा गिरी। अपने साथियों के देखते ही देखते, पैरी ने अपनी गंभीर चोट की परवाह किए बिना, अपने सबसे नज़दीक खड़े उग्रवादी पर हमला कर दिया। उसने उस आदमी का हथियार छीन लिया और उसे गोली मार दी, साथ ही अपने साथियों को भी पीछे आने का आदेश दिया।
तभी, एक और एचएमजी की बौछार उनकी छाती में जा लगी। उनकी जेब में एक मिनी क्लियर पिस्टल और कुछ गोलियां थीं जिनका इस्तेमाल उन्होंने सफलता का संकेत भेजने के लिए किया था। वे गोलियां फट गईं और बहादुर अधिकारी मुंह के बल गिर पड़े। लगभग एक घंटे बाद जब कैप्टन शर्मा ने उनका शव बरामद किया, तो उनकी घड़ी उनके पास पड़ी मिली। घड़ी में सुबह 8:10 बज रहे थे। 'मैं उनसे सिर्फ तीन मीटर पीछे था,' मस्के ने कहा। हालांकि, गोलीबारी इतनी तेज थी कि काफी देर तक सैनिक उनके शव तक पहुंच भी नहीं पाए।
अपने बहादुर कमांडर की मौत से सदमे में होने के बावजूद, छह जवान उनके बलिदान से प्रेरित होकर डटे रहे। उन्होंने देखा कि आतंकवादी दहशत में इधर-उधर भाग रहे हैं। मस्के याद करते हुए बताते हैं, 'वे लुंगी और टी-शर्ट पहने हुए लड़के-लड़कियां थे। उनमें से ज्यादातर के पास एके-47 राइफलें थीं, हालांकि उनके पैरों में न तो हेलमेट था और न ही चप्पलें।' विद्रोही अपने छिपने के ठिकानों से निकलकर भागने लगे और सैनिकों पर गोलियां चलाते रहे। इसी बीच बटालियन ने अतिरिक्त बल भेज दिया। कैप्टन टी. सी. भट्टाचार्य और 20 अन्य सैनिक मौके पर पहुँचते हैं और तीनों मंदिरों पर गोलीबारी शुरू कर देते हैं। भट्टाचार्य पहले मंदिर में प्रवेश करते हैं और एक आतंकवादी को पकड़ लेते हैं। यह एक साहसिक कार्रवाई होती है जिससे अन्य विद्रोही घबरा जाते हैं और भागने लगते हैं। भट्टाचार्य अपने कैदी से एक गुप्त ठिकाने के बारे में जानकारी निकालने में सफल होते हैं, जहाँ से तीन एके-47 राइफलें, दो रॉकेट लॉन्चर, 200 बूस्टर चार्ज और 100 किलोग्राम विस्फोटक बरामद किए जाते हैं। मेजर देवेंद्र बरार के नेतृत्व में 1 मराठा लाइट इन्फैंट्री की एक टीम भी पहुँचती है। 25 सैनिकों का यह दल मस्के और अंकुश वाघमारे को आगे बढ़ने और पैरी का शव लाने में मदद करता है। शव को एक खाली घर में लाया जाता

है जहाँ राज कुमार को प्राथमिक उपचार दिया जाता है। धीरे-धीरे गोलीबारी बंद हो जाती है।
इस हमले में छह आतंकवादी मारे गए और अज्ञात संख्या में घायल हुए। 8 महार बटालियन ने पैरी, नायक अप्पना सरजे, राजन लाल और मिलिंद कोहली को खो दिया, जबकि नौ अन्य घायल हो गए।
25 नवंबर को पैरी का शव चेन्नई लाया गया और उनके परिजनों को सौंप दिया गया। तीनों शहीद सैनिकों का अंतिम संस्कार उडुविल में पूरे सैन्य सम्मान के साथ किया गया।
अपनी असाधारण वीरता, अनुकरणीय नेतृत्व और नेतृत्व क्षमता के लिए, मेजर रामास्वामी परमेश्वरन को मरणोपरांत देश के सर्वोच्च वीरता पुरस्कार, परम वीर चक्र से सम्मानित किया जा रहा है। उनकी वीरता और निस्वार्थ बलिदान की गाथा महार सैनिकों की आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेगी।
'अगर पैरी साहब ने जवाबी हमला करने का फैसला न किया होता तो हताहतों की संख्या कहीं अधिक होती,' मास्के कहते हैं। 'उन्होंने अपनी जान गंवाई, लेकिन कई अन्य लोगों की जान बचाई।'

पैरी, जिन्हें उनके जवान स्नेहपूर्वक मेजर परमेश्वरन के नाम से याद करते हैं, एक समर्पित और प्रतिबद्ध अधिकारी थे, जो स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करके नेतृत्व करना पसंद करते थे। उनके अधीन सेवा करने वाले जवान उनकी विचारशील लेकिन दृढ़ कमान और शीघ्र क्षमाशीलता को याद करते हैं। वे एक मिलनसार व्यक्ति थे, जिन पर सैनिक आसानी से भरोसा कर सकते थे। वे कभी भी किसी को सार्वजनिक रूप से दंडित करके अपमानित नहीं करते थे, लेकिन यदि कोई गलत होता था, तो वे उसे अनदेखा भी नहीं करते थे। उनके साथ अंतिम गश्त पर रहे जवान आज भी उन्हें अपने प्राणों की आहुति देकर उनकी जान बचाने के लिए याद करते हैं। वे तमिल उग्रवादियों के विरुद्ध लड़ने वाले एक तमिल नागरिक थे, लेकिन उन्होंने कभी भी इस बात को इस नजरिए से नहीं देखा। वे स्वयं को सबसे पहले भारतीय सेना का एक अधिकारी मानते थे और इस बात का एक आदर्श उदाहरण थे कि कैसे सैनिक जाति और राजनीति की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर एक राष्ट्र के समर्पित नागरिक बनते हैं।

पैरी का जन्म 13 सितंबर 1946 को मुंबई में के.एस. और जानकी रामास्वामी के घर हुआ था। उन्होंने 1963 में मुंबई के एसआईईएस (साउथ इंडियन एजुकेशन सोसाइटी) हाई स्कूल से अपनी स्कूली शिक्षा पूरी की और 1968 में एसआईईएस कॉलेज से विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। 1971 में, जब भारत पाकिस्तान से युद्ध कर रहा था, उन्होंने चेन्नई स्थित अधिकारी प्रशिक्षण अकादमी में दाखिला लिया और 16 जून 1972 को उत्तीर्ण हुए। उन्हें 15 महार बटालियन में कमीशन मिला और उन्होंने वहां आठ साल तक सेवा की। मई 1981 में उनका विवाह उमा से हुआ। अप्रैल 1983 में उन्हें 5 महार बटालियन में स्थानांतरित कर दिया गया।
ब्रिगेडियर ई. वी. रेड्डी, जो उस समय 5 महार बटालियन में एक युवा लेफ्टिनेंट थे जब पैरी 10 साल से अधिक की सेवा के साथ एक वरिष्ठ मेजर थे, देहरादून में तैनात इस दंपति को बड़े स्नेह से याद करते हैं। वे कहते हैं, ‘वह एक मिलनसार, सौम्य व्यक्ति थे, जो किसी भी सभा में रौनक ला देते थे। वह एक कवयित्री और लेखिका थीं और दोनों एक-दूसरे के प्रति समर्पित थे।’ ये युवा अक्सर परमेश्वरन के घर भोजन करने जाया करते थे और ब्रिगेडियर रेड्डी बताते हैं कि कैसे पैरी उनके लिए इडली और डोसा जैसे दक्षिण भारतीय व्यंजन पकाकर खिलाते थे। पैरी को 8 महार बटालियन के लिए चुना गया था, जो भारतीय शांति सेना के हिस्से के रूप में श्रीलंका में उतरने वाली भारतीय सेना की पहली इकाई थी, क्योंकि वह तमिल बोल सकते थे। वे जाने के लिए बेताब थे। शांतिरक्षा अभियान पूरी तरह विफल हो गया और भारतीय सेना, जिसे शुरू में शांति बनाए रखने और तमिल उग्रवादियों को आत्मसमर्पण कराने का काम सौंपा गया था, खुद को एक शत्रुतापूर्ण ताकत से लड़ती हुई पाई। चूंकि ये शुरुआती दौर था, इसलिए भाग लेने वाली इकाइयों के पास उचित नक्शे या खुफिया जानकारी नहीं थी और उग्रवादी महिलाओं और बच्चों का खुलेआम इस्तेमाल कर रहे थे, इसलिए वर्दीधारी सैनिकों के लिए इस नागरिक बल के खिलाफ जवाबी कार्रवाई करना मुश्किल था।
8 महार में शामिल होने के ठीक एक महीने और 20 दिन बाद, 91 इन्फैंट्री ब्रिगेड, 54 इन्फैंट्री डिवीजन के हिस्से के रूप में ऑपरेशन पवन में भाग लेते हुए, पैरी कंथारोदाई की लड़ाई में शहीद हो गए। विडंबना यह है कि 23 नवंबर 1987 को, देहरादून में अपने घर पर उमा का मंगलसूत्र टूट गया, जहाँ पैरी के श्रीलंका जाने के बाद वह रुकी हुई थीं। वह बहुत दुखी हुईं क्योंकि

उन्होंने इसे अपशगुन समझा, लेकिन उनके दोस्तों ने उन्हें अंधविश्वास न करने की सलाह दी। दो दिन बाद, उन्हें खबर मिली कि उनके पति ने तमिल विद्रोहियों से लड़ते हुए अपनी जान गंवा दी है। वह पूरी तरह से टूट गईं, लेकिन बाद में उन्होंने दोबारा शादी कर ली और अपने जीवन को फिर से संवार लिया।
टिप्पणी
8 महार रेजिमेंट के कैप्टन सुनील चंद्र 16 अक्टूबर 1987 को एक दस्ते की कमान संभाल रहे थे, तभी उन्हें खबर मिली कि अन्नाइकोट्टई में स्थित एक अन्य कंपनी को आतंकवादियों ने घेर लिया है और बार-बार हमला किया है, जिससे भारी नुकसान हुआ है। सैनिकों को गोला-बारूद की तत्काल आवश्यकता थी, जो खत्म हो चुका था। हेलीकॉप्टर से आपूर्ति करने का प्रयास किया गया, लेकिन आतंकवादियों द्वारा भारी गोलीबारी के कारण यह प्रयास विफल रहा। एलटीटीई ने वहां तक पहुंचने के सभी रास्ते भी अवरुद्ध कर दिए थे।
कैप्टन चंद्र को 15 जवानों के साथ अतिरिक्त सैनिकों को ले जाने का जिम्मा सौंपा गया था।
कंपनी के लिए रवाना हुए। 16 अक्टूबर को शाम 7 बजे वे उडुविल से निकले और पैर में घायल होने के बावजूद लड़ते हुए आगे बढ़े। उनके दल में आठ जवान शहीद हो गए और वे 17 अक्टूबर को घिरी हुई कंपनी तक पहुँचे, जब उनके पास केवल 7.62 मिमी के छह गोले और दो ग्रेनेड बचे थे। उनके सीने में एमएमजी की गोलीबारी हुई, लेकिन वे रेंगते हुए कंपनी तक पहुँचे और गोला-बारूद सौंप दिया। बाद में, वे अपनी चोटों के कारण शहीद हो गए। उन्हें मरणोपरांत वीर चक्र से सम्मानित किया गया।

इस युद्ध का विवरण सूबेदार (सेवानिवृत्त) दिलीप मस्के के साथ हुई बातचीत के आधार पर तैयार किया गया था, जिन्होंने उसी अभियान में भाग लिया था।

कारगिल युद्ध 1999

भारत ने जितने भी युद्ध लड़े, उनमें से कारगिल युद्ध ने जनता के दिलों में सबसे ज़्यादा जगह बनाई। यह पहला युद्ध था जिसे लगातार मीडिया कवरेज मिला। फ़िल्म सितारों के दीवाने भारतीयों को पहली बार असली नायकों की झलक देखने को मिली, जब टेलीविजन पर सशस्त्र सैनिकों और साहसी युवा अधिकारियों की तस्वीरें सीधे हमारे कमरों में दिखाई गईं, जो टाइगर हिल और द्रास की चोटियों पर चढ़कर चालाक घुसपैठियों को खदेड़ रहे थे।
अंततः हर चोटी पर तिरंगा फहराया गया, लेकिन इनमें से कई बहादुर सैनिक युद्ध से कभी वापस नहीं लौटे। हमारे मन में शवों को सलामी देते हुए और माता-पिता, जीवनसाथी और छोटे बच्चों को अंतिम संस्कार में चुपचाप रोते हुए देखने के दृश्य रह गए, जिन्होंने हर भारतीय को हर संघर्ष के भयानक परिणाम का एहसास कराया।
हमले 15,000 फीट से अधिक की ऊंचाई पर शून्य से नीचे के तापमान में किए गए। सैनिकों को ऐसे वातावरण में लड़ना पड़ा जहां सांस लेना भी मुश्किल था। भारी पीठों के साथ, उन्हें कई दिनों तक सीमित राशन पर चढ़ाई करनी पड़ी, कभी-कभी तो उन्हें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता था, और गोलियों की बौछार और ग्रेनेड हमलों का सामना करते हुए अंततः उन दुश्मनों को खदेड़ना पड़ा जो संघों, बंकरों और बर्फ के तंबुओं में सुरक्षित बैठे थे।
भारतीय सरकार द्वारा सेना को लोको सीमा पार न करने देने के फैसले ने उनके सामरिक विकल्पों को काफी हद तक सीमित कर दिया। बटालियन कमांडरों के लिए हालात बेहद भयावह थे, क्योंकि शीर्ष अधिकारियों से रातों-रात परिणाम देने के कड़े आदेश आ रहे थे। ये परिणाम हासिल तो हुए, लेकिन भारी नुकसान के साथ। कारगिल में 25 अधिकारी और 436 जवान शहीद हुए, जबकि 54 अधिकारी और 629 जवान घायल हुए। कई जवान जीवन भर के लिए विकलांग हो गए।
इन्हीं कठिन परिस्थितियों में कारगिल युद्ध के चार वीरों को परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया। इनमें से दो अधिकारी और दो जवान थे, लेकिन केवल दो ही जीवित बच पाए और अपनी वीरता की गाथा सुना सके। बाकी दो के बारे में हमें उनके साथियों के वृत्तांतों से जानकारी मिलती है, जिन्होंने उनके साथ युद्ध लड़ा, उनकी वीरता के साक्षी बने और फिर उनके पार्थिव शरीर को घर वापस लाए।
पृष्ठभूमि: कारगिल में पाकिस्तानी आक्रमण पाकिस्तान की एक बड़ी योजना का हिस्सा था और इसने भारतीय नीति निर्माताओं को चौंका दिया। 1998-99 की

सर्दियों के दौरान, पाकिस्तानी सशस्त्र बलों के कुछ तत्व गुप्त रूप से पाकिस्तानी सैनिकों और अर्धसैनिक बलों को प्रशिक्षित कर रहे थे और उन्हें, जिनमें से कुछ कथित तौर पर मुजाहिदीन के वेश में थे, नियंत्रण रेखा के भारतीय हिस्से में भेज रहे थे। इस घुसपैठ को ऑपरेशन बदर नाम दिया गया था और इसका उद्देश्य कश्मीर और लद्दाख के बीच संपर्क तोड़ना और भारतीय सेना को सियाचिन ग्लेशियर से पीछे हटने के लिए मजबूर करना था, जिससे भारत को व्यापक कश्मीर विवाद के समाधान के लिए बातचीत करने के लिए विवश किया जा सके। पाकिस्तान का यह भी मानना था कि क्षेत्र में किसी भी प्रकार का तनाव कश्मीर मुद्दे को अंतरराष्ट्रीय मुद्दा बनाने में सहायक होगा। पाकिस्तानी लेफ्टिनेंट जनरल शाहिद अजीज, जो उस समय आईएसआई के विश्लेषण विंग के प्रमुख थे, ने बाद में कहा कि कारगिल युद्ध में केवल नियमित पाकिस्तानी सेना के सैनिकों ने भाग लिया था। लेफ्टिनेंट जनरल अजीज ने जनवरी 2013 में दैनिक अखबार 'द नेशन' में अपने लेख में लिखा, 'वहां कोई मुजाहिदीन नहीं थे, केवल रिकॉर्ड किए गए वायरलेस संदेश थे, जिनसे कोई धोखा नहीं खा सका। हमारे सैनिकों को बंजर पहाड़ियों पर तैनात किया गया था, उनके पास केवल हाथ में पकड़ने वाले हथियार और गोला-बारूद थे।'
मई 1999 की शुरुआत तक, पाकिस्तान ने मुश्कोह, द्रास, काक्सर और बटालिक क्षेत्रों में नियंत्रण रेखा (LOC) के पार अपनी रक्षा व्यवस्था को काफी हद तक बढ़ा दिया था। प्रत्येक क्षेत्र में LOC के पार घुसपैठ की सीमा 4 से 8 किलोमीटर तक भिन्न थी। उत्तरी लाइट इन्फैंट्री के नियमित सैनिकों और स्पेशल सर्विस ग्रुप के कमांडो ने तोपखाने, मोर्टार और विमान रोधी मिसाइलों के पूर्ण समर्थन से मजबूत रक्षात्मक चौकियां स्थापित कर ली थीं। सैन्य सामग्री जमा कर दी गई थी और बारूदी सुरंगें बिछा दी गई थीं। 2000 सैनिकों की एक टुकड़ी भारतीय क्षेत्र में घुस चुकी थी। वे श्रीनगर-लेह राजमार्ग पर सीधी नज़र रख रहे थे।
घुसपैठियों की सूचना सबसे पहले 6 मई 1999 को कुछ चरवाहों से मिली थी और सेना को घुसपैठ के आकार और सीमा का पता लगाने में समय लगा। भेजा गया गश्ती दल कभी वापस नहीं लौटा और 10 जून 1999 को पाकिस्तानी सेना ने गश्ती दल के नेता मेजर सौरभ कालिया और उनके पांच सैनिकों के बेरहमी से क्षत-विक्षत शव भारत को लौटाए। पाकिस्तानी सैनिकों की बर्बरता और बंदी बनाए गए भारतीय सैनिकों के साथ किया गया उनका व्यवहार भयावह था। इससे भी बुरी बात यह थी कि

भारत सरकार ने कुछ बयान देने के अलावा, इस मामले को आज तक वैश्विक संगठनों के समक्ष मजबूती से नहीं उठाया है। मेजर कालिया के पिता आज भी इस युद्ध अपराध के खिलाफ अकेले ही संघर्ष कर रहे हैं।
जब कारगिल में घुसपैठ की पूरी जानकारी सामने आई, तो उसका भयावह मंजर चौंकाने वाला था। पहाड़ों पर लड़ाई हमेशा रक्षक के पक्ष में होती है, जो अपनी सुरक्षा व्यवस्था के पीछे सुरक्षित रहता है, जबकि हमलावर, जिसे 'हमलावरों को खदेड़ने' का आदेश दिया गया होता है, खुले मैदान में पूरी तरह असुरक्षित होता है क्योंकि उसे खड़ी ढलानों पर चढ़ना पड़ता है, जो कभी-कभी लगभग सीधी होती हैं और रस्सियों के इस्तेमाल की आवश्यकता होती है। पाकिस्तानी सैनिक पूरी तरह आश्वस्त थे कि परिस्थितियाँ उनके पक्ष में इतनी प्रबल थीं कि वे किसी भी हमले को विफल कर सकते थे।
यह युद्ध जीतना मुश्किल होता, लेकिन भारतीय सशस्त्र बलों में एक ऐसा गुण था जिसे दुश्मन ने नजरअंदाज कर दिया था—अदम्य साहस। अपने अटूट साहस और दृढ़ संकल्प के बल पर, 20 वर्ष की आयु के युवा अधिकारियों ने अपने जवानों को मौत के मुंह में धकेल दिया, और दूसरों के लिए भी ऐसा करने का मार्ग प्रशस्त किया।
शुरुआत में, बिना नक्शे, आपूर्ति, पर्याप्त गोला-बारूद और यहां तक कि सर्दियों के कपड़ों के भी, कम साजो-सामान वाले पैदल सैनिक ने लड़ाई लड़ी और अंततः भारत के लिए यह युद्ध जीता। उसे तोपचियों का समर्थन प्राप्त था जिन्होंने दुश्मन सैनिकों के ठिकानों वाली ऊंचाइयों पर लगातार बमबारी करके स्थिति को कमज़ोर करने की कोशिश की और वायु सेना के पायलटों ने निडर होकर ऊपर से उड़ान भरी और दुश्मन के बंकरों पर बमबारी की।
कई महत्वपूर्ण स्थानों पर, न तो तोपखाना और न ही वायु सेना पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ सकी, क्योंकि वे दृश्य सीमा से बाहर थे। भारतीय सेना के पास सैनिकों को सीधे जमीनी हमले के लिए भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, जो धीमे थे और भारी नुकसान पहुंचाते थे, क्योंकि 18,000 फीट तक की चोटियों पर चढ़ाई बहुत कठिन थी। दिन के उजाले में कोई भी हमला आत्मघाती होता, इसलिए सभी हमले अंधेरे की आड़ में किए गए, जिससे ठंड से जमने का खतरा बढ़ गया। ठंडी हवाओं के कारण तापमान अक्सर पर्वतों की चोटियों के पास -15 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता था।

यदि भारतीय सेना ने दुश्मन के आपूर्ति मार्ग को अवरुद्ध कर दिया होता, जिससे वस्तुतः घेराबंदी जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती, तो जोखिम भरे प्रत्यक्ष हमलों से बचा जा सकता था, लेकिन इसकी अनुमति नहीं दी गई क्योंकि इसका अर्थ था कि भारतीय सैनिकों को लोकोलोकेशन सीमा (LOC) पार करनी पड़ती, जो कि भारत करने को तैयार नहीं था, क्योंकि इससे उसके पक्ष में अंतरराष्ट्रीय समर्थन कम हो जाता। इस प्रकार, सेना को कूटनीति की भारी कीमत चुकानी पड़ी और अपने खिलाफ प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने बहादुर युवा सैनिकों को खोना पड़ा।
भारत के तत्कालीन सेना प्रमुख वेद प्रकाश मलिक और कई अन्य विद्वानों के अनुसार, रसद आपूर्ति मार्गों के निर्माण सहित अधिकांश पृष्ठभूमि योजना बहुत पहले ही तैयार कर ली गई थी। कुछ विश्लेषकों का मानना है कि हमले की वह योजना, जिसे अन्य राजनीतिक नेताओं ने दरकिनार कर दिया था, अक्टूबर 1998 में परवेज़ मुशर्रफ़ की सेना प्रमुख नियुक्ति के तुरंत बाद फिर से सक्रिय हो गई। युद्ध के बाद, कारगिल संघर्ष के दौरान पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ़ ने दावा किया कि उन्हें योजनाओं की जानकारी नहीं थी और उन्हें इस स्थिति के बारे में तब पता चला जब उन्हें भारत में उनके समकक्ष अटल बिहारी वाजपेयी का एक आपातकालीन फ़ोन आया। शरीफ़ ने इस योजना का श्रेय मुशर्रफ़ और 'उनके केवल दो या तीन करीबी लोगों' को दिया, इस विचार से कुछ पाकिस्तानी लेखक भी सहमत हैं जिन्होंने कहा है कि मुशर्रफ़ सहित केवल चार जनरलों को ही इस योजना की जानकारी थी। हालांकि, मुशर्रफ़ ने दावा किया कि शरीफ़ को 20 फरवरी को वाजपेयी की लाहौर यात्रा से 15 दिन पहले ही कारगिल ऑपरेशन के बारे में जानकारी दे दी गई थी।
संघर्ष शुरू होने के दो महीने बाद, भारतीय सैनिकों ने घुसपैठियों द्वारा कब्जा की गई अधिकांश पहाड़ियों को धीरे-धीरे वापस ले लिया था; आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, अनुमानित 80 प्रतिशत अतिक्रमण वाला क्षेत्र और लगभग सभी ऊंचे इलाके भारतीय नियंत्रण में वापस आ गए थे।
कारगिल युद्ध में अपनी असाधारण वीरता के लिए चार वीर सैनिकों को परम वीर चक्र से सम्मानित किया गया। वे थे:
1. Grenadier Yogender Singh Yadav, 18 Grenadiers, Param Vir Chakra. 2. Lieutenant Manoj Kumar Pandey, 1/11 Gorkha Rifles, Param Vir Chakra,

posthumous. 3. Captain Vikram Batra, 13 JAK Rifles, Param Vir Chakra, posthumous. 4. Rifleman Sanjay Kumar, 13 JAK Rifles, Param Vir Chakra.

Manoj Kumar Pandey

बटलिक सेक्टर, कारगिल
2-3 जुलाई 1999
मनोज पांडे एक खाई में दुबके बैठे थे, मानो ऊबड़-खाबड़ भूरी ढलान में घुलमिल गए हों। वे बोफोर्स तोपों की बौछार से बैंगनी आसमान को जगमगाते देख रहे थे। ठुड्डी पर उगी बेतरतीब दाढ़ी से उनके चेहरे में खुजली हो रही थी। हेलमेट के नीचे से भी, जहाँ धातु उनके सिर से टकरा रही थी, उन्हें अपने बालों में पसीने की घिनौनी गंध आ रही थी—ठंडी, फिर भी अजीब तरह से सुकून देने वाली। चेहरे पर जमी गंदगी के बावजूद, उनके चेहरे की बनावट अच्छी थी— सुस्पष्ट सीधी नाक, दृढ़ होंठ, एकाग्रता से सिकुड़ा हुआ चौड़ा माथा। उन्होंने मूंछें नहीं रखी थीं। उनकी ठुड्डी दृढ़ थी, उनकी आँखें गर्मजोशी से भरी, भूरी और घनी पलकों वाली थीं, हालाँकि उस समय नींद की कमी के कारण वे लाल थीं। वे बिना हिले-डुले, पत्थर की तरह सामने घूरते बैठे थे, उनके खुरदुरे, मौसम की मार झेल चुके हाथ मजबूती से अपनी इंसास राइफल को पकड़े हुए थे।
उसकी कमरबंद से एक खुकरी (एक पारंपरिक नेपाली कटार) लटकी हुई थी और उसकी जांघ से रगड़ खा रही थी, मखमली आवरण में लिपटी उसकी धूर्त धार की भयावह चमक दिखाई दे रही थी। लखनऊ स्थित रेजिमेंटल केंद्र में, जहाँ उसे गोरखा राइफल्स सैनिक बनने का प्रशिक्षण दिया गया था, उसे बताया गया था कि यह निकट युद्ध में इस्तेमाल करने के लिए सबसे अच्छा हथियार है, छोटा और घातक, जो दुश्मन में तुरंत दहशत पैदा कर देता है। उसे किसी व्यक्ति की गर्दन काटने का प्रशिक्षण दिया गया था, त्वचा को तेजी से काटते हुए—दाएं से बाएं, बाएं से दाएं, एक ही शक्तिशाली वार में नसों और मांसपेशियों को चीरते हुए। रेजिमेंट के दशहरा उत्सव में, जब वह दो साल पहले अपनी यूनिट में शामिल हुआ था, उसे पूजा के बाद बलि के बकरे का सिर काटकर अपनी वीरता साबित करने के लिए कहा गया था। एक पल के लिए उसका मन डगमगाया, लेकिन फिर उसने अपने हाथ हवा में उठाए और तेज धार वाले खंजर की चमकती हुई धार से डरे हुए, मिमियाते हुए जानवर की गर्दन पर वार किया, एक ही जोरदार प्रहार में उसकी गर्दन को उसके तड़पते शरीर से अलग कर दिया, जिससे उसका घबराया हुआ, पसीने से तर

चेहरा गर्म खून से लथपथ हो गया। बाद में, अपने कमरे में, वह इस कृत्य पर कांप उठा और अपने पहले जानबूझकर किए गए शिकार के अपराधबोध को दूर करने के लिए उसने अपने हाथ छह बार धोए। वह हमेशा से शाकाहारी और शराब से परहेज करने वाला रहा था।
पिछले दो महीनों में मनोज ने जान लेने की अपनी स्वाभाविक मानवीय अनिच्छा से बहुत लंबा सफर तय किया था। उसने हमले रचे, हत्याओं की योजना बनाई और चट्टानी चोटियों पर बैठे दुश्मन सैनिकों को अचानक घेरने के लिए छुपकर हमला किया। उसने बर्फीले पहाड़ों पर चढ़ाई की, बर्फ और ओलों में पैदल चला, शुरुआती दिनों में तो बिना सर्दियों के कपड़ों के भी। वह अपनी ठंडी उंगलियों को बचाने के लिए ऊनी मोजों को दस्तानों की तरह इस्तेमाल करता था, अचानक बारिश में भीगने पर उन्हें उतारकर पानी निचोड़ता और फिर से पहन लेता था। उसने अपनी राइफल की नज़र में लक्ष्य तय किए, निशाना साधा और ट्रिगर दबाया; गोली के दूर जाते हुए और इंसान के शरीर में धंसते हुए उसकी राह को अपनी आँखों से देखा। उसने निर्मम होकर हत्याएं कीं, लोगों के सिर में, उनके दिल में गोलियां मारीं, और उन्हें खून बहते हुए मरते हुए निर्दयता से देखा।
हालांकि, मृत्युदंड के हथियार के रूप में खुकरी चलाने में उनकी दक्षता का अभी तक परीक्षण नहीं हुआ था। उनकी अंतरात्मा ने उन्हें बताया कि आज रात ही वह रात हो सकती है।

मनोज पांडे का संतुलन बिगड़ा और वह दर्द से कराह उठे। उनकी अंडरवियर के किनारे उनकी जांघों में चुभ रहे थे। हर बार हिलने पर, खुरदुरा कपड़ा उनकी कच्ची त्वचा को चीरता हुआ, एक-एक इंच और गहरा धंस जाता। वह लगभग एक हफ्ते से यही कपड़े पहने हुए थे।
अपने मैले-कुचले कपड़ों पर हाथ फेरते हुए, उसने पसीने और गंदगी की चिपचिपी जकड़न महसूस की। उसकी उंगलियाँ उन फटे-पुराने हिस्सों पर अटकी रहीं जहाँ नुकीली चट्टानों पर रेंगने से कपड़ा घिसकर तार-तार हो गया था। लेकिन साथ होने से उसे सुकून मिला। अपना सिर थोड़ा झुकाकर, उसने चुपचाप अपने साथियों

की धुंधली आकृतियों को देखा—छोटे कद के, गठीले गोरखा, जो अंधेरे में उसके चारों ओर असमान रूप से जमा थे—गंदे, भूखे और युद्ध से थके हुए, फिर भी बहादुर। उसने कोई इशारा नहीं किया, उसकी आँखें गहरी और सुस्त रहीं, उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं आया, लेकिन उनके लिए उसके दिल में गहरी गर्माहट थी।

सूरज डूब चुका था, मानो ज़मीन पर एक घना काला साया छा गया हो। इसने घास की हरी-भरी हरियाली, चमचमाते पानी की नीली धारा, ज़िले की मनमोहक सुंदरता को छुपा दिया था; और उसे यही अच्छा लगता था। दिन की रोशनी ने पाकिस्तान की इस गुस्ताखी पर उसके गुस्से को और बढ़ा दिया था कि उसने चुपके से आकर आसपास की ऊँचाइयों पर कब्ज़ा कर लिया था। भावनाएँ उसके संकल्प में बाधा बन रही थीं; आज रात उसे बस ठंडे दिमाग और जीवित रहने की एक जानवर जैसी सहज प्रवृत्ति की ज़रूरत थी।
उसके पीछे कहीं, घोर अंधेरे में, जहाँ केवल झींगुरों की आवाज़ सुनाई दे रही थी, गणसक नाला कलकल करता हुआ शांत रात के सन्नाटे में अपनी लहरें लहरा रहा था। आगे एक खड़ी, धुंधली सी दिखने वाली 70 डिग्री की ढलान दिखाई दे रही थी। वह खालुबार था, 5000 मीटर ऊँची वह पहाड़ी जिसे उसे और उसके साथियों को उस रात चढ़ना था। उनका काम था: बिना किसी की नज़र में आए ऊपर पहुँचना, दुश्मन को अचानक घेर लेना और भोर होने से पहले ऊपर बने पाकिस्तानी बंकरों को नष्ट कर देना।
उन्हें पता था कि उनमें से बहुतों के लौटने की उम्मीद नहीं है, लेकिन इससे उन्हें कोई खास फर्क नहीं पड़ा। उन्हें वो भावुक शब्द याद आए जो उन्होंने बचपन से रखी अपनी डायरी में लिखे थे: कुछ लक्ष्य इतने महान होते हैं कि उनमें असफल होना भी गौरव की बात है। अपने साथियों को एक संक्षिप्त इशारे से पीछे आने का संकेत देकर मनोज उठे, अपनी बंदूक पीठ पर टांगी और चलने लगे।

एक महीने से ज़्यादा समय से वे लगातार एक के बाद एक कई असाइनमेंट पर लगे हुए थे। सेना में वे इसे चूहे जैसी ज़िंदगी कहते थे— अंधेरे में

पहाड़ियों पर चढ़ना, दिन निकलने पर बिलों में घुसना, पीठ पर 4 किलो के बैग, मोज़ों के अतिरिक्त जोड़े, शेविंग किट और घर से आए पत्र ढोना। भूख लगने पर वे सख्त, बासी पूरियों को कुतरते थे। हालाँकि नाला पास ही था और उसका ताज़ा पानी उन्हें अपनी ओर खींच रहा था, लेकिन वे कभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते थे क्योंकि दुश्मन ऊपर से गोलीबारी करते थे। इसके बजाय, वे दरारों में हाथ डालकर बर्फ की डंडियाँ तोड़ते और उन्हें लालच से चूसकर अपनी प्यास बुझाते थे। वे अपनी पानी की बोतलों में कुटी हुई बर्फ भर लेते थे ताकि उन अंतहीन पथरीली चढ़ाइयों पर जा सकें जहाँ पानी नहीं मिलता था, और अपने दाँतों से बर्फ की डंडियों को तोड़ते और उन्हें अपने मुँह में ऐसे घुमाते जैसे बचपन में रंगीन आइसक्रीम खाते थे। जब मनोज एक थका देने वाले कार्य के बाद, बुरी तरह थका हुआ और कांपता हुआ, अपनी खाई में लौटा और कुछ पलों के आराम के लिए अपनी आँखें बंद कीं, तो उसके दिमाग के किसी कोने में छिपी हुई, समय के जालों में सावधानीपूर्वक लिपटी हुई छवियां उसे सताने के लिए वापस आ गईं।

‘भैया कुछ तो ले लो,’ (भाई, कम से कम कुछ तो ले लो) दूर से आती अपनी माँ की आवाज़ तीन साल के बच्चे को सुनाई दी। उसकी आँखें शोरगुल और रंगों की उस गहमागहमी में खोई हुई थीं, जो बड़े शहरों जैसे नौसिखियों को बहकाने की आदत में अहम भूमिका निभाती है।
लखनऊ की यह उसकी पहली यात्रा थी और रूधा गाँव का वह छोटा लड़का, अपने सबसे अच्छे खाकी शॉर्ट्स और सूती कमीज़ पहने, अपने सामने खुल रही नई दुनिया को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। उसने ये नज़ारे पहले कभी नहीं देखे थे। उसके चारों ओर फेरीवाले गुलाबी रंग की मुलायम कैंडी और नारंगी रंग की आइसक्रीम बेच रहे थे; कुरकुरे गोलगप्पे मुंह में गायब हो रहे थे, और एक लकड़ी के ठेले पर एक आदमी बर्फ को बारीक पीस रहा था जिसे वह मिट्टी के कटोरे में इकट्ठा करता, उस पर थोड़ा सा लाल सिरप छिड़कता, लकड़ी का चम्मच उसमें डालता और लोगों को देता।
उसने महसूस किया कि उसकी माँ उसका छोटा हाथ खींच रही है और अचानक उसकी इंद्रियों पर एक विशालकाय आदमी का साया पड़ गया, जिसकी काली, ऊपर की ओर उठी

हुई मूंछें थीं और पीले, पान से सने दांत थे जो उसके होंठों को खोलकर बड़ी मुस्कान देने पर चमक उठते थे। उसके पीछे, एक लकड़ी के खंभे पर गुब्बारे और चमकीले प्लास्टिक के खिलौने बंधे थे—भूरे बट वाली पिस्तौलें, चमकदार लाल चोंच वाले हरे तोते, गुलेलें, सीटियां और गुड़ियां।
उसकी नज़र एक भूरे रंग की लकड़ी की बांसुरी पर पड़ी, जिस पर गहरे रंग के धब्बे थे। उसने अपनी माँ से कहा, 'मुझे यह चाहिए।' माँ ने उसे खिलौना खरीदने के लिए मनाने की कोशिश की क्योंकि उन्हें लगा कि वह इसे बजा नहीं पाएगा, लेकिन वह नहीं माना। आखिरकार, माँ ने हार मान ली और दुकानदार को 2 रुपये देकर बांसुरी अपने बेटे के छोटे हाथ में थमा दी, उन्हें पूरा यकीन था कि दिन खत्म होने से पहले ही वह इसे फेंक देगा।
वह गलत थी। बांसुरी अगले 21 वर्षों तक मनोज के पास ही रही। वह उसे हर दिन निकालता, उस पर कोई धुन बजाता और फिर उसे अपने करीने से तह किए हुए कपड़ों के बगल में अलमारी में वापस रख देता।
जब वह पहले सैनिक स्कूल, फिर राष्ट्रीय रक्षा अकादमी (एनडीए) और अंत में कारगिल की बर्फ से ढकी चोटियों पर चले गए, तब भी बांसुरी उनके पुराने कपड़ों और यादों के बक्से में ही पड़ी रहती थी, जिसे उनकी मां ने आखिरकार देखना बंद कर दिया क्योंकि इसे देखकर उन्हें हमेशा रोना आता था।

मनोज को अपने पेट में हल्की सी गड़गड़ाहट महसूस हो रही थी। उसने सोचा कि क्या उसके बगल में बैठा आदमी भी इसे सुन पा रहा होगा। भूख बहुत तेज़ लग रही थी। उसके बैग में कहीं एक ठंडी पूरी पड़ी थी, पर उसे उसकी कोई परवाह नहीं थी। मानो वह गत्ता चबा रहा हो। इस बार उसकी जीभ उसके मन को उस मेस की याद दिला रही थी जहाँ रविवार दोपहर को नाश्ते में डोसा, सांभर और बारूद नाम की तीखी चटनी परोसी जाती थी। 'बारूद,' उसने ज़ोर से कहा और बेजान हंसी हंस पड़ा। उसका मन रेजिमेंट के उस पहले रविवार की यादों में खो गया जब कमांडिंग ऑफिसर (सीओ) ने उससे एक गिलास शराब मांगी थी। शराब न पीने वाला और सेना में नया होने के कारण, उसे पता नहीं था कि शराब कैसे परोसी जाती है और

उसने मेस वेटर को बुलाकर भोलेपन से पूछा था: 'सर, आप इसे कैसे लेंगे? सोडा के साथ या पानी के साथ?' बार में हंसी की गूंज सुनाई दी थी।
मनोज ने पुरानी यादों को भुलाने के लिए अपना सिर हिलाया और सामने के काम पर ध्यान केंद्रित किया: वह और उसके साथी लगभग नौ घंटे से घोर अंधेरे में चढ़ाई कर रहे थे। उनमें से अधिकांश ने अपनी जैकेटें मोड़कर अपने बैग में ठूंस ली थीं। मनोज के पास ऊनी मोजों की एक जोड़ी अतिरिक्त थी जिसे उसने अपनी राइफल के ब्रीचब्लॉक के चारों ओर लपेट दिया था ताकि वह गर्म रहे, चिकनाई बनी रहे और ठंड में जाम न हो। युद्ध में जब्त किया गया हथियार जीवन और मृत्यु के बीच का अंतर हो सकता है। पिछले मिशन में, एक आदमी का ब्रीचब्लॉक जाम हो गया था और उसे उसे ठीक करने के लिए जल्दबाजी में उसके नीचे एक कीमती ईंधन की गोली जलानी पड़ी थी। वह नहीं चाहता था कि आज रात ऐसा हो।
हालांकि रात का तापमान शून्य से नीचे था, कठिन चढ़ाई ने सैनिकों को पसीना छुड़ा दिया। मनोज अपने साथियों का नेतृत्व कर रहा था, फुर्ती से और चुपचाप। वह चट्टानों की दरारों में अपनी उंगलियां डालकर खुद को ऊपर खींचता, आगे का रास्ता टटोलता हुआ, जानबूझकर इस बात से बेखबर कि कहीं कोई सांप या बिच्छू दरार में छिपा न हो, हमला करने के लिए तैयार। चढ़ाई धीमी और बेहद तनावपूर्ण थी। इलाके और खराब मौसम के अलावा, लगातार यह डर बना रहता था कि पहाड़ी की अगली ही मोड़ पर दुश्मन का ठिकाना या बंकर हो सकता है। दरार में हर स्थिर परछाई किसी पठान की तरह लगती थी जो बंदूक लिए घात लगाए बैठा हो। डर लगातार बना रहता था, हर कदम पर उनका पीछा करता, दम घोंटने वाली पकड़ से उनके गले को जकड़ लेता, उनकी ठंडी, गीली त्वचा पर रोंगटे खड़े कर देता। चढ़ाई करना प्यास बढ़ाने वाला काम था और ज़्यादातर लोगों की एक लीटर की पानी की बोतलें खाली हो चुकी थीं। उन्हें बड़े पत्थरों के नीचे बर्फ के कुछ टुकड़े मिले। कुछ बर्फ ताज़ी थी जिसे प्यास बुझाने के लिए मुट्ठी भर उठाया जा सकता था, लेकिन ज़्यादातर बर्फ बारूद से इतनी दूषित थी कि किसी काम की नहीं थी। मनोज ने अपने फटे होंठों पर जीभ फिराई और पानी पीने की इच्छा होने के बावजूद हाथ नहीं बढ़ाया। बस एक आखिरी घूंट बचा था। वह उसे अंत तक मानसिक सहारे के लिए बचाकर रखना चाहता था।
उसके विचार अपनी माँ की ओर चले गए और प्यार से वहीं ठहर गए। उसने अपनी माँ को देखा, चिंता से माथे पर शिकन लिए, अपनी फीकी हरी सूती साड़ी में कोमल और

स्नेहपूर्ण भाव लिए, आगे झुककर उसके माथे पर धीरे से चुंबन करते हुए, जब वह उसे सियाचिन की कहानियाँ सुना रहा था जहाँ से वह अभी लौटा था। उसने अपनी आँखों से नमी पोंछी।

साधारण परिस्थितियों में पले-बढ़े बच्चों की तरह, मनोज हमेशा से ही सोच-समझकर खर्च करने वाला था। उसके पिता का एक छोटा सा मोज़े का व्यवसाय था और उन्हें तीन बेटों और एक बेटी के परिवार का पालन-पोषण करना था। सबसे बड़ा बेटा होने के नाते, उसके माता-पिता के घर चलाने के संघर्ष उस शांत बच्चे से कभी छिपे नहीं थे, जो कम बोलता था लेकिन अपनी गहरी पलकों के नीचे से बहुत कुछ देखता था, जो हमेशा किसी पाठ्यपुस्तक पर झुकी रहती थीं। वह शुरू से ही एक उत्कृष्ट छात्र था। वह जानता था कि उसे जीवन में सफल होना है ताकि भविष्य उसके परिवार को वह सारी खुशियाँ दे सके जो वे अभी नहीं दे सकते। वह तब तक नए कपड़े नहीं मांगता था जब तक कि पुराने कपड़ों में इतने छेद न हो जाएँ कि उन्हें सिला न जा सके; उसके पास जो भी कपड़े होते थे, उन्हें वह बड़े करीने से मोड़कर अलमारी में रख देता था। उसकी भूरे रंग की जिल्द वाली किताबें हर बार इस्तेमाल के बाद उसके स्कूल बैग में वापस रख दी जाती थीं, उसकी नोटबुक उसकी साफ-सुथरी और स्थिर लिखावट से भरी होती थीं, जिसमें दाहिनी ओर हल्का सा झुकाव होता था, ठीक वैसे ही जैसे उसकी मोंटेसरी स्कूल शिक्षिका ने उसे लिखना सिखाया था; उसकी प्रतियों पर कभी स्याही का धब्बा या पन्नों पर कोई गंदी लिखावट नहीं होती थी। मनोज जानता था कि पैसों की कमी है, वह मेहनत से कमाए गए हर रुपये की कीमत जानता था। वह समझता था कि परिवार को दिन में दो वक्त का खाना दिलाना कितना मुश्किल है, भूख को काबू में रखना कितना कठिन है।

ट्रेन धीरे-धीरे झांसी रेलवे स्टेशन से चलने लगी थी। अचानक खिड़की की लोहे की रेलिंग के पीछे से एक काला, बदसूरत, झुर्रियों वाला चेहरा उसकी ओर उभरा।

मोतियाबिंद से धुंधली, बेजान आँखों की एक जोड़ी, उसके हाथ में पकड़े चमकदार चांदी की पन्नी वाले कागज़ के खाने की थाली को लालच भरी निगाहों से देख रही थी। एक गंदा हाथ आगे बढ़ा और एक खोखले पेट की ओर इशारा किया, जिस पर फीकी पड़ी पेटीकोट के किनारों से खुरदरी त्वचा की काली सिलवटें लटक रही थीं। 'भूख लगी है बेटा,' मुरझाई हुई बूढ़ी औरत गिड़गिड़ाते हुए बोली, उसके भूरे बाल उसके चेहरे पर बेतरतीब ढंग से बिखरे हुए थे।
पिता के बटुए से खुले पैसे निकालने से पहले ही मनोज ने सलाखों के बीच से हाथ बढ़ाकर गरमागरम छोले भटूरे की थाली उन्हें थमा दी। ट्रेन ने रफ्तार पकड़ी और प्लेटफार्म से निकल गई; बूढ़ी औरत अपने खुरदुरे हाथों में पूरा भोजन लिए पीछे रह गई।
मनोज की तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए एनडीए की पासिंग-आउट परेड के बाद उसने एक दिन कुछ नहीं खाया था। उसके पिता उसे खिलाने के लिए झांसी गए थे। जब उसकी मां ने खाना बांटने पर उसे डांटा, तो उसने प्यार से कहा कि वह एक मजबूत नौजवान है और दो दिन भूखा रह सकता है, लेकिन उस बुढ़िया को खाना चाहिए।

वे लोग चौदह घंटे से अधिक समय से चढ़ाई कर रहे थे। उन्होंने चौबीस घंटे से नींद नहीं ली थी। अचानक हुई ओले और बर्फ की बौछारों ने उन्हें ठंड से तर कर दिया था। उन्होंने खतरनाक रास्ते का गलत अनुमान लगाया था, अंधेरे में दो बार रास्ता भटक गए थे और जब तक उन्हें चोटी की धुंधली सी झलक दिखाई दी, तब तक सुबह हो चुकी थी।
दुश्मन की नज़र में आने से पहले उनके पास वापस लौटने का विकल्प था, लेकिन मनोज ने मन बना लिया था—वे जिस काम के लिए भेजे गए थे, उसे पूरा करके ही रहेंगे। अब पीछे हटने का कोई रास्ता नहीं था। वे खराब मौसम और चट्टानों पर छाई नम धुंध का भरपूर फायदा उठाते हुए दुश्मन के बंकरों पर धावा बोलेंगे, जो अपने रास्ते में आने वाली हर चीज़ को अपनी ठंडक से जकड़ रही थी।
एक बार फिर गोलियों की बौछार से आसमान जगमगा उठा। मनोज जानता था कि सिंधु नदी के किनारे राजमार्ग पर तोपें कतार में लगी हुई हैं और एक बार में कम से कम 20,000 गोले दागे जा रहे हैं। उनका मकसद दुश्मन का ध्यान भटकाना था,

इसीलिए वह और उसके साथी अब तक 70 डिग्री की ढलान पर बिना किसी की नजरों में आए चढ़ पाए थे। लेकिन इस बार गोलीबारी खतरनाक रूप से करीब आती हुई लग रही थी। गोलों के फटने के साथ ही गोलियों की बौछार हुई और अचानक एक सिपाही दर्द से चीख उठा और गिर पड़ा।
मनोज चिल्लाया, “छिप जाओ, ये दुश्मन की गोलीबारी लग रही है।” गोलियां, रॉकेट और मशीनगन की बौछारें अचूक निशानेबाजी से उन पर आ रही थीं। ठंडी सुबह की खामोशी में घायल सैनिकों की चीखें गूंज रही थीं।
जिस चट्टान के पीछे छिपकर मनोज ने शरण ली थी, वहाँ से उसने बाहर देखा। उसके चारों ओर मौत और तबाही का मंजर था। अंग क्षत-विक्षत हो चुके थे, मांस छिन्न-भिन्न हो चुका था और खून मिट्टी में रिस रहा था, वहीं उसके साथियों की दिल दहला देने वाली चीखें बंजर भूरे पहाड़ों की निर्जीव शांति में गूंज रही थीं।
उन्हें पता था कि उन्हें दिनदहाड़े, तुरंत दुश्मन पर धावा बोलना होगा। जैसे ही उन्होंने मन बना लिया, एड्रेनालाईन के प्रवाह ने उनकी दुविधा, भय और घबराहट को दूर कर दिया। उनकी हड्डियों में समा रही कंपकंपी पैदा करने वाली ठंड की जगह उनकी नसों में दौड़ते खून की गर्मी ने ले ली। जैसे ही ट्रेसर बुलेट उनके पास से गुजरी और छर्रों और आग के घातक मिश्रण से उस जगह को रोशन कर दिया, मनोज सीधे खड़े हो गए, लंबे और साहसी, उनका दुबला-पतला शरीर स्प्रिंग की तरह मुड़ा हुआ था, उनका चेहरा भावहीन था। हवा के शोर के बीच, उन्होंने अपने उन साथियों को दहाड़ा जो लड़ने के लिए तैयार थे, और उन्हें गोलियों की बौछार के बीच उनका पीछा करने का आदेश दिया। अजेय शक्तियों वाले एक विशाल देवता की तरह, वह गोलियों और गोले के पर्दे में चले गए। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा कि किसने उनके अंतिम आदेश का पालन किया है, लेकिन अगर उन्होंने देखा होता तो वे संतुष्ट होते। उनके सभी गोरखा जवान जो खुद को संभाल कर चल सकते थे, उनके ठीक पीछे थे, उनके हाथों में उनकी खुखरी मजबूती से पकड़ी हुई थी।
मृतकों या मरणासन्न लोगों को पीछे छोड़ते हुए, वे क्रोधित शेरों की तरह दौड़ पड़े, ओलों से ढकी नुकीली चट्टानों पर मजबूती से पैर जमाते हुए, उस आदमी का पीछा करने लगे, जो गोलियों की बौछार के बीच से पहली बार नहीं गुजर रहा था। उन्होंने उसे ऐसा करते पहले भी देखा था। लगभग एक महीने पहले।

लगभग एक महीने पहले
कारगिल युद्ध शुरू होने के बाद से दस दिनों से अधिक समय से एक संकरी घाटी में घात लगाकर हमला किए गए गश्ती दल के चार जवानों के शव पड़े हुए थे। ये उस प्रारंभिक गश्ती दल के सदस्य थे जिन्हें कब्जे वाली ऊंचाइयों की टोह लेने के लिए भेजा गया था, क्योंकि भारतीय सेना ने दुश्मन की घुसपैठ का घोर अनुमान नहीं लगाया था। इस बात से पूरी तरह अनजान कि घाटी के दोनों ओर पाकिस्तानी सैनिक उन पर नजर रख रहे थे, वे एक घातक जाल में फंस गए। दोनों ओर ऊंचाई पर बैठे दुश्मन सैनिकों ने उन्हें बेहद करीब से गोली मारकर हत्या कर दी। शवों को निकालने के सभी प्रयासों को पाकिस्तानी सैनिकों ने विफल कर दिया, जो भारतीय पक्ष से कोई भी गतिविधि देखते ही अंधाधुंध गोलीबारी शुरू कर देते थे।
मनोज ने स्वेच्छा से मृतकों को वापस लाने का जिम्मा उठाया और इस बात पर जोर दिया कि उनके शवों को तिरंगे में लपेटकर उनके परिवारवालों को सौंप दिया जाए। वह और उसके साथी चट्टानों के पीछे छिपते हुए ऊँचाई पर चढ़ गए और दुश्मन से भी ऊपर पहुँच गए। फिर जब कुछ सैनिक गोलीबारी में व्यस्त थे, तब अधिकारी और उसके कुछ साथी रेंगते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शव पड़े थे, और गोलियों की बौछार की परवाह न करते हुए, गोलियों से छलनी शवों को खाई से बाहर खींच लाए।
मनोज सबसे पहले पहुँचने वालों में से एक था और उसने हिम्मत दिखाते हुए एक मृत व्यक्ति के पास रेंगकर उसे एक बड़े पत्थर के पीछे खींच लिया। एक पल के लिए वह अपने मृत साथी को देखने के लिए रुका और उसका दिल गुस्से से भर उठा। शरीर छर्रों से बुरी तरह क्षत-विक्षत था और वह उस आदमी का चेहरा नहीं पहचान पा रहा था। उसकी खून से सनी उंगली पर एक सोने की अंगूठी थी जिससे उसे लगा कि वह आदमी शायद शादीशुदा था। यहाँ तक कि उसकी कमर पर बंधी बेल्ट भी गोलियों के छेदों से छलनी थी।
'तुम कमीने कुत्तों, मैं तुम्हें अपने देश से बाहर निकाल दूंगा,' उसने गुस्से में चिल्लाते हुए दुश्मन से वादा किया था और फिर अपनी पूरी ताकत लगाकर मृत सैनिक को वापस घसीट कर लाया था।

यह एक चमत्कारिक बचाव था और एक दशक बाद भी, इस ऑपरेशन को देखने वाले अधिकारी मेस में व्हिस्की का गिलास लेकर बैठते और उस अद्भुत व्यक्ति को याद करते, जिसने असंभव को संभव कर दिखाया था। वे कहते, 'उसने जो किया, उसके लिए बहुत बड़े दिल की ज़रूरत थी। केवल वही ऐसा कर सकता था।'

एक बार फिर साहस दिखाने का समय आ गया है और मनोज अपने साथियों को निराश नहीं करता। रगों में दौड़ते एड्रेनालाईन से लबालब, वह उन्हें अपने पीछे आने का इशारा करता है और आत्मरक्षा की हर प्रवृत्ति को दरकिनार करते हुए, गोलियों की बौछार के बीच से होते हुए पहाड़ी पर बने पहले बंकर तक पहुँचता है—कटे हुए पत्थरों का ढेर, जिसकी छत एक बड़े पत्थर की है और जो चारों ओर छाए घने कोहरे में धुंधला दिखाई दे रहा है। वह पाकिस्तानी नॉर्दर्न लाइट इन्फैंट्री के दो सैनिकों की धुंधली आकृतियाँ देख सकता है। उसे किसी प्रयास का एहसास नहीं होता, लेकिन कमर पर एक ज़ोरदार झटका उसे बताता है कि उसका हाथ वहाँ लटकी खुकरी के हैंडल को पकड़ चुका है और एक झटके में उसे बाहर निकाल लेता है। जैसे ही उसका हाथ ठंडी हवा में खूंखार धार लहराता है, म्यान उसके बगल में बेजान होकर गिर जाती है। ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर दौड़ते हुए, गिरती बर्फ में पत्थरों को कूदते हुए, उसके दिल की धड़कन पल भर में थम जाती है। उसका चेहरा मौत के भयानक मुखौटे जैसा दिखता है, और वह क्रूर और गर्वित होकर दुश्मन सैनिकों पर टूट पड़ता है। हवा में एक सरसराहट होती है, जैसे ही तलवार गिरते बर्फ के टुकड़ों को चीरती हुई आगे बढ़ती है, चमक उठती है और मानव शरीर को चीर देती है।
दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ। फिर से। और फिर से। सदमे में डूबे पाकिस्तानी सैनिकों के शरीर, जिनकी आँखों में दहशत साफ झलक रही थी, खून से लथपथ ढेर में गिर पड़े। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कोई इस जानलेवा गोलीबारी के बीच से अंदर आ जाएगा। अगर वह देख रहा होता, तो उस नौजवान अधिकारी के रेजिमेंटल सेंटर के खुखरी उस्ताद को अपने शिष्य पर गर्व होता, जब वह अपनी खुखरी से खून टपकने देता है और अपने अगले लक्ष्य को खोजने के लिए ऊपर देखता है।

दूसरे बंकर की ओर दौड़ते हुए, जवान दुश्मन पर टूट पड़ते हैं और खूनी हाथापाई शुरू हो जाती है, 'जय महाकाली, आयो गोरखाली' के नारे ठंडी सुबह को चीरते हुए गूंजते हैं। जवाबी गोलियां चलती हैं। कुछ दुश्मन सैनिक संगीनों से हमला करते हैं, लेकिन अधिकांश पाते हैं कि वे साहसी गोरखाओं का मुकाबला नहीं कर सकते, जिनकी घातक खुखरी गीली चट्टानों पर खून बिखेर रही है। अचानक मनोज दर्द से कराह उठता है। उसके कंधे में गोली लगी है। बेपरवाह, और उस क्षण की गर्मी में दर्द को महसूस किए बिना, वह अपनी बंदूक निकालता है और अगले बंकर की ओर बढ़ता है, वहां छिपे हुए लोगों पर गोलियों की बौछार कर देता है।
एक और गोली आती है और उसके पैर में लगती है, जिससे वह लड़खड़ा जाता है। 'ना छोड़ु,' (इन्हें मत छोड़ो) वह गोरखाली में चिल्लाता है, अपने साथियों को नरसंहार जारी रखने का आदेश देता है, और अपने घायल पैर को घसीटते हुए आगे बढ़ता है। एक ग्रेनेड उठाकर, वह उसे चौथे बंकर की ओर फेंकता है, जहाँ से मोर्टार से उन पर गोले दागे जा रहे थे। जैसे ही एक विस्फोट आसमान को चीरता है, पत्थरों और मलबे का एक धुंधला भूरा बादल उठता है, एक घातक गोली हवा में गूंजती है और अधिकारी के माथे पर लगती है। पीले रंग की एक चमक दिखाई देती है और वह जलते हुए बारूद की गंध और कड़ाके की ठंड में गर्माहट से घिर जाता है। उसका पूरा शरीर भयानक दर्द से तड़प रहा है; उसका दिमाग जल रहा है, उसके फेफड़े सांस लेने के लिए हांफ रहे हैं, उसका दिल मानो सीने से बाहर निकलना चाहता है और उसकी जीभ प्यास से सूखकर सूज गई है। वह आगे बढ़कर जलते हुए बंकर से बाहर कूदते हुए पाकिस्तानी सैनिक को गोली मारना चाहता है और ढलान से नीचे भागना चाहता है, लेकिन उसका अवज्ञाकारी शरीर उसके आदेशों को सुनना बंद कर चुका था। वह बस देखता रह जाता है जब उसके हाथ राइफल छोड़ देते हैं, उसकी उंगलियां ट्रिगर से फिसल जाती हैं, उसके घुटने लड़खड़ा जाते हैं और उसकी गर्दन धड़कती हुई छाती पर आगे की ओर झुक जाती है। खून उसके चेहरे से बहने लगता है, जिससे उसकी दृष्टि धुंधली हो जाती है। उसके सिर में एक पल के लिए रोशनी चमकती है, फिर घोर अंधेरा और सन्नाटा छा जाता है। अंत में, उसे अपनी आंखें बंद करनी पड़ती हैं।
1/11 गोरखा राइफल्स के मनोज कुमार पांडे का निधन हो गया है; उनका रक्तरंजित शरीर एक चाप की तरह झुककर खालुबार के चौथे बंकर के सामने धीरे से जमीन पर गिर पड़ा। उनकी उम्र 24 वर्ष और सात दिन थी।

लगभग छह साल पहले...
गर्मी की उमस भरी दोपहर में, एक दुबला-पतला लड़का, जिसके बालों में एक तरफ़ मांग निकली हुई थी और उसने चमकदार नए चमड़े के जूते पहने थे, एनडीए के लिए सेवा चयन बोर्ड के साक्षात्कार हेतु पैदल चल पड़ा। वह अपने पैर की उंगलियों में हो रही चुभन, मोज़ों में लगी सस्ती इलास्टिक की जलन और अपने गरीब पिता से जूते खरीदने के लिए पैसे मांगने के अपराधबोध से अपना ध्यान हटाने की कोशिश कर रहा था। उसने खुद को याद दिलाया कि वह अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ एनसीसी कैडेट है और उसे पूरी उम्मीद थी कि साक्षात्कार के दौरान अंग्रेज़ी का उसका बुनियादी ज्ञान उसका साथ नहीं छोड़ेगा।
'आप सेना में क्यों शामिल होना चाहते हैं?' साक्षात्कार लेने वाले अधिकारी ने सख्त और रूखे स्वर में पूछा, और सीधे उसकी आंखों में देख रहे थे।
‘मैं परम वीर चक्र जीतना चाहता हूँ,’ उसने घूरते हुए जवाब दिया, उम्मीद करते हुए कि वाक्य व्याकरण की दृष्टि से सही हो। साक्षात्कारकर्ता ने बोर्ड पर मौजूद अन्य लोगों की ओर देखा और मुस्कुराया।
कहते हैं, कभी-कभी हवा में जादू होता है और हमें अपने शब्दों के प्रति सावधान रहना चाहिए क्योंकि वे सच हो जाते हैं। उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले के युवा मनोज कुमार पांडे न केवल एनडीए में चुने गए, बल्कि उन्होंने सशस्त्र बलों के सर्वोच्च वीरता पुरस्कार परम वीर चक्र को भी जीत लिया।
दुर्भाग्य से, उन्होंने यह नहीं कहा था कि वे इसे लाइव पहनना चाहते हैं।

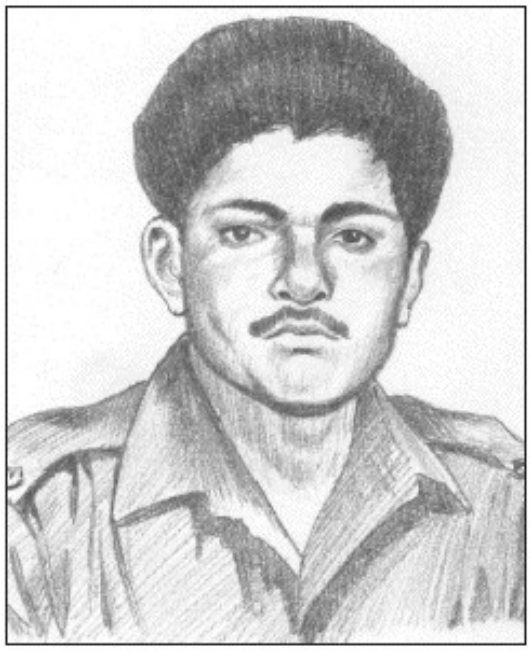

Yogender Singh Yadav

ग्रेनेडियर योगेंद्र सिंह यादव लाशों के ढेर में पड़े थे। उनके चारों ओर उनके छहों साथी बेरहमी से मारे गए थे। उनकी उंगलियां चीर दी गई थीं, अंग शरीर से अलग कर दिए गए थे, टांगें धड़ के नीचे विकृत रूप से मुड़ी हुई थीं, और सिर बुरी तरह से कुचले हुए थे।
युद्ध भयानक होता है। यह साँस लेते, जीते, बहादुर नौजवानों को खून से लथपथ मांस और हड्डियों के ढेर में बदल देता है। यह दोस्तों, सहकर्मियों, भाइयों, पिताओं और पतियों को ज़ख्मी, टूटे-फूटे, बेजान शरीरों में बदल देता है, जो एक-दूसरे से अलग नहीं दिखते, उनकी खाली, बेजान आँखें उनके द्वारा सहे गए दर्द की मूक गवाह होती हैं। यह सैनिकों को भी, जो प्रशिक्षित, भावनाहीन हत्या की मशीनें होते हैं, भावनात्मक रूप से टूट चुके लोगों में बदल देता है।
जब योगेंद्र सिंह उठने की कोशिश कर रहे थे, तो उनका पैर लड़खड़ा गया और वे वहीं लेटकर रोने लगे। उनकी सिसकियों की गूंज टाइगर हिल की ठंडी, सुनसान ऊंचाइयों में गूंज रही थी। वे तब तक रोते रहे जब तक उनकी आंखें सूख नहीं गईं और उनके गले में रोने की ताकत नहीं बची। उन्हें तब पता नहीं था, लेकिन उनके शरीर में चौदह गोलियां धंसी हुई थीं। उनमें से छह गोलियां उनकी बांह में लगी थीं, जिससे उनकी बांह बेकार हो गई थी और कंधे से लटकी हुई थी। हड्डियां बाहर निकली हुई थीं और हर बार वजन बदलने पर एक-दूसरे से रगड़ खाकर दर्द कर रही थीं। एक ग्रेनेड उनके पैर के पास फटा था, जिससे उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे उनकी टांग कट गई हो - उन्हें उसमें कोई महसूस नहीं हो रहा था। एक और ग्रेनेड उनके चेहरे पर लगा था, जिससे उनके माथे पर गहरा घाव हो गया था और खून उनकी आंखों में टपक रहा था।
उसने सोचा, सब कुछ खत्म हो गया था।

जब कारगिल युद्ध शुरू हुआ, तब योगेंद्र सिंह यादव छुट्टी पर थे। उनकी शादी को बमुश्किल दो हफ्ते ही हुए थे और रीना का सुंदर, मुस्कुराता हुआ चेहरा

उनके मन में बसा हुआ था, जब 22 मई को वे द्रास में अपनी बटालियन में शामिल हुए। उसी दिन उन्हें अपनी पहली क्षति का सामना करना पड़ा। युद्ध की वास्तविकता का अहसास योगेंद्र सिंह को तब हुआ जब उन्हें एक लड़ाकू कुली के रूप में शुरुआती तैनाती के दौरान 22 दिनों में दो अधिकारियों, दो जूनियर कमीशंड अधिकारियों और 21 सैनिकों की मौत का सामना करना पड़ा।
2 राज. राइफ़ल्स (राजपुताना राइफ़ल्स) और 13 जेएके राइफ़ल्स (जम्मू और कश्मीर राइफ़ल्स) द्वारा तोलोलिंग पर कब्ज़ा करने के बाद, योगेंद्र की बटालियन को घुमरी वापस बुला लिया गया, जहाँ उन्होंने कुछ दिन आराम किया और उपकरणों की मरम्मत की। चार दिनों के भीतर, उन्हें द्रास क्षेत्र की सबसे ऊँची चोटी टाइगर हिल पर हमला करने का आदेश मिला। पाकिस्तानी सैनिकों ने वहाँ बंकर बना रखे थे। बटालियन के कमान अधिकारी कर्नल कुशल चंद ठाकुर ने एक सभा आयोजित की और सैनिकों को उनके सामने मौजूद कार्य के बारे में जानकारी दी। उन्होंने बताया कि वे भाग्यशाली हैं कि उन्हें अपने शहीद सैनिकों की मौत का बदला लेने का मौका मिल रहा है। कड़ाके की ठंड में खड़े होकर उन्होंने उन्हें उस चौकी की ओर इशारा किया जिस पर उन्हें हमला करना था।
बटालियन की कमांडो टुकड़ी, घातक प्लाटून, सबसे पहले हमला करने वाली थी। योगेंद्र सिंह यादव घातक प्लाटून में नहीं थे, लेकिन टोलिंग में शहीद हुए जवानों की जगह भरने के लिए उन्हें चुना गया। वे कहते हैं, “हम 23 लोग थे, एक अधिकारी, एक जेसीओ और 21 जवान। मैंने ऊपर देखा जहाँ सी.ओ. साहब इशारा कर रहे थे और मुझे आसमान की ओर उठती हुई एक सीधी चट्टान दिखाई दी। मैंने सोचा, चढ़ाई मुश्किल होगी, लेकिन हम कर लेंगे।” जवानों को जल्द ही पता चल गया कि रास्ता न केवल कठिन था, बल्कि दोनों ओर दुश्मन की चौकियाँ भी थीं। उन्हें न केवल दुश्मन की गोलीबारी से बचना था, बल्कि अत्यधिक ऊँचाई के कारण साँस लेने में तकलीफ हो रही थी, उचित सर्दियों के कपड़ों की कमी एक बड़ी बाधा थी और ठंड उनकी हड्डियों तक जम रही थी।

2-3 जून 1999

वह एक अंधेरी रात थी। कैप्टन सचिन निम्बालकर और लेफ्टिनेंट बलवान के नेतृत्व में, जवान खामोशी से चढ़ाई कर रहे थे। कोई भी उस खामोशी को भंग नहीं करना चाहता था, खासकर इसलिए क्योंकि उन्हें नहीं पता था कि यह कब तक चलेगी। हाथों, पैरों और रस्सियों का सहारा लेकर एक-दूसरे को ऊपर खींचते हुए, वे टाइगर हिल पर ऊँचाई पर चढ़ते गए, धुंधली आकृतियाँ रात के भूतों की तरह दिखाई दे रही थीं। हर कदम के साथ ठंड बढ़ती जा रही थी और जवानों को सर्दियों के कपड़ों की बहुत याद आ रही थी जो अभी तक उन तक नहीं पहुँचे थे। उनमें से अधिकांश ने स्वेटर और जैकेट सहित युद्धक साजो-सामान पहन रखा था; उनके पास अपने दस्ताने और बूट थे, लेकिन ये स्नो शूज़ और दस्तानों के आराम की तुलना में कुछ भी नहीं थे। अतिरिक्त सैनिक तभी पहुँचेंगे जब 18 ग्रेनेडियर्स टाइगर हिल पर कब्जा कर लेंगे, लेकिन घातक प्लाटून और डेल्टा कंपनी के इन जवानों के लिए, जिन्हें आक्रमण और सहायता का जिम्मा सौंपा गया था, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।
भोर होते ही उन लोगों को एहसास हुआ कि वे पूरी रात चढ़ाई करते रहे थे। चट्टानों के पीछे छिपकर वे स्थिति का जायजा लेने के लिए रुक गए। उनके थैलों में 72 घंटे का राशन था—सूखी पूरियां, काजू, किशमिश, बादाम, चाय की पत्तियां और दूध पाउडर। कुछ लोगों ने पिछले गांव से बिस्कुट खरीदे थे, इसलिए उनके पास दूसरों की तुलना में अधिक राशन था।
आगे एक पहाड़ी दिखाई दी जिसे कप्तान निम्बालकर ने टाइगर हिल समझा। सैनिकों ने आगे बढ़ने का फैसला किया और सुबह 5:30 बजे वहाँ पहुँचकर निराश हुए क्योंकि वह एक झूठी पहाड़ी थी। वे नीचे उतरे और फिर चलने लगे। पूरा दिन बीत गया और भूख सताने लगी, लेकिन सैनिक रुके नहीं।
शाम करीब छह बजे तक वे लगभग चोटी पर पहुँच चुके थे। कैप्टन निम्बालकर ने घातक प्लाटून को आराम करने और चाय बनाने के लिए कहा, जबकि वे और कुछ अन्य सैनिक इलाके का जायजा लेने गए। इलाका शांत और खामोश लग रहा था और निम्बालकर और उनके जवान लगभग 100 मीटर ही आगे बढ़े थे कि अचानक उन पर गोलियों की बौछार होने लगी। वे सीधे एक ऐसी पहाड़ी पर पहुँच गए थे जिसके दोनों ओर दुश्मन के बंकर थे।
चट्टानों के पीछे छिपकर उन्होंने मदद के लिए पुकारा। जवानों ने गोलीबारी शुरू की, लेकिन यह पूरी तरह से बेअसर रही क्योंकि वे केवल गोलियों की बौछार देख पा रहे थे, पाकिस्तानी सैनिकों का ठिकाना नहीं। चाय का ब्रेक तुरंत

रद्द कर दिया गया और कमांडिंग ऑफिसर को वायरलेस के ज़रिए इस हार की सूचना दी गई। उन्हें चट्टानों के पीछे छिपकर रहने और अपना सिर नीचे रखने को कहा गया—सेना तोपखाने से सहायता देगी। द्रास से तोपों ने गोलीबारी शुरू की और आखिरकार आधी रात तक जवानों को बचा लिया गया। चमत्कारिक रूप से सभी सैनिक सुरक्षित थे, सिवाय एक सैनिक के जिसका हाथ घायल हो गया था।
अब जब उनकी छुपकर रहने की बात खुल चुकी थी और पाकिस्तानी सैनिकों को पता चल गया था कि भारतीय सैनिक टाइगर हिल पर पहुँच चुके हैं, तो कमांडिंग ऑफिसर कुशल ठाकुर ने सैनिकों को दुश्मन की प्रतिक्रिया से पहले ही हमला करने का निर्देश दिया। जब जीवन और भोजन में से किसी एक को चुनने की बारी आई, तो भोजन एक बार फिर पीछे छूट गया और भोजन की सारी योजनाएँ रद्द कर दी गईं। सैनिक उठ खड़े हुए और योगेंद्र सिंह यादव और उनके हमनाम योगेंद्र यादव के नेतृत्व में, जो क्रमशः पहले और दूसरे स्काउट थे, उन्होंने फिर से चढ़ाई शुरू कर दी। सुबह 5:30 बजे जब वे एक नाले में थे और पैरों के नीचे रिसते पानी वाले एक संकरे पुल से ऊपर चढ़ रहे थे, तभी अचानक उन पर गोलियों की बौछार होने लगी। ये गोलियाँ पहाड़ी के दोनों ओर बने दुश्मन के बंकरों से आ रही थीं।
वहाँ पूरी तरह से अफरा-तफरी मची हुई थी और केवल आगे चल रहे सात सैनिक ही ऊपर चढ़ने में कामयाब रहे, बाकी सभी गोलीबारी में घिर गए और पीछे हटने को मजबूर हो गए। योगेंद्र सिंह यादव, उनके साथी योगेंद्र यादव और पांच अन्य सैनिक दुश्मन की गोलीबारी को पार करने में कामयाब रहे। हालांकि, वे अपने बाकी साथियों से अलग हो गए थे। उनके पास आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।
उनके लिए एक भयानक साहसिक यात्रा इंतजार कर रही थी।

योगेंद्र की कहानी
अब हम सिर्फ सात लोग बचे थे और दुश्मन ने हमारा रास्ता काट दिया था, इसलिए हम पीछे भी नहीं हट सकते थे। हमने आगे बढ़ने का फैसला किया। ठीक सामने हमें एक चौकी दिखाई दी। यह पत्थरों को ढेर करके बनाया गया एक कच्चा संगर (पत्थर

से बना एक छोटा, अस्थायी किला, जो अब रेत की बोरियों और इसी तरह की सामग्री से बना था) था। हमें नहीं पता था कि अंदर कितने लोग थे, लेकिन चूंकि हमने उन्हें उनसे पहले देख लिया था, इसलिए हमने उन पर गोलियां चला दीं।
उनके चार जवान मौके पर ही मारे गए। जब उन्होंने गोलीबारी बंद की, तब हमें पता चला कि वे सब मर चुके हैं। तब तक, गोलीबारी की आवाज सुनकर, हमारे ऊपर वाले एक दूसरे बंकर में मौजूद पाकिस्तानी सैनिकों ने भी हम पर गोलीबारी शुरू कर दी थी। यह एक अड़चन भरी स्थिति थी। गोलियां हवा में उड़ रही थीं और हम न तो पीछे जा सकते थे और न ही आगे।
तभी, हमारे टीम लीडर हवलदार मदन ने चिल्लाकर कहा, “उनके बंकर के अंदर जाओ। वही एकमात्र सुरक्षित जगह है।” किसी ने जवाब में कहा कि उस इलाके में बारूदी सुरंगें बिछी हो सकती हैं, लेकिन हवलदार मदन ने कहा कि कोई विकल्प नहीं है। उन्होंने कड़े शब्दों में कहा, “पहले गोलियों से बचो, फिर बारूदी सुरंगों के बारे में सोचना।” और हम बंकर की ओर दौड़ पड़े। उन्हें बारूदी सुरंगें बिछाने का समय नहीं मिला था। अंदर घुसते ही हमने फायरिंग पोजीशन ले ली और चारों ओर मृत पाकिस्तानी सैनिकों के शव पड़े होने के बावजूद, हमने अपने ऊपर बने बंकर पर गोलियां बरसा दीं।
पांच घंटे तक लगातार गोलीबारी चलती रही। कोई हताहत नहीं हुआ, लेकिन लगातार गोलीबारी के कारण हम एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाए। हमें एहसास हुआ कि नीचे से आ रही सभी अतिरिक्त सहायता के कट जाने के कारण हमारा गोला-बारूद ज्यादा देर तक नहीं चलेगा। मृत पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा छोड़ा गया गोला-बारूद भी तेजी से खत्म हो रहा था। गोलियां खत्म होने में बस कुछ ही समय बाकी था। हमें लगा कि हम मर जाएंगे और हमने फैसला किया कि मरने से पहले हम जितने हो सके उतने लोगों को मार गिराएंगे। इसलिए, हमने गोलीबारी बंद करने और उन्हें करीब आने देने का फैसला किया।
सुबह करीब 11:30 बजे, दुश्मन के 12 सैनिक यह देखने आए कि हम जिंदा हैं या मर गए। हमारी राइफलों में अभी भी 45-45 गोलियां थीं और हम छुपकर बैठे थे। वे बहुत करीब आ गए थे। मुझे वे आज भी साफ-साफ याद हैं, उन्होंने क्रीम रंग के पठानी सूट और पीले रंग की पगड़ी पहनी हुई थी और उनकी दाढ़ी लंबी थी। उन्होंने हुड वाले सफेद कोट पहने हुए थे। उनमें से कुछ बहुत लंबे थे जबकि कुछ मध्यम कद के थे।

जब तक वे बिल्कुल करीब नहीं आ गए, हम चुप रहे। फिर अचानक हम सातों ने उन पर गोलियां चला दीं। दो दुश्मन सैनिक बच निकलने में कामयाब रहे, बाकी सभी मारे गए। बचे हुए जवान अपनी दूसरी चौकी की ओर भागे और आधे घंटे के भीतर 35 से अधिक पाकिस्तानी जवानों ने हमें घेर लिया। गोलियों की आवाज चोटियों में गूंज उठी क्योंकि उन्होंने अपने भारी हथियारों से हम पर गोलियां बरसाईं। हम पर एचएमजी (भारी मशीन गन), यूएमजी (उबर मशीन गन) और आरपीजी (रॉकेट-चालित ग्रेनेड) के गोले बरसाए जा रहे थे जो ऊपर से संगर की ओर आ रहे थे। उन्होंने हम पर बड़े-बड़े पत्थर भी लुढ़काने शुरू कर दिए।
हमारे पास गोला-बारूद बहुत कम था, इसलिए हम उसे बर्बाद नहीं करना चाहते थे और हमने फायरिंग रोक दी। उन्होंने हमारी लाइट मशीन गन देख ली और उस पर आरपीजी से हमला कर दिया, जिससे उसका बैरल उड़ गया। एक युवा सैनिक उसे चला रहा था और वह घबराकर हवलदार मदन के पास भागा। हवलदार मदन ने मुझे एलएमजी उसकी तरफ फेंकने को कहा। जैसे ही मैं उसे उठाने गया, मैंने ऊपर देखा और संगर के ठीक ऊपर पठानी सूट पहने सात आदमियों को खड़ा पाया। 'उस्ताद, वो आ गए हैं,' मैंने हवलदार मदन को चिल्लाकर कहा। उस्ताद ने मुझे और ग्रेनेडियर अनंत राम को हमारे स्नाइपर लांस नायक नरेश की मदद के लिए जाने को कहा। जैसे ही मैं ऐसा करने के लिए दौड़ा, उन्होंने मुझ पर एक ग्रेनेड फेंका। वह मेरे घुटने में लगा; ऐसा लगा जैसे मेरा पैर उड़ गया हो। मैंने हाथ से छूकर देखा और राहत महसूस की कि वह अभी भी वहीं है। तभी एक और ग्रेनेड मेरे माथे पर लगा। मैं दर्द से बेहाल होकर गिर पड़ा और गहरे घाव से टपकता खून मेरी आंखों में समा गया। यह खुले नल से बहते पानी की तरह बह रहा था। मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।
तब तक ग्रेनेडियर अनंत और मैं दोनों लांस नायक नरेश के पास पहुँच चुके थे, जो स्नाइपर थे और जिनकी मदद करने के लिए हमें कहा गया था। खून मेरी आँखों में बह रहा था, इसलिए मैंने नरेश से अपने सिर पर पट्टी बाँधने को कहा, लेकिन उन्होंने मुझे पहले गोली चलाने को कहा। मैं वहाँ पड़े एक पुराने स्लीपिंग बैग से अपने चेहरे से खून पोंछता रहा। मेरी हालत देखकर नरेश ने अपनी पट्टी खोली। जैसे ही वह मेरे घाव पर पट्टी बाँधने की कोशिश कर रहे थे, एक गोला उन्हें लगा। उन्होंने आँखें बंद कर लीं, पीछे की ओर झुके और गिर पड़े। पट्टी अभी भी उनके हाथ में थी और उनकी मृत्यु हो गई।

मैंने अनंत की ओर मुड़कर उसे यह बात बतानी ही शुरू की थी कि तभी एक बम का गोला उस पर भी गिर पड़ा। उसका सिर धड़ से अलग हो गया। उसके बाद चारों ओर अफरा-तफरी मच गई। एक के बाद एक पाकिस्तानी सैनिक 'अल्लाह हू अकबर' के नारे लगाते हुए हम पर टूट पड़े। करीब 35 पाकिस्तानी सैनिक हथियारों से लैस थे। हम सातों में से दो मारे गए, दो घायल हुए (जिनमें मैं और योगेंद्र भी शामिल थे, जिनकी उंगली कट गई थी)। इस तरह 35 भारी हथियारों से लैस दुश्मन सैनिकों के सामने सिर्फ तीन ही लोग बचे थे।
एक पल में वह स्थिति भी बदल जाएगी।

यादव के सभी साथी पाकिस्तानी सैनिकों की मशीन गन की गोलीबारी में मारे गए। उनकी संख्या इतनी कम थी कि उन्हें जवाबी कार्रवाई का मौका ही नहीं मिला। योगेंद्र सिंह यादव अकेले ऐसे थे जो बच गए, जबकि पाकिस्तानी सैनिकों ने गिरे हुए जवानों पर बार-बार गोलियां चलाकर यह सुनिश्चित करने की पूरी कोशिश की कि कोई भी जीवित न बचे। जब उनके बगल में खड़े व्यक्ति पर चार गोलियां चलाई गईं, तो योगेंद्र सिंह यादव ने अपने शरीर को कांपते और हवा में उछलते देखा। उन्होंने बस अपनी आंखें बंद कर लीं और अपनी बारी आने का इंतजार करने लगे। एक पाकिस्तानी सैनिक पास आया और आंखें बंद किए हुए लेटे हुए ही उन पर गोली चला दी। योगेंद्र सिंह ने गोलियों को अपने शरीर पर लगते हुए महसूस किया, लेकिन उन्होंने खुद से वादा किया कि वे मरेंगे नहीं। सभी भारतीय सैनिकों के मारे जाने की पुष्टि होने पर, पाकिस्तानी सेना ने मुश्कोह घाटी में स्थित अपने बेस कैंप को संदेश भेजा कि पहाड़ पर भारतीय सैनिक मौजूद हैं और नीचे एक भारतीय एलएमजी पोस्ट है जिसे नष्ट किया जाना चाहिए। योगेंद्र सिंह जानते थे कि उनकी टीम से अलग हुए 18 सैनिक पहाड़ पर फंसे हुए हैं। उनके मन में किसी भी तरह से जीवित रहने की प्रबल इच्छा जागी, ताकि वे उनकी जान बचा सकें, और उन्होंने खुद को बेहोश होने से बचाने का दृढ़ संकल्प किया।
खून से सनी आँखों से योगेंद्र सिंह यादव को धुंधली सी दो आकृतियाँ अपनी ओर आती दिखाई दीं। उनमें से एक ने अपनी बंदूक उठा ली, उसे इस बात का एहसास नहीं था कि उसकी कमर में एक हथगोला बंधा हुआ है। अपनी बची हुई सारी ताकत

लगाकर योगेंद्र सिंह यादव ने हथगोला निकाला, पिन निकाली और पीछे हट रहे पाकिस्तानी सैनिक पर फेंक दिया। वह उसकी जैकेट की हुड में फंस गया और हालाँकि उसने उसे हटाने की कोशिश की, लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। एक जोरदार धमाका हुआ और पाकिस्तानी सैनिक का सिर धड़ से अलग हो गया। वह यादव के ठीक ऊपर गिरकर मर गया। योगेंद्र सिंह यादव ने अपनी राइफल उठाई और हालाँकि वह खड़ा नहीं हो सकता था, उसने थोड़ी दूरी पर खड़े अन्य दुश्मन सैनिकों पर गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया।
गोलीबारी से तुरंत दहशत फैल गई। पाकिस्तानी, जो यह मान रहे थे कि सभी भारतीय मारे गए हैं, ने सोचा कि नीचे से अतिरिक्त सैनिक आ गए हैं और घबरा गए। जैसे ही वे भागने लगे, योगेंद्र सिंह यादव उनके पीछे रेंगते हुए गए और उनका शिविर देखा। “दोपहर 1:30 बज रहे थे, सूरज निकला हुआ था और मैं बर्फ के तंबू और चल रहे लंगर को साफ देख सकता था। मैं कुछ नहीं कर सकता था क्योंकि मैं खड़ा भी नहीं हो पा रहा था, लेकिन मेरे अंदर जीवित रहने और अपनी एमएमजी (मध्यम मशीन गन) चौकी पर जाकर अपनी बटालियन को चेतावनी देने की तीव्र इच्छा थी।”
जब योगेंद्र सिंह रेंगते हुए वापस उस जगह पहुंचे जहां उनके साथी मृत पड़े थे, तो उन्होंने उन्हें देखा। “किसी का सिर धड़ से अलग हो गया था, किसी की छाती चीर गई थी, किसी का पेट फटकर आंतें बाहर निकल रही थीं। ये मेरे दोस्त थे; ये मेरे सगे भाइयों से भी ज्यादा करीब थे। मेरे अलावा सबकी दर्दनाक मौत हुई थी। मैं बस वहीं बैठा रोता रहा। बस रोता ही रहा,” वे कहते हैं। जैसे-जैसे उसका शरीर ठंडा पड़ने लगा, उसे अपनी भयानक चोटों का तीव्र दर्द महसूस होने लगा। उसकी कंधे की हड्डियाँ बाहर निकल आई थीं और आपस में रगड़ खा रही थीं, जिससे हिलने-डुलने पर वह दर्द से कराह उठता था। उसे एहसास हुआ कि उसकी बांह बेकार हो चुकी है। कंधे के जोड़ से उसे निकालने की असफल कोशिश के बाद, उसने उसे अपनी पीठ पर टिका दिया और बेल्ट के अंदर रख लिया ताकि वह रास्ते में न आए।
योगेंद्र सिंह कहते हैं, “मेरे दिमाग में एक आवाज़ आई, ‘अगर तुम अभी तक नहीं मरे हो, तो अब भी नहीं मरोगे।’ फिर उसने कहा, ‘नाले में घुस जाओ।’ और फिर, अपनी टूटी हुई बांह को बेल्ट में दबाए और शरीर में पंद्रह गोलियां लिए, योगेंद्र सिंह संगर के पास एक नाले में रेंगते हुए गए और धीरे-धीरे उसमें कूद गए।”

5 जून
यादव अपने सही हाथ से एक चट्टान से लटके हुए थे जब उन्होंने नीचे 18 ग्रेनेडियर्स की बाकी टुकड़ी को देखा। उन्होंने उन्हें पुकार कर मदद मांगी। जवानों ने उन्हें तुरंत नीचे उतारा और बारी-बारी से अपनी पीठ पर लादकर टाइगर हिल के बीच में बने शिविर तक ले आए। जब कमजोर और कांपते हुए योगेंद्र सिंह यादव को कमांडिंग ऑफिसर के तंबू में लाया गया तब तक सूरज डूब चुका था। अत्यधिक रक्तस्राव के कारण वे इतने कमजोर हो गए थे कि उन्हें दिखाई भी नहीं दे रहा था। फिर भी, जब उनके कमांडिंग ऑफिसर ने उनसे पूछा कि क्या वे उन्हें पहचान सकते हैं, तो योगेंद्र सिंह यादव ने कहा, 'साहब, मैं आपकी आवाज पहचानता हूं। जय हिंद, साहब!'
कमांडिंग ऑफिसर के तंबू में लेटे हुए, लगातार कंपकंपी रोकने के लिए जलाई गई चूल्हों की गर्मी में, योगेंद्र सिंह यादव ने अपनी बटालियन को दुश्मन की सटीक स्थिति, उनकी चौकी तक पहुंचने का रास्ता और अनुसरण करने का मार्ग बताया। इसके बाद वे बेहोश हो गए।

तीन दिन बाद
योगेंद्र सिंह यादव को 9 जुलाई को होश आया। उन्हें टाइगर हिल से श्रीनगर के बेस अस्पताल में स्थानांतरित किए हुए तीन दिन हो चुके थे। जब वे जागे तो उन्होंने अपने ऊपर एक छत का पंखा देखा और एक पल के लिए वे समझ नहीं पाए कि वे कहाँ हैं। नर्स ने उन्हें बताया कि वे खतरे से बाहर हैं और अस्पताल में हैं। उन्होंने अपनी बटालियन के बारे में पूछा तो उन्हें बताया गया कि जिस रात वे लौटे थे, उसी रात घातक के साथ ब्रावो और डेल्टा कंपनियों के लगभग 100 सैनिकों ने टाइगर हिल पर हमला किया था। उन्होंने घातक की सलाह का पालन किया था और दुश्मन के किसी भी प्रतिरोध के बिना चौकी पर कब्जा कर लिया था।

टाइगर हिल से लगभग दो ट्रक भर गोला-बारूद बरामद किया गया। बरामद किए गए गोला-बारूद में एक.82 मोर्टार भी शामिल था।
योगेंद्र सिंह यादव को दिल्ली ले जाया गया, जहाँ उनकी बांह में अस्थि प्रत्यारोपण किया गया। सौभाग्य से, सभी गोलियां उनके महत्वपूर्ण अंगों को भेद नहीं पाईं और पूरी तरह से ठीक होने में कई साल लग गए, लेकिन अब उनके शरीर पर केवल गोलियों के निशान और पेट पर एक घाव है, जहाँ से अस्थि प्रत्यारोपण के लिए पसलियां ली गई थीं। सर्दियों में उनकी बांह में दर्द होता है और वे उसे एक निश्चित ऊंचाई से ऊपर नहीं उठा सकते, लेकिन योगेंद्र सिंह यादव ने इसे सहजता से स्वीकार कर लिया है। उन्हें देखकर यह विश्वास करना कठिन है कि उन्होंने पांच लोगों को निर्मम होकर गोली मारी, पाकिस्तानी सैनिकों की एक कंपनी के सामने डटकर मुकाबला किया और एक पथरीली चोटी पर लगभग मौत के मुंह से वापस लौटे।
हर गणतंत्र दिवस पर, वह दिल्ली आते हैं, अपनी नंबर एक वर्दी पहनते हैं, अपने पदक अपनी छाती पर लगाते हैं और अपने साथ मौजूद दो अन्य जीवित पीवीसी (पुलिस बलि अधिकारी) - कैप्टन बाना सिंह और हवलदार संजय कुमार - के साथ एक खुली जीप से राजपथ पर परेड का नेतृत्व करते हैं।
हजारों साथी नागरिकों को अपने लिए जयकार करते देखना कैसा लगता है? वे कहते हैं, 'मैं विनम्र और आभारी महसूस करता हूं। मैं एक सैनिक हूं, लड़ना मेरा कर्तव्य था, फिर भी मुझे सौंपे गए कार्य को पूरा करने के लिए मुझे अपने देश के सर्वोच्च वीरता पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। कोई भी सैनिक ऐसा ही करता।'

योगेंद्र सिंह यादव का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर के पास स्थित औरंगाबाद अहीर गांव में हुआ था। इस गांव की आबादी 5000 है; यहां के किसान गेहूं और गन्ना उगाते हैं। योगेंद्र के पिता, श्री राम करण सिंह, पूर्व सैनिक थे, जिन्होंने 11 कुमाऊं रेजिमेंट में सैनिक के रूप में सेवा की और 1971 के युद्ध में भी भाग लिया। आठ साल बाद, उन्होंने समय से पहले सेवानिवृत्ति ले ली और अपने गांव वापस आ गए। वे अक्सर योगेंद्र सिंह और

उनके दो भाइयों को युद्ध की कहानियां सुनाते थे, जिससे उन्हें सेना में शामिल होने की प्रेरणा मिली।
योगेंद्र सिंह ने अपनी शिक्षा गांव के प्राथमिक विद्यालय से शुरू की और पांचवीं कक्षा के बाद सन्नोता श्री कृष्ण महाविद्यालय में दाखिला लिया, जो उनके घर से लगभग 3 किलोमीटर दूर था। बारहवीं कक्षा के मध्य में, जब वे महज 16 वर्ष के थे, योगेंद्र सिंह सेना में भर्ती हो गए। 19 वर्ष की आयु में वे कारगिल युद्ध में लड़ने गए। यादव को मरणोपरांत परम वीर चक्र से सम्मानित करने की घोषणा की गई, लेकिन जल्द ही पता चला कि वे एक अस्पताल में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, और उनके हमनाम ही उस मिशन में शहीद हुए थे।

सूबेदार योगेंद्र सिंह यादव, पीवीसी द्वारा दिए गए विवरण पर आधारित।

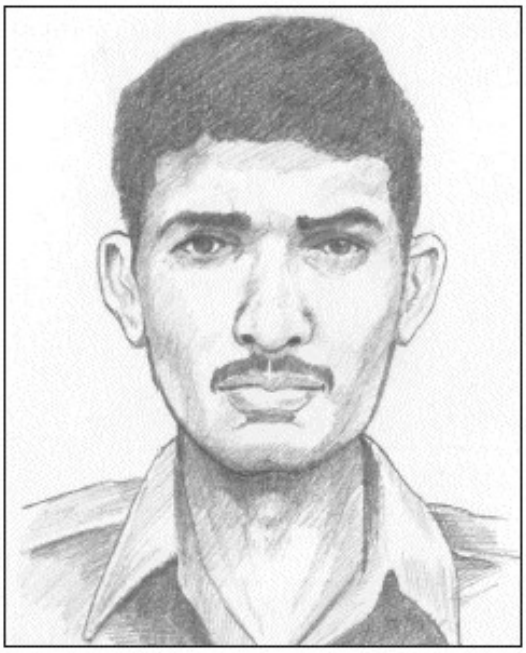

[redacted]

[redacted] [redacted] [redacted]-[redacted] [redacted]-[redacted] [redacted] [redacted] [redacted] [redacted], [redacted] 13 [redacted] [redacted] [redacted] (JAK Rif.) [redacted] [redacted], [redacted] [redacted] [redacted]

पर और फिर दाएँ हाथ पर। दोनों हाथों के लिए पट्टी कम पड़ जाती है और वह अपने साथी राइफलमैन नजिंदर सिंह की ओर देखता है, जो उसके बगल में चट्टान पर पीछे की ओर झुका हुआ है, चेहरा धूल से सना हुआ है, नींद की कमी से आँखें लाल हैं, रात भर चढ़ाई करने के लिए नुकीले पत्थरों को पकड़ने से हाथों में घाव हो गए हैं। नजिंदर अपने हाथ में पकड़े ग्रेनेड को बाएँ हाथ में लेता है और अपने बैग में हाथ डालता है। बिना कुछ कहे, वह अपनी पट्टी का रोल अपने साथी को दे देता है। संजय रोल का एक सिरा मुंह में पकड़े हुए, बाकी हिस्से को सावधानीपूर्वक अपने दाहिने हाथ पर लपेटता है। घड़ी की दिशा में घुमाते हुए, वह पहले अपनी उंगलियों को ढकता है। जब उसे यकीन हो जाता है कि गद्दी काफी मोटी हो गई है, तभी वह अपने अंगूठे को ढकने की ओर बढ़ता है।
प्वाइंट 4875, एरिया फ्लैट टॉप पर एक खुले संगर (एक छोटी, अस्थायी किलेबंदी वाली चौकी) में बैठे पाकिस्तानी सैनिक, ढलान पर मशीनगनों से फायरिंग करते हुए, यह सोच रहे हैं कि भारतीय सेना की टुकड़ी अभी भी 70 डिग्री की खड़ी ढलान पर चढ़ रही है। लेकिन वे गलत हैं। चार्ली कंपनी, 13 जेएके राइफल्स के एक जूनियर कमीशंड ऑफिसर और 10 अन्य सैनिक पहले ही उन तक पहुँच चुके हैं और अब उनके संगर से कुछ ही फीट नीचे चट्टानों के पीछे छिपे हुए हैं। राइफलमैन संजय कुमार और नजिंदर सिंह उस हमलावर दस्ते के पहले दो जवान हैं। वे ही स्काउट हैं।
संजय ने अपने हाथों पर पट्टी बांध ली है। अब वे मोटे सफेद ठूंठ जैसे दिख रहे हैं। उसने गहरी सांस ली और आखिरी बार नजिंदर की आंखों में देखा। वह पल आ गया है।

3-4 जुलाई की रात
चढ़ाई
उन जवानों ने दाल, चावल और सब्जी का गरमागरम भोजन किया था। कुछ समय पहले वे यूनिट पंडित द्वारा आयोजित हवन और पूजा में शामिल हुए थे और अब, जूते के फीते बांधे, हेलमेट सिर पर कसे, माथे पर लाल तिलक लगाए और दांतों में

प्रसाद के कुछ टुकड़े लिए, वे प्वाइंट 4875 के फ्लैट टॉप पर चढ़ाई के लिए तैयार थे।
मुश्कोह घाटी के आसपास की ऊबड़-खाबड़ चोटियों पर सूरज डूब रहा था। तापमान कुछ डिग्री और गिर चुका था और ठंडी हवा कानों में चीख रही थी, तभी कंपनी कमांडर मेजर गुरप्रीत सिंह के नेतृत्व में चार्ली कंपनी के 60 जवानों ने अपनी लंबी चढ़ाई शुरू की। लगभग उसी समय, 17 जाट रेजिमेंट के सैनिकों की एक और टीम ने भी चढ़ाई शुरू कर दी थी। उनका काम प्वाइंट 4875 पर स्थित पिंपल 1, पिंपल 2 और एरिया फ्लैट टॉप चोटियों पर फिर से कब्जा करना था। हालांकि दोनों दल एक-दूसरे को देख नहीं पा रहे थे, लेकिन वे रेडियो संचार में थे। योजना यह थी कि जवान रात भर चढ़ाई करते हुए सुबह 3 बजे तक चोटी पर पहुंच जाएंगे। वहां से वे अंधेरे की आड़ में तीनों चोटियों पर एक साथ हमला करेंगे, दुश्मन सैनिकों से क्षेत्र को खदेड़ेंगे और उसे भारतीय नियंत्रण में वापस लाएंगे।
मुश्कोह घाटी के निचले हिस्से में स्थित तोपों ने तीनों बिंदुओं पर लगभग निरंतर गोलाबारी शुरू कर दी थी। तोपों को दुश्मन से मुकाबला करने के लिए तैनात किया गया था ताकि ऊपर चढ़ने वाले सैनिकों को कम से कम नुकसान हो। हालांकि तोपों से भारी नुकसान हुआ, लेकिन उन्होंने पाकिस्तानियों को हमले की चेतावनी भी दे दी और ऊपर से आ रही मशीन गन की गोलियों की बौछार से चढ़ाई करने वाले सैनिक आश्चर्यचकित नहीं हुए।
राइफलमैन कुलदीप सिंह सबसे पहले घायल हुए। वे चीखते हुए खून से लथपथ होकर गिर पड़े। उन्हें निकालने के दौरान बाकी सैनिक चट्टानों की आड़ में छिप गए। चूंकि दुश्मन हर तरफ से गोलीबारी कर रहा था, इसलिए यह तय किया गया कि बिना किसी की नजरों में आए चढ़ाई करने का एकमात्र रास्ता प्वाइंट 4875 के ठीक नीचे स्थित खड़ी चट्टान से होकर जाता है, जो ऊपर से दिखाई नहीं देता था। लेकिन एक अड़चन थी—वहां कोई रास्ता नहीं था, बस चांदनी में चमकती नुकीली चट्टानों की एक खड़ी सीधी रेखा थी।
जल्दी से उठकर और अपने पैरों के पंजों पर खड़े होकर, सैनिक एक-एक करके ढलान पर चढ़ने लगे, अपने हाथों का इस्तेमाल करते हुए नुकीली चट्टानों पर पकड़ बनाने की कोशिश कर रहे थे जिन पर उन्हें अपना भार संभालना था। कुशल पर्वतारोही कुल्हाड़ी और रस्सियों के साथ पहले आगे बढ़े और अंधेरे में

पीछे आ रहे लोगों के लिए एक रस्सी छोड़ दी। एक भी गलत कदम उन्हें गहरी घाटी में मौत के मुंह में धकेल सकता था।
अच्छा ही हुआ कि उन्हें नीचे की गहरी खाई दिखाई नहीं दी, वरना वे हिम्मत हार सकते थे। खतरे से बेखबर, वे ऊपर चढ़ने लगे, अपने शरीर का भार उन जानलेवा ऊँचाइयों पर खींचते हुए हाँफ रहे थे, बीच-बीच में साँस लेने के लिए रुकते और अपने सिर के ऊपर से सीटी बजाते और चट्टानों से टकराते बोफोर्स के गोलों को देखकर अपने दिमाग को आगे आने वाले भयानक काम से विचलित करते।

अगली सुबह
उगते सूरज की हल्की गर्म किरणों से अंधेरा धीरे-धीरे छंट रहा था। जवान रात भर चढ़ाई करते रहे थे, लेकिन अब भी एरिया फ्लैट टॉप से 250 मीटर दूर थे और पिंपल 1 और पिंपल 2 पर तैनात पाकिस्तानी सैनिकों को दिखाई दे रहे थे, जिन्होंने उन पर गोलीबारी शुरू कर दी थी। 17 जाट रेजिमेंट के सैनिकों को भी यही समस्या थी। पिंपल 1 और 2 (जिन ऊंचाइयों पर वे चढ़ रहे थे) से वे दिखाई नहीं दे रहे थे, लेकिन प्वाइंट 4875 पर मौजूद दुश्मन उन्हें देख सकता था और उन पर गोलीबारी शुरू कर दी थी।
13 वीं जेएके राइफल्स ने साउथ स्पर नामक एक छोटी पहाड़ी के पीछे शरण ली, जहाँ वे गोलीबारी से सुरक्षित थे। लेकिन वे अभी भी दुश्मन की पहली चौकी से 150 मीटर दूर थे और लगातार मशीनगन की गोलीबारी की चपेट में थे। दुश्मन की तोपें लगभग एक मिनट के लिए ही रुकती थीं—हर बार जब कोई रॉकेट लॉन्चर उनके आश्रय स्थल पर गिरता था और सैनिक अपने चारों ओर बिखर रही जानलेवा चट्टानों से बचने के लिए नीचे छिप जाते थे। यह तय किया गया कि भारतीय दल उस एक मिनट के विराम का लाभ उठाएगा; एक जेसीओ और 10 अन्य सैनिकों का एक अग्रिम दस्ता दुश्मन की चौकी तक पहुँचने के लिए 150 मीटर की दूरी तय करेगा। राइफलमैन संजय कुमार और राइफलमैन नजिंदर ने नेतृत्व करने के लिए स्वेच्छा से आगे आए।
अगली बार जब एक गोला प्वाइंट 4875 पर गिरा और दुश्मन की मशीनगनों ने एक मिनट के लिए फायरिंग बंद कर दी, तो दोनों सैनिक हाथों में बंदूकें लिए

ऊबड़-खाबड़ चट्टानी ढलान पर दौड़ पड़े। जब दुश्मन सैनिक अपने बंकर से बाहर निकले, तो उन्हें जरा भी अंदाजा नहीं था कि भारतीय सैनिक पहले से ही कुछ ही फीट की दूरी पर बैठे हुए थे और हमले के लिए सही मौके का इंतजार कर रहे थे। दुश्मन के बंकर के ठीक नीचे दुबके संजय कुमार और नजिंदर सिंह अपने दिल की धड़कन महसूस कर सकते थे। उनके सिर के ऊपर, दुश्मन की दो मशीनगनें लगभग लगातार फायरिंग कर रही थीं। संजय ने सोचा कि अगर वह चाहे तो अपना हाथ बढ़ाकर उनमें से किसी एक को छू सकता है। और यहीं से उनके मन में यह शानदार विचार आया।

संजय ने नजिंदर से नज़रें मिलाईं और सिर हिलाया। नजिंदर ने अपने हाथ में पकड़ी ग्रेनेड की पिन निकाली और धीरे-धीरे अर्धवृत्ताकार बनाते हुए उसे दुश्मन के बंकर के अंदर फेंक दिया। एक भयानक फुफकार, धमाका, बारूद की जानी- पहचानी गंध और फिर दर्द भरी चीखें सुनाई दीं, क्योंकि धुंध भरे धुंधले दोपहर में बंकर फट गया।
संजय अपना सिर नीचे झुकाए रखता है जब तक कि उसके चारों ओर की नुकीली चट्टानें टूटना बंद नहीं हो जातीं। उसका चेहरा भावहीन था, वह अपने सबसे नज़दीकी दुश्मन की मशीनगन की ओर हाथ बढ़ाता है और अपने पट्टियों से बंधे हाथों से जलती हुई धातु से खुद को बचाते हुए, उसे नीचे खींचकर चट्टानों पर फेंक देता है। फिर वह दूसरी बंदूक की ओर मुड़ता है। नजिंदर सिंह देखता है कि संजय के हाथों पर बंधी पट्टियों से धुआँ निकलने लगा है और वे उसकी उंगलियों पर मुड़े हुए काले साँपों की तरह लिपट रही हैं, लेकिन संजय को इसकी कोई परवाह नहीं है। वह अपनी एके-47 राइफल निकालता है, उसे अपने कंधे से उतारता है और उस जगह की ओर घुमाता है जहाँ से उसने बंदूकें निकाली थीं। धुएँ से भरे उस बंकर में तीन पाकिस्तानी सैनिक खड़े हैं, डर और सदमे से स्तब्ध। उनके चारों ओर बंदूकें, ग्रेनेड और गोला-बारूद का बड़ा भंडार पड़ा है। उसकी नज़र कोने में पड़ी है, जहाँ दूसरे छोर पर आधा दर्जन लाशें ढेर हैं। उनमें से एक आदमी बंदूक उठाने की कोशिश कर रहा है। संजय ट्रिगर दबा देता है। गोलियों की बौछार गूंजती है, जिससे चट्टानें गर्म खून की बौछार

से सन जाती हैं, और प्वाइंट 4875 के पहले संगर की कमान संभालने वाले तीनों आदमी एक के बाद एक नीचे गिर जाते हैं।
कालिख से सनी उंगलियों वाला सिपाही गोलीबारी जारी रखता है और जब उसे यकीन हो जाता है कि सभी सैनिक मर चुके हैं, तभी वह अपने गंदे हाथों को देखता है और उन्हें अपनी मैली, फटी हुई पतलून पर पोंछता है। चौदह साल बाद, वह बड़ी विनम्रता से एक लेखक को बताएगा कि इसमें कोई विशेष वीरता शामिल नहीं थी। वह बस वही कर रहा था जो उसकी जगह कोई भी सिपाही उस परिस्थिति में करता। वह अपनी वर्दी पर पीवीसी रिबन गर्व से पहनेगा, लेकिन इससे मिलने वाले ध्यान से शर्मिंदा होगा, और जोर देकर कहेगा कि उसकी आक्रमण टीम का हर सिपाही उतना ही बहादुर था जितना वह खुद था। फिर भी वह एक ऐसा पदक पहनेगा जिसे आज तक बहुत कम लोगों ने जीवित रहते हुए पहना है। एक ऐसा पदक जिसे सेना प्रमुख भी सलाम करते हैं। भले ही वह 23 साल के एक पैदल सिपाही की कमीज पर ही क्यों न टंगा हो।

भारतीय सैनिकों द्वारा पहले संगर पर कब्ज़ा करने के बाद, वे दूसरे संगर की ओर बढ़ते हैं। उन्हें इस बात का अंदाज़ा नहीं होता कि हमले की आशंका में दुश्मन सैनिक अपने बंकरों से बाहर निकलकर पहाड़ पर और ऊपर मोर्चा संभाले हुए हैं, जहाँ से वे भारतीयों को बेहद करीब से निशाना बनाएंगे। सभी भारतीयों पर गोलियां चलाई जाती हैं। उनमें से दो फिर कभी जीवित नहीं हो पाते। नायब सूबेदार रमेश सिंह बच जाते हैं, लेकिन उनकी किस्मत में लंबा समय नहीं लिखा होता। वे फिर से जीवित लौटते हैं, लेकिन कश्मीर में जल्द ही उनकी मृत्यु हो जाती है। संजय कुमार ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो पैर में तीन और कूल्हे में दो गोलियां लगने के बावजूद जीवन को गले लगाते हैं। वे और उनके बचे हुए साथी चट्टानों पर लेट जाते हैं और मरने का नाटक करते हैं।
दुश्मन सैनिक उन पर 15 मिनट तक लगातार गोलीबारी करते हैं और फिर, उन्हें मरा हुआ समझकर, ढलान से नीचे स्थित तीसरे बंकर की ओर उतरने लगते हैं। तभी संजय कुमार और उनके साथियों ने असाधारण साहस दिखाया। अपनी चोटों के

बावजूद, वे अगले बंकर पर धावा बोल देते हैं। उन्हें वहाँ लाशों और बिना इस्तेमाल किए गए गोला-बारूद के अलावा कोई नहीं मिलता। वे दुश्मन की मशीनगन को भागते हुए सैनिकों की ओर मोड़ देते हैं और तीसरे बंकर की सुरक्षा तक पहुँचने से पहले ही उन्हें बेरहमी से गोली मार देते हैं।
कब्ज़े वाले इलाके का अंतिम जायज़ा लेने पर उन्हें पाकिस्तानी सैनिकों के 15 शव, भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद, बर्फ की झोपड़ियाँ और तंबू मिले। वे ज़ख्मों से लथपथ होकर बैठ गए, प्राथमिक चिकित्सा किट का इस्तेमाल करते हुए मदद का इंतज़ार करने लगे। शाम 5:30 बजे तक यूनिट का डॉक्टर बंकरों तक पहुँच गया। उसने सैनिकों को दर्द निवारक दवाएँ और प्राथमिक उपचार दिया। बाकी टीम ने घायलों को नीचे बेस तक उतरने में मदद की क्योंकि ऊँचाई इतनी खतरनाक थी कि स्ट्रेचर का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। संजय कुमार को लंगड़ाते हुए नीचे उतरने में पूरी रात लग जाती है। सुबह 9:30 बजे वह मुश्कोह घाटी पहुँचता है, जहाँ से एक एम्बुलेंस उसे घुमरी स्थित फील्ड अस्पताल ले जाती है। उसके शरीर में अभी भी पाँच गोलियाँ फंसी हुई हैं; चमत्कारिक रूप से, उनमें से कोई भी उसकी हड्डियों या महत्वपूर्ण अंगों को नहीं छू पाई है। डॉक्टरों को इससे भी अधिक आश्चर्य इस बात का है कि असहनीय दर्द और रक्तस्राव के बावजूद वह होश में है और चल रहा है। गोलियाँ निकालने और घावों पर टाँके लगाने के बाद, एक हेलीकॉप्टर उसे श्रीनगर के सैन्य अस्पताल ले जाता है। ड्यूटी पर मौजूद नर्स इस बात से हैरान है कि इतना थका होने के बावजूद वह अपनी आँखें बंद नहीं कर रहा है। वह उसे यह नहीं बताता कि उसने अपने दोस्तों को अपनी आँखों के सामने गोली मारकर मरते देखा है। उसने उन लोगों को मारा है जिन्हें वह जानता भी नहीं था। उसने जलती हुई तोपों को अपने हाथों से बुझाया है। वह शरीर में फंसी गोलियों के साथ चला है। उसने उस हद तक दर्द सहा है जो उसे जीवन भर सताएगा। उसके शरीर पर ऐसे निशान हैं जो उसे एक ठंडी, पथरीली पहाड़ी पर लड़े गए युद्ध की याद दिलाएंगे, जहां साधारण मनुष्यों ने आत्मरक्षा की स्वाभाविक प्रवृत्ति से परे जाकर अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। एक महीने से भी अधिक समय तक बर्फीले पहाड़ पर मौत से जूझने के बाद, अब उसकी जान को कोई खतरा नहीं है, उसे किसी दुश्मन को हराना नहीं है, और उसका मन भयमुक्त है। इस बात को स्वीकार करने में उसे कुछ समय लगता है। उसका मन उसे हिमाचल प्रदेश के बाखरा नदी के पानी से घिरे छोटे से गाँव बाकाइन में रहने

वाले अपने बूढ़े माता-पिता के पास ले जाता है, जहाँ वह बचपन में हरे-भरे खेतों में खेला करता था। तेज़ नींद की दवा और दर्द निवारक के असर से, वह अंततः युद्ध की भयावहता को भुलाकर गहरी नींद में डूब जाता है।

संजय कुमार का जन्म 3 मार्च 1976 को हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर के पास बाकैंगांव में हुआ था, जो 650 की आबादी वाला एक छोटा सा गांव है, जहां सेना में भर्ती होना एक लोकप्रिय करियर विकल्प है। वह अपने परिवार में सबसे छोटे थे, उनसे पहले उनकी तीन बहनें और दो भाई थे। उनके पिता एक किसान थे जो अपने परिवार का पेट भरने, कपड़े पहनने और बच्चों को स्कूल भेजने के लिए मुश्किल से ही कमा पाते थे।
संजय अपने गांव से लगभग एक किलोमीटर दूर स्थित कलोल हाई स्कूल में पहली कक्षा से ही पढ़ने लगे और दसवीं कक्षा तक वहीं पढ़ते रहे। उनके बड़े भाई आईटीबीपी में और पिता के भाई सेना में थे, इसलिए संजय भी सशस्त्र बलों में शामिल होना चाहते थे। 1994 में, दसवीं कक्षा पूरी करने के बाद, वे टैक्सी चलाना सीखने के लिए दिल्ली चले गए। कुछ समय तक उन्होंने टैक्सी चलाकर पैसे कमाए, लेकिन साथ ही सेना में भर्ती की जानकारी भी लेते रहे। जनवरी 1996 में, जबलपुर में आयोजित एक भर्ती रैली में उनका चयन हो गया और वे एक सैनिक के रूप में सेना में भर्ती होकर 13 जेएके राइफल्स में तैनात हो गए। संजय कुमार की रेजिमेंट ने कश्मीर के सोपोर में आतंकवाद विरोधी अभियान (सीआई ऑप्स) पूरा कर लिया था और शाहजहांपुर जा रही थी, तभी कारगिल युद्ध छिड़ गया। उन्हें द्रास और मुश्कोह घाटी में लड़ने के लिए भेजा गया था। “कभी-कभी, दुश्मन के गढ़ पर हमले वाली दोपहर की यादें मेरी आंखों के सामने कौंध जाती हैं और मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन ज़्यादातर दिन मैं इसके बारे में नहीं सोचता। मुझमें कुछ भी खास नहीं था। मैं गांव में पले- बढ़े दूसरे लड़कों जैसा ही था। सेना में भर्ती होने से पहले मैं कभी बहादुर नहीं था। यह मेरी ट्रेनिंग ही थी जिसने मुझे वो करने का साहस दिया जो मैंने किया। मेरी जगह कोई भी दूसरा सैनिक होता तो वो भी यही करता,” संजय

ने विनम्रतापूर्वक अपने साक्षात्कारों की श्रृंखला का आखिरी साक्षात्कार समाप्त करते हुए कहा।
मैंने पहले ही उसे दोपहर के भोजन के लिए देर करवा दी है और उसे जल्दी करनी होगी क्योंकि वह दोपहर की ड्यूटी पर देर से नहीं पहुँच सकता। ‘अब मुझे जाना होगा, जवान मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे,’ वह माफी मांगते हुए कहता है। वह मेरे ‘धन्यवाद’ सुनने का भी इंतजार नहीं करता।
हवलदार संजय कुमार, पीवीसी के साथ हुई बातचीत पर आधारित।

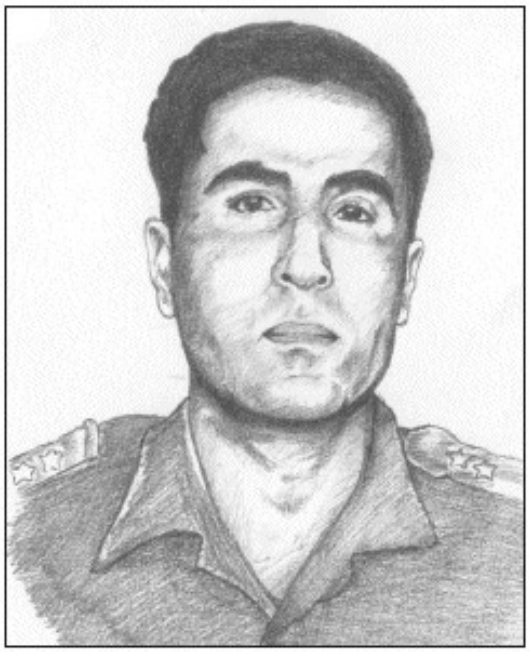

विक्रम बत्रा

दिल्ली से डेढ़ घंटे की हवाई यात्रा और फिर कांगड़ा हवाई अड्डे से हिमाचल प्रदेश के पालमपुर स्थित बंदला गांव तक सड़क मार्ग से इतना ही समय लगता है। घुमावदार सड़क के मोड़ों पर बर्फ से ढकी धौलाधार पर्वतमालाएं दिखाई देती हैं और अपनी भव्यता से आपको मंत्रमुग्ध कर देती हैं। हवाई अड्डे पर खिले सुगंधित सफेद गुलाब पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं और विक्रम बत्रा भवन तक आपका साथ देते हैं, जहां दिवंगत कैप्टन विक्रम बत्रा के माता- पिता एक चमकीले पीले रंग की दीवारों वाले बंगले में रहते हैं। वहां, वे उस कमरे के बाहर रुकते हैं जहां दीवार पर कैप्टन बत्रा का एक तेलचित्र टंगा है। उनके पिता पश्मीना शॉल ओढ़े उसके सामने बैठे हैं और अपनी पत्नी से गर्म चाय लाने, दोपहर के भोजन के लिए मेज लगाने या स्थानीय अखबार पढ़ते हुए अपने शयनकक्ष में उनकी बातों की पुष्टि करने का अनुरोध कर रहे हैं।
एक तरफ हरे-भरे चाय बागानों और दूसरी तरफ सुस्त बाजारों से होकर गुजरने वाले संकरे, घुमावदार रास्ते पर परम वीर चक्र (पीवीसी) से सम्मानित व्यक्ति के घर का रास्ता पूछना मुश्किल नहीं है। आपको बस उनका नाम लेना है और पतली मूंछों वाले नौजवान, लड़खड़ाती चाल वाले बुजुर्ग, हाथों में कैंची लिए चश्मा पहने दर्जी और लाल रिबन वाली चोटी वाली स्कूली लड़कियां खुशी- खुशी शब्दों और इशारों से आपका रास्ता बता देंगी। आपको वास्तव में उस पते की ज़रूरत नहीं है जो श्री गिरधारी लाल बत्रा की भारी आवाज़ आपको बता देती है।
विक्रम के पिता ने एक दिन पहले ही आपको विस्तार से सब कुछ समझाया था।
कुछ ही साल पहले की बात है, बालों में एक पफ लगाए और आँखों में चमक लिए एक छोटा लड़का इन्हीं गलियों में घूमा करता था, अक्सर अपने जुड़वा भाई के साथ। लव और कुश। उनकी माँ उन्हें इसी नाम से पुकारती थीं। उनके घर में टीवी नहीं था, इसलिए वे चुपके से अपने रबर की चप्पलों में पैर डालकर पड़ोस में स्थित निशा दीदी के घर चले जाते थे, जहाँ वे रविवार सुबह 10 बजे प्रसारित होने वाला टीवी सीरियल परम वीर चक्र देखते थे। दोनों जुड़वा भाई चमकती आँखों और खुले मुँह से उन वीर पुरुषों की बहादुरी को देखकर आश्चर्यचकित होते थे, जिन्हें स्वतंत्र भारत का सर्वोच्च वीरता पदक दिया गया था। बाद

में, वर्दीधारी नायकों की बहादुरी और पीवीसी (परम वीर चक्र) की भव्यता के बारे में बातें करते हुए वे वापस घर लौट आते थे।
जुड़वा भाइयों में से एक दिन सचमुच पदक अपने हाथ में लेगा। दूसरा नहीं, लेकिन उसे पदक घर ले जाने की ज़िम्मेदारी उसी की होगी— यह लड़का जुड़वा भाइयों में ज़्यादा जोशीला था। उसका नाम लव था। वही लव, जिसके घर की तलाश में लगभग तीन दशक बाद एक लेखक आएगा। तब तक वह कैप्टन विक्रम बत्रा बन चुका होगा, 24 वर्षीय सैनिक जिसने कश्मीर के पथरीले पहाड़ों पर अपने देश के लिए लड़ाई लड़ी और एक अन्य सैनिक को बचाने की कोशिश में शहीद हो गया।
दो बेटियों के जन्म के बाद जब कमल कांता को जुड़वां बच्चों का आशीर्वाद मिला, तो वह कभी-कभी सोचती थीं कि उन्हें दो बेटे क्यों मिले जबकि उन्होंने सिर्फ एक ही बेटे की कामना की थी। बाद में उन्होंने कहा, 'अब मुझे पता चल गया है। उनमें से एक देश के लिए था और एक हमारे लिए।' विक्रम की सिर्फ तस्वीरें, पदक और यादें ही उनके पास बची हैं, जिन्हें वह खुशी-खुशी साझा करती हैं।
उन्हें वह दिन याद है जब उनके स्कूल में पढ़ाने वाली एक सहकर्मी ने उन्हें बताया था कि उन्होंने विक्रम को अस्पताल में देखा है। घबराकर वह तुरंत वहाँ पहुँचीं और देखा कि विक्रम के शरीर पर कुछ मामूली चोटें और खरोंचें थीं, लेकिन वह मुस्कुरा रहा था। चलती स्कूल बस के एक तीखे मोड़ पर अचानक दरवाजा खुल गया था और एक छोटी बच्ची अपना संतुलन खोकर गिर गई थी, जिसके चलते विक्रम बस से कूद गया था। जब उसकी परेशान माँ ने उससे पूछा कि उसने इतनी लापरवाही क्यों की, तो उसने बताया कि उसे डर था कि कहीं वह बच्ची किसी दूसरी बस के नीचे न आ जाए।
विक्रम बचपन से ही साहसी और निडर था और हमेशा जरूरतमंदों की मदद के लिए तत्पर रहता था। एक बार, उसने स्कूल के एक नए शिक्षक के लिए गैस सिलेंडर का इंतजाम करने के लिए दर-दर भटकाया। शिक्षक हाल ही में पालमपुर आए थे और जब तमाम कोशिशों के बावजूद उन्हें सिलेंडर नहीं मिला, तो उन्होंने विक्रम से मदद मांगी। विक्रम ने उन्हें शाम तक सिलेंडर दिलाने का वादा किया और अपना वादा निभाते हुए बाजार से ऑटो रिक्शा में सिलेंडर शिक्षक के घर तक पहुंचाया।
विक्रम का मिलनसार स्वभाव था—उनके मित्रों का दायरा बहुत बड़ा था—वे हर किसी की मदद करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे और उनका स्वभाव हंसमुख था।

पढ़ाई में भी वे बहुत होशियार थे और राष्ट्रीय स्तर के टेबल टेनिस खिलाड़ी थे। उन्हें उत्तरी क्षेत्र के लिए सर्वश्रेष्ठ एनसीसी एयर विंग कैडेट चुना गया था। उन्हें मर्चेंट नेवी से बुलावा पत्र भी मिला था और उन्होंने अपनी वर्दी भी सिलवा ली थी, लेकिन आखिरी समय में उन्होंने भर्ती न होने का फैसला किया और अपने परेशान पिता को बताया कि उनका सपना सेना अधिकारी बनने का है।
उन्होंने चंडीगढ़ में दाखिला लिया, संयुक्त रक्षा सेवा परीक्षा की तैयारी की और अपने माता-पिता से किए वादे के मुताबिक उत्तीर्ण हुए। बत्रा परिवार उनकी पासिंग-आउट परेड देखने गया। अपने सुंदर बेटे को वर्दी में देखकर वे रोमांचित हो गए और सोचने लगे कि वह कितनी ऊंचाइयों तक पहुंचेगा। तब उन्हें यह नहीं पता था कि कुछ वर्षों बाद, तत्कालीन सेना प्रमुख जनरल वेद प्रकाश मलिक उनके घर आकर उन्हें बताएंगे कि अगर विक्रम कारगिल में शहीद न हुए होते, तो एक दिन वह उनके कार्यालय में बैठे होते। यह सुनकर श्री बत्रा का सीना गर्व से भर गया, हालांकि उनकी आंखों से आंसू बहने ही वाले थे।

Yeh dil mange more!
13 जम्मू और कश्मीर राइफल्स (JAK Rif.) ने कश्मीर में अपना कार्यकाल पूरा कर लिया था और अग्रिम टुकड़ी शाहजहाँपुर पहुँच चुकी थी, जहाँ से युद्ध छिड़ने के कारण उसे वापस बुला लिया गया। ज़ोजी ला दर्रा पार करने और घुमरी में मौसम के अनुकूल होने के लिए रुकने के बाद, उसे 56 ब्रिगेड के अधीन कर दिया गया और तोलोलिंग पर कब्ज़ा करने के लिए 56 ब्रिगेड के रिज़र्व के रूप में द्रास पहुँचने का आदेश दिया गया। 18 ग्रेनेडियर्स ने संघर्ष के शुरुआती दिनों में तोलोलिंग पर कब्ज़ा करने का प्रयास किया था, लेकिन उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ा था। अंततः, 2 राजपुताना राइफल्स ने तोलोलिंग को वापस हासिल कर लिया।
कब्जे के बाद, 13 जेएके राइफल्स के जवान द्रास से टोलिंग तक 12 घंटे पैदल चले, जहाँ अल्फा कंपनी ने 18 ग्रेनेडियर्स से टोलिंग और हंप कॉम्प्लेक्स के एक हिस्से का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। हंप कॉम्प्लेक्स में ही

कमांडिंग ऑफिसर (सीओ) लेफ्टिनेंट कर्नल योगेश जोशी विशाल चट्टानों की आड़ में बैठे और उन दो युवा अधिकारियों को ब्रीफिंग दी जिन्हें उन्होंने द्रास उप-क्षेत्र की सबसे दुर्जेय पहाड़ी प्वाइंट 5140 पर कब्जा करने का जिम्मा सौंपा था। वे ठीक सामने चोटी देख सकते थे, जिसके शीर्ष पर दुश्मन के बंकर थे, लेकिन इतनी दूरी से वे दुश्मन की ताकत का अंदाजा नहीं लगा सकते थे। डेल्टा कंपनी के लेफ्टिनेंट विक्रम बत्रा और ब्रावो कंपनी के लेफ्टिनेंट संजीव जमवाल के लिए यह मायने नहीं रखता था। वे जाने के लिए बेताब थे।
कर्नल जोशी ने तय किया था कि ये दो हमलावर कंपनियां होंगी जो अंधेरे की आड़ में अलग-अलग दिशाओं से चढ़ाई करेंगी और दुश्मन को खदेड़ देंगी। दोनों युवा अधिकारी चुपचाप उनकी बातें सुन रहे थे। दोनों को जानकारी देने के बाद, उन्होंने उनसे पूछा कि जब उनकी कंपनियां अपना काम पूरा कर लेंगी तो उनकी सफलता के संकेत क्या होंगे। जमवाल ने तुरंत जवाब दिया कि उनका सफलता का संकेत होगा: 'ओह! ये, ये, ये!' उन्होंने बताया कि जब वे राष्ट्रीय रक्षा अकादमी में थे, तब वे हंटर स्क्वाड्रन में थे, और यही उनका नारा हुआ करता था। लेफ्टिनेंट कर्नल जोशी ने फिर विक्रम की ओर मुड़कर उनसे पूछा कि उनका संकेत क्या होगा। विक्रम ने कुछ देर सोचा और फिर कहा: 'ये दिल मांगे मोर!' (यह दिल और चाहता है!)
सामने मौजूद कार्य की गंभीरता के बावजूद, उनके कमांडिंग ऑफिसर मुस्कुराए बिना नहीं रह सके और उन्होंने विक्रम से पूछा कि ऐसा क्यों? आत्मविश्वास और उत्साह से भरे विक्रम ने जवाब दिया कि वह इस एक सफलता के बाद रुकना नहीं चाहते और आगे भी और बंकरों पर कब्जा करने की तलाश में रहेंगे।

बिंदु 5140 पर कब्जा
घोर अंधेरी रात थी। लेफ्टिनेंट कर्नल योगेश जोशी उस टीले के तल पर बैठे थे जहाँ से प्वाइंट 5140 पर प्रारंभिक बमबारी शुरू हुई थी। वे अपने सैनिकों की गतिविधियों का पता लगाने की कोशिश कर रहे थे, जिनके बारे में उन्हें पता था कि वे अंधेरे की आड़ में ऊपर चढ़ रहे होंगे। भारतीय तोपखाने ने पूरे

फहराया था। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि इस हमले में भारतीय पक्ष को एक भी हताहत नहीं हुआ।
नीचे उतरने के बाद, बत्रा सैटेलाइट फोन से अपने माता-पिता को फोन करते। एक पल के लिए उनके पिता की सांसें थम जातीं क्योंकि वे सिर्फ 'कैद' शब्द सुनते और उन्हें लगता कि उन्हें पकड़ लिया गया है। लेकिन फिर हंसते हुए सैनिक ने स्पष्ट किया कि उन्होंने वास्तव में दुश्मन की एक चौकी पर कब्जा कर लिया है। इसके बाद वे चंडीगढ़ में अपनी प्रेमिका डिंपल को फोन करते और कहते कि चिंता न करें। वे ठीक हैं और उन्हें अपना ख्याल रखना चाहिए। यह आखिरी बार था जब उन्होंने डिंपल से बात की थी।
विक्रम की अगली तैनाती थाना 4875 में थी, जहाँ से वह जीवित तो नहीं लौटेगा, लेकिन डिंपल के लिए ऐसी यादें छोड़ जाएगा जिन्हें वह जीवन भर संजोकर रखना चाहेगी। बटालियन को आराम और पुनर्जीवन के लिए द्रास से घुमरी भेजा गया। एक सप्ताह से भी कम समय में, वे मुश्कोह चले गए। यहीं विक्रम के लिए और भी बड़ी सफलता इंतज़ार कर रही थी।

चंडीगढ़, 2013
डिंपल एक खूबसूरत, हंसमुख 40 वर्षीय महिला हैं, जो चंडीगढ़ के पंजाब राज्य शिक्षा बोर्ड के एक स्कूल में काम करती हैं। वह कक्षा 6 से 10 तक के छात्रों को सामाजिक अध्ययन और अंग्रेजी पढ़ाती हैं। दोपहर 3:30 बजे तक वह बच्चों के साथ व्यस्त रहती हैं, कक्षाएं लेती हैं, परीक्षा के प्रश्नपत्र जांचती हैं और अगले दिन के पाठों की योजना बनाती हैं। उनके पास फोन पर बात करने का भी समय नहीं होता। लेकिन घर लौटकर चाय की चुस्की लेते हुए वह स्वीकार करती हैं कि पिछले 14 वर्षों में एक भी दिन ऐसा नहीं गुजरा जब उन्होंने विक्रम के बारे में न सोचा हो।
वह कहती हैं कि चंडीगढ़ उनकी यादों से भरा हुआ है। 'जब मैं बस स्टॉप से गुज़रती हूँ तो मुझे याद आता है कि मैं उन्हें वहाँ कैसे छोड़ती थी ताकि वे जहाँ भी जाना चाहते थे, बस पकड़ सकें; जब मैं विश्वविद्यालय में होती हूँ तो मुझे याद आता है कि मैंने उन्हें पहली बार कैसे देखा था जब वे आकर मेरे

और एक लड़के के बीच बैठ गए थे जो असहज रूप से मेरे बहुत करीब आने की कोशिश कर रहा था और उन्होंने मुझे वहाँ से हटने का इशारा किया था। जब मैं नादा साहिब गुरुद्वारे में होती हूँ तो मुझे याद आता है कि कैसे वे परिक्रमा में मेरे पीछे-पीछे आए और फिर पुकार कर बोले: "बधाई हो, श्रीमती बत्रा, हमने चौथा फेरा पूरा कर लिया है और आपके सिख धर्म के अनुसार, अब हम पति-पत्नी हैं।" जब मैं पिंजोर गार्डन के पास होती हूँ तो मुझे याद आता है कि कश्मीर जाने से पहले उन्होंने अपने बटुए से एक ब्लेड निकाला, अपने अंगूठे पर कट लगाया और मेरे बालों की मांग में खून की एक लकीर लगा दी ताकि मेरे मन में यह शंका दूर हो जाए कि वे मुझसे शादी करेंगे या नहीं...'
डिंपल और विक्रम कॉलेज के दिनों से एक-दूसरे को पसंद करते थे। पंजाब विश्वविद्यालय में कुछ ही महीनों तक साथ पढ़ने के बाद विक्रम भारतीय सैन्य अकादमी में शामिल होने के लिए चले गए। वे एक-दूसरे के संपर्क में रहे और शादी करने का फैसला किया। अगर विक्रम कारगिल युद्ध से लौट आते तो यही योजना थी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसके बजाय, डिंपल को एक दोस्त का फोन आया जिसमें बताया गया कि विक्रम बुरी तरह घायल हो गए हैं और उन्हें उनके माता- पिता को फोन करना चाहिए। जब वह पालमपुर पहुंचीं, तो उन्होंने देखा कि मीडिया और स्थानीय लोगों की भीड़ से घिरे एक ताबूत में विक्रम का शव रखा हुआ है। उनके अंतिम संस्कार के लिए 25,000 से अधिक लोग इकट्ठा हुए थे, न केवल पालमपुर से, बल्कि बैजनाथ, पापरोला और नग्रोटा जैसे आस-पास के कस्बों से भी।
‘मैं पास नहीं गई क्योंकि वहां बहुत सारे मीडियाकर्मी थे और मैं रोना-धोना शुरू नहीं करना चाहती थी।’ वह अपने भाई का हाथ थामे चुपचाप दूर खड़ी देखती रही। विक्रम के माता-पिता ने भीड़ में सलवार-कमीज पहने उस लड़की को देखा, लेकिन वे इतने परेशान थे कि यह जानने की जहमत नहीं उठाई कि वह कौन है। डिंपल चंडीगढ़ लौट आईं और उन्होंने फैसला किया कि किसी और से शादी करने की बजाय वह उनकी यादों के साथ जीना पसंद करेंगी। ‘वह एक अद्भुत, हंसमुख इंसान थे। वह बेहद आकर्षक थे। उन्हें लोगों की मदद करना अच्छा लगता था, लेकिन मुझे उनकी इतनी याद इसलिए आती है क्योंकि वह मेरे सबसे अच्छे दोस्त थे। मैं उन्हें अपने दिल की बात बता सकती थी और वह समझते थे,’ वह कहती हैं। कभी-कभी जब वो गलती से घड़ी देखती है और बुधवार या रविवार को शाम के 7:30 बज रहे होते हैं, तो डिंपल का दिल आज भी धड़कना भूल जाता है। लगभग चार साल तक,

जब तक विक्रम युद्ध में नहीं गया और वापस नहीं लौटा, तब तक यही वो समय था जब वो बिना चूके उसे फोन करता था, चाहे वो कहीं भी हो। 'वो पालमपुर, देहरादून, सोपोर या दिल्ली में हो, फोन जरूर आता था और मैं हमेशा फोन के पास ही रहती थी ताकि पिताजी से पहले उसे उठा सकूँ,' वो उदास मुस्कान के साथ याद करती है। अब उसके फोन की घंटी तय समय पर नहीं बजती, और अगर बजती भी है तो उस जानी- पहचानी आवाज़ का कोई नामोनिशान नहीं होता। वह फोन करता, लेकिन जहाँ वह अब गया है वहाँ फोन की सुविधा नहीं है।

अंतिम विजय
7 जुलाई 1999
हवा चाकू की तरह ठंडी और तीखी थी, और जून में अपने पहले हमले के बाद पदोन्नत हुए कैप्टन विक्रम बत्रा जानते थे कि यह हवा उनकी गाल की हड्डियों से चमड़ी को भी काट सकती है। कुछ हद तक, ऐसा हो भी चुका था।
इसीलिए डेल्टा कंपनी, 13 जेएके राइफल के वह और उनके 25 जवान बंजर इलाके में इतने अच्छे से घुलमिल गए थे। धूप से झुलसे उनके भूरे चेहरे, बिखरी दाढ़ी और हवा के तेज झोंकों से झड़ते बाल, उन विशाल चट्टानों के साथ पूरी तरह से मेल खा रहे थे जिनके पीछे वे पनाह ले रहे थे। प्वाइंट 4875 अभी भी 70 मीटर दूर था और उनका काम उस पहाड़ी तक पहुंचना, दुश्मन पर हमला करना और सूर्योदय से पहले चौकी पर कब्जा करना था। दुर्भाग्य से, बुरी तरह घायल पैर वाले कैप्टन नवीन को निकालने में समय लग गया और सुबह हो चुकी थी। पूरी रात जवान पहाड़ी की चोटी से लगभग लगातार मशीनगन की गोलीबारी के बीच ढलान पर चढ़ते रहे। बीच-बीच में, मुश्कोह घाटी के निचले हिस्से से उन्हें कवर दे रही बोफोर्स की लाल रोशनी में उनके चेहरे चमक उठते थे।
7 जुलाई की सुबह आगे बढ़ने का बहुत दबाव था। लेफ्टिनेंट कर्नल जोशी ने सुबह 5:30 बजे बत्रा से बात की और उन्हें सूबेदार रघुनाथ सिंह के साथ इलाके का जायजा लेने को कहा। उस बिंदु से ठीक पहले एक संकरी चट्टान थी जहाँ दुश्मन सैनिक मौजूद थे और आगे बढ़ना लगभग असंभव था। बाएँ या दाएँ से भी कोई रास्ता नहीं था और बत्रा ने तुरंत फैसला किया कि भले ही दिन का उजाला हो,

‘Darta nahin hun, Sahib,’ (I am not afraid, Sir) Raghunath replied and got up.

कुछ समय पहले जब बत्रा सोपोर में थे, तब एक आतंकवादी की गोली उनके कंधे को छूते हुए निकल गई और उनके पीछे खड़े व्यक्ति को लगकर मौके पर ही उनकी मृत्यु हो गई, जिससे वे चमत्कारिक रूप से बच गए थे। तब वे आश्चर्यचकित रह गए थे। मरणासन्न अवस्था में, नियति ने उन्हें एक बार फिर चौंका दिया। उनके पास योजनाएँ थीं, कार्य पूरे करने थे, शत्रु को पराजित करना था। वे इस बात से हैरान थे कि इतने सारे अधूरे कर्तव्यों के बावजूद गोली अपने लक्ष्य तक पहुँच गई थी। बत्रा अविश्वास से हांफते हुए उस युवा सैनिक के बगल में गिर पड़े, जिसे वे सम्मानजनक मृत्यु देना चाहते थे। उनके शरीर से खून बह निकला, और उनके स्तब्ध साथी भय से देखते रहे।
बत्रा के अदम्य साहस और बलिदान से प्रेरित होकर, उनके दस जवानों की एक टुकड़ी (प्रत्येक के पास एक एके-47 राइफल, छह मैगज़ीन और दो नंबर 36 हथगोले थे) ने चट्टान के रास्ते हमला किया, पाकिस्तानी सैनिकों को हलवा बनाते हुए पाया और ऊपर मौजूद सभी दुश्मन सैनिकों को मार गिराया, इस हमले में उनके अपने सैनिकों को कोई नुकसान नहीं हुआ। उनके हमले की भयंकरता ने पाकिस्तानी सैनिकों को इतना भयभीत कर दिया कि उनमें से कई किनारे की ओर भागे और चट्टान से कूद गए, जिससे ऊबड़-खाबड़ घाटी में उनकी दर्दनाक मौत हो गई।
अपनी मृत्यु में भी विक्रम बत्रा ने वह वादा निभाया जो उन्होंने पालमपुर के न्यूगल कैफे में चाय पीते हुए अपने आखिरी घर वापसी के दौरान एक मित्र से किया था। जब उनके मित्र ने उन्हें युद्ध में सावधान रहने की चेतावनी दी थी, तो बत्रा ने जवाब दिया था: 'या तो मैं विजय के साथ तिरंगा फहराऊंगा या फिर तिरंगे में लिपटा हुआ वापस आऊंगा।'

विशाल बत्रा द्वारा श्रद्धांजलि
अगर मैं अपनी यात्रा की शुरुआत करूं, तो यह कांगड़ा जिले में धौलाधार पर्वतमाला में स्थित एक छोटे से शहर पालमपुर से शुरू हुई।
हम कैप्टन विक्रम बत्रा, पीवीसी (मरणोपरांत) को लव कहकर बुलाते थे, और मैं, कुश, उनका जुड़वां भाई (सिर्फ 14 मिनट छोटा), हंसी और शरारतों से भरी

जिंदगी जीते रहे जब तक कि हम बड़े नहीं हो गए और हमने भारतीय सशस्त्र बलों का हिस्सा बनने का फैसला नहीं किया।
समय कितनी तेजी से बीत जाता है! और हम सभी को वो नहीं मिलता जो हम चाहते हैं। लव को मार्च 1996 में भारतीय सैन्य अकादमी में दाखिला मिल गया और मुझे, सेवा चयन बोर्ड द्वारा तीन बार अस्वीकृत किए जाने के कारण, प्रबंधन में करियर बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा।
जब विक्रम अपनी वार्षिक छुट्टी के दौरान हमसे मिलने आया, वर्दी में लंबा और आकर्षक दिख रहा था, तब मुझे एहसास हुआ कि सेना के प्रति मेरा जुनून आज भी कितना प्रबल है। आँखों में गर्व लिए मैंने अपने भाई को जीवन में हमारी सोच से कहीं अधिक तेज़ी से आगे बढ़ते देखा।
विक्रम को 13 जेएके राइफल्स में कमीशन मिला और उनकी पहली पोस्टिंग सोपोर में हुई। वहां रहते हुए उन्होंने उग्रवाद विरोधी अभियानों में दुश्मन के साथ कई साहसिक आमने-सामने की लड़ाइयाँ लड़ी थीं। हम जानते थे कि वे विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए ही पैदा हुए थे।
लगभग उसी समय कारगिल युद्ध हुआ और उन्हें भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ कर चुके पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ने में साथी सैनिकों की मदद करने के लिए वहाँ भेजा गया। विक्रम ने माँ-बाप को अपनी यात्रा के बारे में जो आखिरी फोन किया था, उससे हम सब थोड़े घबरा गए थे, लेकिन हम हमेशा जानते थे कि वह एक साहसी अधिकारी थे, जिनके लिए किसी भी चुनौती का सामना करना आसान था। कारगिल जाने से पहले हमारे एक दोस्त से उनका आखिरी बयान कि या तो वह तिरंगा फहराएंगे या तिरंगे में लिपटे हुए वापस लौटेंगे, आज भी हमारे दिलों में गूंजता है। इससे पता चलता है कि वह कितने दृढ़ निश्चयी थे।
पंद्रह साल बीत चुके हैं। बहुत कुछ बदल गया है और बहुत कुछ वैसा ही रहा है। मेरे बालों में पहले से कहीं ज़्यादा सफ़ेद बाल आ गए हैं। विक्रम आज भी उतना ही जवान दिखता है। समय का उस पर कोई असर नहीं होता। इन पंद्रह सालों में शायद ही कोई ऐसा दिन बीता हो जब विक्रम की चर्चा न हुई हो।
मेरे दिल में बसी सबसे गहरी याद 1985 की है, जब दूरदर्शन पर 'परम वीर चक्र' सीरियल प्रसारित होता था। तब हमारे पास टीवी नहीं था और हम पड़ोसियों के घर बैठकर देखते थे। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इस लोकप्रिय सीरियल में दिखाई गई कहानियां एक दिन हमारे लिए इतनी हकीकत बन जाएंगी। या विक्रम हीरो होंगे। 18,000 फीट की ऊंचाई से विक्रम का मशहूर रेडियो संदेश, 'ये दिल

मांगे मोर', लाखों भारतीयों के दिलों को छू गया और वे इसे आज तक नहीं भूले हैं। न ही विक्रम को।
कई बार अजनबी लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि मैं विक्रम जैसा दिखता हूँ या पूछते हैं कि क्या उन्होंने मुझे कहीं देखा है। सैकड़ों लोगों ने मुझसे पूछा है कि क्या मेरा विक्रम से कोई रिश्ता है। हर बार, मुझे पता होता है कि वे विक्रम के बारे में सोच रहे हैं और मुझे उसका भाई होने पर गर्व महसूस होता है।
मृत्यु जीवन का अंतिम सत्य है, लेकिन हममें से कितने लोगों में मृत्यु का खुले दिल से सामना करने का साहस है? मेरा भाई विक्रम परम वीर था—वीरों में भी परम वीर।
मैं उन सभी सैनिकों को सलाम करता हूं जो इस राष्ट्र के सच्चे वीर हैं।

संदर्भ

सियाचिन—1971
परम वीर - युद्ध में हमारे नायक, मेजर जनरल इयान कार्डोज़ो द्वारा लिखित सबसे ठंडा युद्ध; दुनिया की छत पर क्रोध में जमा हुआ, बैरी बेराक द्वारा लिखित, 23 मई 1999 को द न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित।
इंडियन डिफेंस रिव्यू—मेजर जनरल शेरू थपलियाल द्वारा लिखित सियाचिन का सामरिक महत्व, अंक खंड 21.1, जनवरी-मार्च 2006
कारगिल युद्ध 1999
परम वीर—युद्ध में हमारे नायक, मेजर जनरल इयान कार्डोज़ो द्वारा लिखित, 'कारगिल युद्ध 1999', भारत रक्षक
'अपने बच्चों को खतरे में डालना', जनरल शाहिद अजीज द्वारा लिखित, द नेशन, 3 फरवरी 2014
‘नवाज़ ने कारगिल के लिए मुशर्रफ को दोषी ठहराया’, टाइम्स ऑफ इंडिया, 28 मई 2006
'कारगिल की योजना वाजपेयी की यात्रा से पहले बनाई गई थी: मुशर्रफ', इंडियन एक्सप्रेस, 13 मई 2006

[redacted]

[redacted] (Дело № [redacted]) [redacted] [redacted], [redacted], [redacted] [redacted] [redacted], [redacted] по [redacted] [redacted], [redacted] по [redacted] [redacted] [redacted] [redacted] [redacted], [redacted] [redacted] [redacted] [redacted]

को नहीं पता थीं; दिवंगत कर्नल आदि तारापोर, पीवीसी की पुत्री श्रीमती ज़रीन माहिर बॉयस को अपने पिता की स्मृतियों के लिए; कर्नल बाल सिंह, कमांडेंट, पूना हॉर्स को कर्नल तारापोर पर लिखे मसौदे को पढ़ने के लिए; लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) अजै सिंह को 1965 के युद्ध के बारे में उनकी बातचीत के लिए; कर्नल (सेवानिवृत्त) ओ. पी. कोहली को दिवंगत लांस नायक अल्बर्ट एक्का, पीवीसी और बांग्लादेश युद्ध की स्मृतियों के लिए धन्यवाद। एयर कमोडोर (सेवानिवृत्त) रमेश वी. फड़के, जिन्होंने मुझे फ्लाइंग ऑफिसर निर्मल जीत सिंह सेखों, पीवीसी, को बेहतर ढंग से जानने में मदद की; स्वर्गीय श्रीमती माहेश्वरी खेतरपाल, जिन्होंने अपना समय दिया (द्वितीय लेफ्टिनेंट अरुण खेतरपाल पीवीसी को याद करते हुए उनके साथ एक सुबह बिताने के कुछ ही समय बाद उनका निधन हो गया), श्री मुकेश खेतरपाल (अरुण के भाई), जिन्होंने मुझे अपने भाई के बारे में बड़े प्यार से कहानियां सुनाईं, रिसालदार मेजर (सेवानिवृत्त) नत्थू सिंह, जिन्होंने मुझे युद्ध के वृत्तांत सुनाए (वे अरुण के अंतिम क्षणों में उनके साथ थे); कर्नल (सेवानिवृत्त) एस. एस. चीमा, एसएम, और कर्नल एस. एस. पुनिया, जिन्होंने स्वर्गीय कर्नल होशियार सिंह, पीवीसी, के साथ 1971 का युद्ध लड़ा, जिन्होंने मुझे युद्ध का पुनर्निर्माण करने में मदद की और विशेष रूप से कर्नल चीमा को कर्नल तारापोर और कर्नल होशियार सिंह पर लिखे अध्यायों को संपादित करने के लिए धन्यवाद; कर्नल विजय कुमार, सीओ, 8 महार, और सूबेदार (सेवानिवृत्त) दिलीप मस्के, जिन्होंने मुझे स्वर्गीय मेजर रामास्वामी परमेश्वरन, पीवीसी, की वीरता को समझने में मदद की। परमवीर चक्र से सम्मानित स्वर्गीय कैप्टन मनोज पांडे की माता श्रीमती मोहिनी पांडे का उनके बचपन की यादें साझा करने के लिए धन्यवाद, जिन्हें सुनकर वे कई बार रो पड़ीं; ब्रिगेडियर अस्थाना का मनोज के बटालियन में बिताए समय के बारे में बताने के लिए धन्यवाद; स्वर्गीय कैप्टन विक्रम बत्रा, पीवीसी के माता-पिता श्री गिरधारीलाल बत्रा और श्रीमती कमल कांता बत्रा का समय देने और हिमाचल प्रदेश के बांदला गांव स्थित अपने सुंदर घर में मुझे भोजन कराने के लिए धन्यवाद; विक्रम के जुड़वां भाई विशाल का उनकी मदद के लिए और उनकी मित्र डिंपल का उनके बारे में यादें साझा करने के लिए धन्यवाद।
मैं सभी पीवीसी पलटनों के कमांडिंग अधिकारियों/कमांडेंटों का भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे दस्तावेज़ों, प्रशस्तियों और युद्ध डायरियों तक

पहुंच प्रदान की और मुझे सेवानिवृत्त सैनिकों और शहीद नायकों के परिवारों से मिलवाया। मैंने जो कहानियां लिखीं, वे उनकी यादों पर आधारित थीं।
मैं मेजर जनरल (सेवानिवृत्त) इयान कार्डोज़ो का भी आभारी हूं, जिनकी पुस्तक 'परम वीर, हमारे युद्ध नायक' निरंतर मार्गदर्शन का स्रोत रही, और स्क्वाड्रन लीडर (सेवानिवृत्त) राणा चिन्ना, सचिव, यूनाइटेड सर्विस इंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया सेंटर फॉर आर्म्ड फोर्सेज हिस्टोरिकल रिसर्च, का भी आभारी हूं, जिन्होंने मुझे यूएसआई के विशाल पुस्तकालय तक पहुंच प्रदान की और मेरी कहानियों के लिए प्रासंगिक युद्ध पत्रिकाओं और पुस्तकों को खोजने में व्यक्तिगत रूप से मेरी मदद की।
भारतीय सेना के अतिरिक्त लोक सूचना महानिदेशालय (एडीजी पीआई) को बहुमूल्य सामग्री, संपर्क विवरण और परियोजना में सहायता प्रदान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद। वे इस पुस्तक के निर्माण में शुरू से अंत तक भागीदार रहे। कलाकार ऋषि कुमार को भी धन्यवाद जिन्होंने बहुत कम समय में 21 पीवीसी के चेहरों के चित्र बनाने के लिए अपने व्यस्त कार्यक्रम में समय दिया।
मैं 3 इंजीनियर रेजिमेंट के कर्नल सुधीर ठाकुर की विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को शुरू से अंत तक अटूट धैर्य के साथ पूरा करने में मेरा साथ दिया और मेरे सामने आने वाली हर बाधा को दूर किया। यकीन मानिए, बाधाएँ बहुत थीं! सुधीर हर कदम पर मेरे साथ थे। उनके बिना यह पुस्तक संभव नहीं हो पाती। मैं मेजर जनरल (सेवानिवृत्त) एन. आर. के. बाबू को भी धन्यवाद देना चाहूँगी, जिन्होंने मुझे लेखन जारी रखने के लिए प्रेरित किया। जब मैं एक युवा सैनिक पत्नी के रूप में रेजिमेंट में शामिल हुई और पत्रकारिता में अपना करियर छोड़ने को लेकर थोड़ी दुखी थी, तब उन्होंने मुझे 3 रेजिमेंट का इतिहास लिखने का काम सौंपा। इस परियोजना में उन्होंने तब पहल की जब सेना से पुस्तक के लिए अनुमति न मिलने की आशंका थी और उन्होंने व्यक्तिगत रूप से आकर मुझसे मुलाकात की। लेकिन हम सभी 3 इंजीनियर रेजिमेंट से हैं, जो उन्हें परिवार के समान मानते हैं और मैं अक्सर उन्हें हल्के में ले लेती हूँ।
साथ ही, मैं ब्रिगेडियर और श्रीमती एम. के. अजित कुमार, मेरे दत्तक परिवार का भी आभारी हूं, जिन्होंने पंजाब में दिवंगत लांस नायक करम सिंह पीवीसी और दिवंगत सूबेदार जोगिंदर सिंह पीवीसी पर लिखी गई कहानियों के लिए

साक्षात्कार आयोजित करने में मेरी सहायता की, और मुझे अपने भटिंडा स्थित घर में रहने दिया, मुझे भोजन कराया और लगभग पूरी रात उनके निजी कंप्यूटर पर काम करते समय मुझे सहन किया। और उनके गोल्डन रिट्रीवर टॉफी का भी धन्यवाद, जिसने कंप्यूटर पर काम करते समय सो जाने पर मुझे चाटकर जगाया।
मैं कर्नल राजीव सिंह का भी आभारी हूं, जिन्होंने व्यस्त कमांड की बाधाओं के बावजूद मेरे लिए बहुमूल्य फोन नंबर ढूंढ निकाले और उन्हें एक हंसमुख संदेश के साथ व्हाट्सएप पर भेज दिया: "मैडम, मैं गूगल से भी तेज हूं।" और मेरी सदा मुस्कुराती रहने वाली, समझदार चचेरी बहन तनु का भी, जिनकी सलाह, समय, घर, गाड़ी और ड्राइवर हमेशा मेरे लिए तत्पर रहे।
मेरी पुरानी दोस्त और फाइनेंशियल एक्सप्रेस की पूर्व सहकर्मी रेणु अगल का तहे दिल से शुक्रिया, जिन्होंने मुझे पेंगुइन से तब मिलवाया जब मैं भारत-पाकिस्तान सीमा पर स्थित सुदूर कस्बे फिरोजपुर में रह रहा था। पेंगुइन में मेरे पुस्तक संपादक अनीश चंडी का भी शुक्रिया, जिन्होंने मुझे सेना को उसके योगदान के लिए कुछ वापस देने का यह अवसर दिया। साथ ही, रैंडम हाउस की अर्चना शंकर का भी शुक्रिया, जिन्होंने प्रूफ को ध्यानपूर्वक पढ़ा और बार-बार पढ़ा, और मुझ पर भरोसा और धैर्य दिखाया।
मेरे पति मनोज को भी धन्यवाद, जिन्होंने मेरी यात्राओं के दौरान हमारे बेटे सारांश की देखभाल की और हवाई अड्डों और रेलवे स्टेशनों से मुझे हमेशा मुस्कुराते हुए लेने आए। सारांश को भी धन्यवाद, जिसने मेरे मन में संदेह के क्षणों में भी मुझे किताब पूरी करने के लिए प्रेरित किया: 'लेकिन मम्मा, मैंने अपने सभी दोस्तों को बता दिया है। अब आपको इसे करना ही होगा। नहीं तो मेरी बेइज्जती हो जाएगी,' उसने कहा। मेरे भाई कर्नल समीर सिंह बिष्ट, एसएम को धन्यवाद, जिन्होंने कारगिल में अपने व्यक्तिगत अनुभव का उपयोग करके मेरे कारगिल ड्राफ्ट को संपादित किया। और अंत में मेरे पिताजी ब्रिगेडियर (सेवानिवृत्त) बी. एस. बिष्ट, एसएम, वीएसएम को धन्यवाद, जिन्होंने मुझे उन भयानक रोज़ाना के फोन कॉल्स से रुला दिया, जिनमें वे रूखेपन से पूछते थे, 'कितने अध्याय पूरे कर लिए?' लेकिन हमेशा, हमेशा हर बातचीत को 'ऑल द बेस्ट बेटा' कहकर समाप्त करते थे—जो वे मुझे जीवन भर कहते रहे हैं। मुझे विश्वास है कि यह काम करता है।

शुरुआत

चलिए बातचीत शुरू करते हैं... Penguin को Twitter.com@PenguinIndia पर फॉलो करें हमारी सभी खबरों से अपडेट रहने के लिए YouTube.com/PenguinIndia पर जाएं। फेसबुक पर ‘पेंगुइन बुक्स’ को लाइक करें: facebook.com/PenguinIndia लेखक के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें और
इस तरह की और भी कहानियाँ penguinbooksindia.com पर पढ़ें।

पेंगुइन बुक्स
पेंगुइन ग्रुप द्वारा प्रकाशित
पेंगुइन बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, सातवीं मंजिल, इन्फिनिटी टावर सी, डीएलएफ साइबर सिटी, गुरुग्राम - 122 002, हरियाणा, भारत
पेंगुइन ग्रुप (यूएसए) इंक., 375 हडसन स्ट्रीट, न्यूयॉर्क, न्यूयॉर्क 10014, यूएसए; पेंगुइन ग्रुप (कनाडा), 90 एग्लिंटन एवेन्यू ईस्ट, सुइट 700, टोरंटो, ओंटारियो M4P 2Y3, कनाडा; पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, 80 स्ट्रैंड, लंदन WC2R 0RL, इंग्लैंड; पेंगुइन आयरलैंड, 25 सेंट स्टीफंस ग्रीन, डबलिन 2, आयरलैंड (पेंगुइन बुक्स लिमिटेड का एक प्रभाग); पेंगुइन ग्रुप (ऑस्ट्रेलिया), 707 कॉलिन्स स्ट्रीट, मेलबर्न, विक्टोरिया 3008, ऑस्ट्रेलिया; पेंगुइन ग्रुप (न्यूजीलैंड), 67 अपोलो ड्राइव, रोजडेल, ऑकलैंड 0632, न्यूजीलैंड; पेंगुइन बुक्स (दक्षिण अफ्रीका) (प्राइवेट) लिमिटेड, ब्लॉक डी, रोजबैंक ऑफिस पार्क, 181 जान स्मट्स एवेन्यू, पार्कटाउन नॉर्थ, जोहान्सबर्ग 2193, दक्षिण अफ्रीका
पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, पंजीकृत कार्यालय: 80 स्ट्रैंड, लंदन WC2R 0RL, इंग्लैंड। पहली बार पेंगुइन बुक्स इंडिया द्वारा 2014 में प्रकाशित। www.penguinbooksindia.com
Copyright © Rachna Bisht 2014
ऋषि कुमार द्वारा बनाए गए चित्र।
सर्वाधिकार सुरक्षित
ISBN: 978-0-143-42235-8
यह डिजिटल संस्करण 2014 में प्रकाशित हुआ था।
ई-आईएसबीएन: 978-9-351-18805-6
यह पुस्तक इस शर्त के अधीन बेची जाती है कि इसे प्रकाशक की पूर्व लिखित सहमति के बिना, व्यापारिक रूप से या किसी अन्य तरीके से, उधार नहीं दिया जाएगा, पुनर्विक्रय नहीं किया जाएगा, किराए पर नहीं दिया जाएगा या किसी अन्य प्रकार से प्रसारित नहीं किया जाएगा, सिवाय उस रूप में जिसमें यह प्रकाशित हुई है, और बाद के खरीदार पर भी इसी प्रकार की शर्त लागू होगी। ऊपर आरक्षित कॉपीराइट अधिकारों को सीमित किए बिना, इस प्रकाशन का कोई भी भाग कॉपीराइट स्वामी और इस पुस्तक के उपरोक्त प्रकाशक दोनों की पूर्व

लिखित अनुमति के बिना पुनरुत्पादित, संग्रहीत या पुनर्प्राप्ति प्रणाली में शामिल नहीं किया जा सकता है, या किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या अन्य) प्रसारित नहीं किया जा सकता है।
***** *****